श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके

संरक्षक महानुभाव

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसादजी जैन बेङ्कर्स सदर मेरठ

अध्यक्ष, प्रधान ट्रस्टी एव सरक्षक

(२) श्री सौ० फूलमालादेवी धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसादजी जैन बेङ्कर्स

सदर मेरठ, सरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक सदस्य महानुभावोंकी नामावलि :—

(१) श्री सेठ भँवरीलालजी जैन पाण्ड्या झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द्रजी जैन रईस देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्ड्या झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवतीदेवी जैन गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंहजी जैन मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाशजी जैन प्रेमपुरी मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्दजी जैन मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्दजी जैन रईस देहरादून
(९) ,, ला० वारूमल प्रेमचन्दजी जैन मसूरी
(१०) ,, ला० वाबूराम मुरारीलालजी जैन ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैनजी जैन जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगडूसाहजी जैन सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनरायजी जैन नईमन्डी मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी वा० कैलाशचन्दजी जैन देहरादून
(१५) ,, ला० जयकुमार वीरसेनजी जैन सदर मेरठ
(१६) ,, मन्त्री दिगम्बर जैन समाज खण्डवा
(१७) ,, ला० वाबूराम अकलकप्रसादजी जैन तिस्सा

(१८) ,, बा० विशालचन्दजी जैन ऑ० मजिस्ट्रेट सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द ज्योतिप्रसादजी जैन ओवरसियर इटावा
(२०) ,, सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलालजी जैन सघी जयपुर
(२१) ,, श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालालजी जैन जियागज
(२२) ,, मत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज गया
(२३) ,, सेठ नागरमलजी जैन पाण्ड्या गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरजीलालजी जैन गिरिडीह
(२५) ,, बा० रावेलाल कानूरामजी मोदी गिरिडीह
(२६) ,, सेठ फूलचन्द वैजनाथजी जैन नईमडी मुजफ्फरनगर
(२७) ,, ला० सुखवीरसिंह हेमचन्दजी जैन सर्राफ बडौत
(२८) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्दजी जैन गया
(२९) ,, सेठ जीतमल इन्द्रकुमारजी जैन छावडा झूमरीतिलैया
(३०) ,, सेठ गोकुलचन्द्र हरकचन्द्रजी जैन गोवा लालगोला
(३१) ,, बा० इन्द्रजीतजी जैन वकील स्वरूपनगर कानपुर
(३२) ,, बा० दीपचन्दजी जैन एग्जक्यूटिव इन्जिनियर कानपुर
(३३) ,, सकल दिगम्बर जैन समाज नाईकी मन्डी आगरा
(३४) ,, मत्री दिगम्बर जैनसमाज तारकी गली मोती कटरा आगरा
(३५) ,, सचालिका दिगम्बर जैन महिलामडल नमककी मडी आगरा
(३६) ,, मंत्री दिगम्बर जैन जैसवाल समाज छीपीटोला आगरा
* (३७) ,, सेठ शीतलप्रसादजी जैन सदर मेरठ
* (३८) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्दजी जैन वडजात्या जयपुर
* (३९) ,, बा० दयारामजी जैन R S. D O सदर मेरठ
* (४०) ,, ला० मुन्नालाल यादवरायजी जैन सदर मेरठ
* (४१) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमारजी जैन सहारनपुर
* (४२) ,, सेठ छदामीलालजी जैन रईस फिरोजाबाद
* (४३) ,, ला० नेमिचन्दजी जैन रुडकी प्रेस रुडकी
ऽ (४४) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपालजी जैन शिमला
ऽ (४५) ,, ला० बनवारीलाल निरजनलालजी जैन शिमला

नोट—जिन नामोंके पहिले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आगये हैं शेष आने हैं तथा जिनके पहिले ऽ ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नहीं आये, आने हैं।

आमुख

भारतीय दर्शनोमे जैनदर्शनका एक स्वतन्त्र स्थान है, स्वतन्त्र स्वतन्त्र विचार-धारा है और प्रत्यक्ष एव परोक्षात्मक विश्व-प्रपचके निरूपणकी उत्पत्ति स्वतन्त्र प्रणाली है। जैन शब्द जिन शब्दसे निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है अपने आत्म-स्वातन्त्र्य लाभके लिए जिनदेवके आदर्शको स्वीकार करनेवाला। और जयति कर्मशत्रून् इति जिन. इस व्युत्पत्तिके आधारपर जो कर्मशत्रुओ पर विजय प्राप्त कर सम्पूर्ण शुद्ध आत्म-स्वरूपका लाभ करता है, वह 'जिन' कहलाता है। इस प्रकार जैनदर्शनका अर्थ होता है, आत्म-स्वातन्त्र्यके लिए तथोक्त जिनदेवके आदर्शको स्वीकार करनेवाले व्यक्तिकी विश्व प्रपचके सम्बन्धमे सुचिन्तक दृष्टि।

जैनदर्शनकी मान्यता है कि यह दृश्यमान एव परोक्षसत्तात्मक विश्व, चेतन और जड-दो प्रकारके तत्त्वोका पिण्ड है व अनादि है, अनन्त है। दूसरे शब्दोमे यह लोक-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योका पिण्ड है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र एव शक्तिसम्पन्न है। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायोका स्वामी है और प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। परिवर्तनका अर्थ है उनमे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका होना। प्रत्येक द्रव्य अपनी वर्तमान पर्याय छोडकर उत्तरवर्ती पर्याय स्वीकार करता है, फिर भी वह अपनी स्वाभाविक धाराओको नही छोडता है। द्रव्यका यही प्रतिक्षणवर्ती उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व है। इनमे से धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य इन द्रव्योमे सदैव सदृश परिणमन ही होता है। इसका अर्थ है कि इनमे प्रति समय परिवर्तन होनेपर भी ये द्रव्य स्वरूपसे सदैव एकसे ही बने रहते हैं, उनके स्वरूपमे तनिक भी विकृति नही आने पाती है। परन्तु जीव और पुद्गल द्रव्योका यह हाल नही है। उनमे सदृश और विसदृश-अथवा शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकारके परिणमन होते हैं।

जिस समय रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श गुणात्मक पुद्गल परमाणु अपनी विशुद्ध परमाणुदशामे परिणमन करते हैं, तब यह इनका सदृश अर्थात् शुद्ध परिणमन कहा जाता है और जब दो या दो से अधिक परमाणु स्कन्ध-दशामे परिणत होते हैं तब यह इनका विसदृश अर्थात् अशुद्ध परिणमन कहा जाता है।

ठीक ऐसी ही परिणमन-प्रक्रिया जीव द्रव्यकी है। इसका कारण यह है कि जीव और पुद्गल द्रव्यमे विभाव परिणमन करनेकी शक्ति है। सो इस वैभाविक शक्तिके कारण।

जीव जब तक ससारमे है और कर्म-बन्धनसे आबद्ध है, तब तक यह भी वैभाविक अर्थात् अशुद्ध परिणमन करता है, परपदार्थोको अपनाता है और उनमे इष्टानिष्ट कल्पना करता है, अपने विशुद्ध चैतन्य स्वरूपको छोडकर स्वयको अन्य अनात्मीय भावोंका कर्ता मानता है और आत्मज्ञानसे इतर अनात्मीय भावोंमे ही तन्मय रहता है। परन्तु ज्यो ही इसे आत्मस्वरूपका बोध होता है, वह परवस्तुओंसे अपनी ममत्वपरिणति दूर कर लेता है और कर्म बन्धनसे निर्मुक्त होकर विशुद्ध आत्म-चैतन्यमे रमण करने लगता है। जीवकी ससारदशाका प्रथम परिणमन वैभाविक एवं अशुद्ध परिणमन है और मुक्तदशाका द्वितीय परिणमन पूर्णतया आत्माश्रित होनेके कारण स्वाभाविक एव शुद्ध परिणमन है।

अत जैन दर्शन, जिनदर्शन अर्थात् आत्मदर्शनका ही रूपान्तर है, अत उसमे आत्माकी दशाओका, उनकी बद्ध और अशुद्ध स्थिति या और उसके कारणोका बहुत विशद एव विधिवत् विश्लेषण हुआ है। जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका स्वीकार कर स्वावलम्बिनी वृत्तिको प्रश्रय देता है।

जैनदर्शनमे आत्माको ही उसकी स्वाभाविक अथवा वैभाविक परिणतिका कर्ता माना गया है और अपनी विशुद्ध स्वाभाविक दशामे यह आत्मा ही स्वय परमात्मा हो जाता है। सक्षेपमे जैनदर्शनके अध्यात्मवादका यही रहस्य है।

जैन अध्यात्म-साधनाका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, अनादि है, तथापि युगके अनुसार भगवान ऋषभदेवने अपने व्यक्तिजीवनमे इसके आदर्शोकी अवतारणा की और पूर्णप्रभुत्वसम्पन्न-आत्मस्वातन्त्र्यका लाभ किया। तीर्थंकर अजितनाथसे लेकर महा-वीर पर्यन्त शेष तीर्थंकरोने भी इसी अध्यात्म-साधनाको स्वय अपनी जीवन सिद्धिका लक्ष्य बनाया और आत्मलाभकी दृष्टिसे अन्य प्राणियोको भी मार्ग-दर्शन किया। इसी समयमे श्री भरतजी, बाहुबलिजी, रामचन्द्रजी, हनुमानजी आदि अनेको पूज्य पुराण पुरुषोने इसी ज्ञानात्मक उपायसे ब्रह्मलाभ किया और अनेको भव्यात्माओंको मार्ग दर्शन दिया।

भगवान् महावीरके बाद भी यह जैन अध्यात्म-धारा प्रवाहित होती रही और आज भी हम उसके लघुरूपके दर्शन उसके कतिपय साधनोंमे एवं विशालरूपके दर्शन उस परम्पराके उपलब्ध साहित्यमे कर सकते हैं।

जैन अध्यात्मके पुरस्कर्ताओंमे आचार्यश्री कुन्दकुन्दका स्थान सर्वोपरि है। जैन तत्त्वज्ञान एव अध्यात्मके यह असामान्य विद्वान् थे। यद्यपि इनकादीक्षाकालीन नाम पद्मनन्दि था, तथापि कौण्डकुन्दपुरके अधिवासी होनेके कारण ये कौण्डकुन्दाचार्य अथवा कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे ही अधिक विख्यात रहे और इसी नामपर इनकी वश-परम्परा कुन्दकुन्दान्वयके रूपमे स्थापित हुई। शास्त्रवाचन आरम्भ करनेके पूर्व प्रत्येक पाठक मङ्गलाचरणके रूपमे पढता है :—

मङ्गल भगवान् वीरो मङ्गल गौतमो गणी।
मङ्गल कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ॥

अर्थात् भगवान् महावीर मङ्गलमय है। गौतम गणधर मङ्गलमय है, आ॰ कुन्दकुदाचार्य मङ्गलमय है और जैनधर्म मङ्गलमय है।

इससे सहज ही मालूम हो जाता है कि जैन वाङ्मय और उसके उपासकोमे आचार्य कुन्द-कुन्दका कितना गौरवपूर्ण स्थान है।

जैनपरम्परामे आचार्य कुन्दकुन्द ८४ पाहुडग्रन्थोके कर्ताके रूपमे सुप्रसिद्ध हैं; परन्तु इनके उपलब्ध २२,२३ ग्रन्थ ही इनके अगाध पाण्डित्य और तलस्पर्शी तत्त्व ज्ञानके परिचायक है इसमे भी प्रवचनसार, समयसार नियमसार तथा पञ्चास्तिकाय इन चार ग्रन्थोका मुख्य स्थान है। इस ग्रन्थचतुष्टयामे जैन तत्त्वज्ञान एव अध्यात्मका बहुत सूक्ष्म, स्पष्ट और वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्दका प्रवचनसार बडा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे ज्ञान, ज्ञेय और चरित्ररूप द्वारा सम्बद्ध विषयोंका अत्यन्त सारगर्भित विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थपर अमृतचन्द्राचार्य तथा जयसेनाचार्यकी सस्कृत टीकाएँ उपलब्ध है। अनेक विद्वानोंने उनका हिन्दी सार देकर प्रवचनसारके महत्त्वपूर्ण सस्करण भी प्रकाशित किये हैं।

परन्तु श्रद्धेय श्री १०५ क्षु० श्री सहजानन्द जी महाराज (श्री मनोहर जी वर्णी सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ) ने समय समयपर ग्रन्थराज प्रवचनसारपर दिये गये जिन प्रवचनो द्वारा तन्ययताके साथ अन्य श्रोताओको दुर्लभ अध्यात्मरसका पान

कराया, उन प्रवचनोका और उन्हीको लेकर गुम्फित किये गये इस ग्रन्थरत्नका आध्यात्मिक वाङ्मयमे नि सन्देह वहुत वडा महत्त्व है और जव तक यह ग्रन्थरत्न विद्यमान रहेगा। इसका यह महत्त्व वरावर अक्षुण्ण रहेगा।

श्रद्धेय क्षुल्लक वर्णी जी महाराजने आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्र जी की अध्यात्मदेशनाको आत्मसात् करके जिस सरलता और सादगीके साथ जैन अध्यात्म जैसे गम्भीर एव दार्शनिक विषयोको इन प्रवचनोमे उडेला है उनका यह पुण्य-कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अनुपम है।

आशा है, अध्यात्म प्रेमी समाज इस ग्रन्थका रुचिपूर्वक स्वाध्याय करेगा और अपनी दृष्टिको विशुद्ध और सम्यक् वनाकर पूर्ण आत्मस्वातन्त्र्यके पथका अनुगामी वनेगा।

राजकुमार जैन
एम ए पी एच डी
प्राध्यापक तथा अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
आगरा कालेज

आगरा

२१-१०-१९६३

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री वर्णीजी महाराज द्वारा रचित

— आत्म-कीर्तन —

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्धसमान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, वना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुप दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ।।५।।

[धर्म प्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरोपर निम्नाकित पद्धतियोमे भारतमे अनेको स्थानोपर पाठ किया जाता है आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमे श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमे ।

२—जाप सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमे ।

३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमे छात्रो द्वारा ।

४—सूर्योदयसे १ घन्टा पहिले परिवारमे एकत्र एकत्रित बालक बालिका महिला पुरुषों द्वारा ।

५—किसी भी विपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्ध छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रवचनसार-प्रवचन षष्ठ भाग

[प्रवक्ता—पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

दव्वट्ठियेण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठियेण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो ॥ ११४॥

इस आत्माका शरण वस्तु-स्वरूपका सम्यग् ज्ञान है । इसलिए मनोयोग सम्भाल करके कल्याणार्थी पुरुषको वस्तु-स्वरूपका सम्यक् ज्ञान कर लेना चाहिए । वस्तु-स्वरूपके जाननेकी दो मुख्य दृष्टियां हैं । एक तो सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेषदृष्टि । न केवल समान्य दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है और न केवल विशेष दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है, क्योंकि वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है । जैसे यहाँ किसी चीजका निर्णय करना है तो उसमें भी याने लोकव्यवहारके पदार्थमें भी सामान्य-विशेषात्मक बात रहती है ।

सामान्य विशेष बतानेके लिये मनुष्यका दृष्टान्त—देखो भैया ! ये सब जो मनुष्य बैठे हैं इन सब मनुष्योंको केवल मनुष्यकी दृष्टिसे देखो तो शुद्ध मनुष्यकी परख सामान्य दृष्टिसे मिलती है और इन्हीं मनुष्योंको प्रयोजनवश विशेष-विशेष दृष्टिसे देखो तो यदि कुछ लेन देनका काम है तो साहूकार इनमें से छांटे जाते हैं । कुछ से शारीरिक काम करानेका भाव है तो जो पहलवान से हैं, जो कामको मना नहीं कर सकते, ऐसे आदमी छांटे जाते हैं । कोई व्याख्यान कविता कराना हो तो पढ़े लिखे सुशिक्षित, बोल सकने लायक मनुष्यको छांटते हैं । इस तरह कई दृष्टियोंसे मनुष्यकी छांट होने लगती है । तब कहते हैं कि यह साहूकार है यह पण्डितजी है, यह स्वयंसेवक है इत्यादि । देखलो, अब विशेष दृष्टि करनेसे इनमें नाना विशेषताएँ नजर आने लगती हैं ।

सामान्य बिना विशेषका अभाव—सामान्यको तोड़ दो, अलग कर दो, अर्थात् वह मनुष्य सामान्य ही न रहे तो पण्डितपना, साहूकारपना कहाँ विराजेगा ? सामान्य तो होना ही चाहिए तब तो पण्डितजी बनें या अन्य-अन्य कहलाएं । अन्य-अन्य साहूकार आदि न हों और सामान्य भर मानें तो यह क्या बन जायगा ? और कुछ भी न होवे, न पण्डितजी हो, न साहूकार हो, न गरीब हो, न त्यागी हो, न गृहस्थ हो, न कमजोर

हैं, न वलवान हो, कुछ भी दशा नही हो, ऐसा भी कोई मनुष्य है क्या ? नही, नही। उनमे से जब मात्र मनुष्यत्वकी दृष्टिमे देखा जाय तो सामान्य नजर आयगा और जब अर्थक्रियाकारिताकी दृष्टिमे देखा जाय तो विशेष नजर आयगा। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है।

जीवोकी परख करो, सब जीव एक हैं या भिन्न ? यहाँ भी सामान्य दृष्टिमे देखा तो जीवोमे जो सामान्य तत्त्व है वही ज्ञानमे आया। जो सबमे बिना कुछ अन्तरके, बिना कुछ विलक्षणताके पूर्णरूपेण एक बात हो, वही सामान्य तत्त्व है। ऐसा सामान्य तत्त्व एक चैतन्य स्वभाव है। चैतन्य स्वभाव ज्ञेय तत्त्व है। वह जाना जा सकता है, किन्तु चैतन्य स्वभावका वर्णन किया जायगा तो विशेषताओंको नगारा किया जा सकता है। हम चैतन्य स्वभावका जैसा कि वह स्वय है, उसी रूपमे उपस्थित करना चाहे तो हम उसी रूपमे उपस्थित नही कर सकते। उसकी जानकारीके लिए विशेषताएँ बतानी होगी। उन विशेषताओंको जानकर अपने आपमे यह निर्णय करले कि इन सब विशेषताओंमे जो समान्यरूपसे है, शक्तिरूपसे है, ध्रुव है, वह सामान्य है।

विशेषके बिना सामान्य नहीं—जैसे सब मनुष्योमे हम मनुष्य सामान्यको बताना चाहे, मनुष्य सामान्य जैसा यथार्थ है उस ही रूपमे आपको दिखाना चाहे तो न दिखा सकेंगे, पर इनकी विशेषताएँ बताकर फिर यह सुझाव दें, कि इन सब विशेषताओंका जो आधार है, जो इन सब विशेषोमे सामान्यरूपमे रहता है वह मनुष्य कहलाता है। जैसे ये बच्चे है और वे बढकर बडे हुए तो अब जवान हैं और बडे हुए तो बूढे हुए। देखो जो मनुष्य बच्चा था वही मनुष्य जवान हुआ, जो मनुष्य जवान हुआ वही मनुष्य बूढा हुआ। तो देखो उस बच्चेकी दशा में, जवानीमे और बुढापे मे, इन सब दशाओंमे जो एक रहा, उन सब दशाओंका जो आधार रहा वही शुद्ध मनुष्य है। इस तरहसे बतला कर उपयोगको सामान्य तक पहुँचाया जा सकेगा। किन्तु मनुष्य सामान्यको जैसा वह सामान्य है, वस्तुरूपमे उपस्थित करना चाहे, बताना चाहें तो न बता सकेंगे।

भैया ! शकल रहित कोई मनुष्य आपने देखा हो तो बतला दो ? ऐसी ही बात सर्वत्र है। सामान्यका किसी दूसरेको बोध करना चाहे तो कुछ विशेष बातें कही जांयगी। उन विशेष बातोंको सुनाकर फिर सामान्यका निर्णय सामान्यदृष्टि करके कर सकते हैं। वैसे तो देखो भैया ! किसी भी वस्तुका शुद्ध याने विशेष्य रूप नाम ही नही है। सारे शब्द विशेषण ही रहे हैं। एक जीवका भी कोई ऐसा नाम नहीं है जिससे हम सीधा जान सकें कि वह स्वयं क्या पदार्थ है, सामान्य क्या है ? ऐसा कोई शब्द नही है जिसे बोलकर हम सामान्यरूपसे जीव जैसा है वैसा ही सीधा कह सकें।

किन्हीं किन्हीं विशेषण शब्दोंका ही नामशब्द बन जाना—देखो जीवके अनेक नाम हैं। जीव, आत्मा, चैतन्य, प्राणी, ज्ञाता ज्ञायक आदि अनेक नाम हैं मगर वे सबके सब जीवोंकी विशेषताका वर्णन करने वाले हैं। जीवका जो सामान्य रूप है उसका बताने वाला कोई शब्द ही नहीं है। जीवका अर्थ यह है कि जो प्राणोंको ले करके जीवे और परमार्थ दर्शनमें चले-तो जो ज्ञान दर्शन प्राण करि जीवे उसे जीव कहते हैं। जीवके इस अर्थमें विशेष ग्रहण किया गया या सामान्य ? विशेष ही ग्रहण किया गया।

आत्माका शब्दार्थ - आत्माका क्या अर्थ है ? "अतति सततं जानाति इति आत्मा" जो निरन्तर जानता रहता है उसे आत्मा कहते हैं। जानता रहता है ऐसी बात कहनेमें विशेषतत्त्व आया या सामान्यतत्त्व आया ? विशेष आया। प्राणी वह है जो प्राण धारण करे, इसमें साफ स्पष्ट ही विशेष आ गया। इस आत्माको ज्ञाता कहा जाय, जाननहार कहा जाय तो यह भी विशेष है। ऐसे गुणोंको इसकी विशेषता को इन शब्दोंने बता दिया। कोई शब्द ऐसा नहीं है जो वस्तुका असली नाम बता दे। वह शब्द तो कुछ विशेषता करके अर्थ बनाता है सो विशेषण बन गया। वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द नहीं है। अच्छा, यहीं की चीजोंका नाम बतला दो जो सिर्फ नाम हो, उसकी विशेषता बतलाने वाला न हो।

शब्दोंकी विशेषता—आप कहेंगे, लो बतला दिया यह चौकी है। चौकी तो नाम नहीं है। चौकी उसे कहते हैं जिसमें चार कोने हों। आप कहेंगे यह है चटाई। चटाई नाम नहीं है, इसे कहेंगे चट आई याने यों पकड़ी और चट आई, तो लो हो गयी यह चटाई। किसी वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द ही नहीं है। आप कहेंगे किवार 'कि' माने किसीको 'वार' माने 'रोकना' अर्थात् किसीको भी रोकना। कुत्ता, बिल्ली इत्यादिको रोकनेका जो काम करे उसे किवार कह दिया। आप कहेंगे भींट, तो भीं के मायने भींच करके, ईट के माने ईंट, अर्थात भींचकर ईंट रख दिया उसीको भींट कह दिया। सारे शब्द वस्तुकी विशेषता बतलाने वाले हैं। आप कहेंगे दूकान, तो सुनो जिसमें दो कानोंका काम पड़े उसको दूकान कहते हैं। एक ग्राहकका कान और दूसरा वस्तु वेचने वालेका कान। आप कहेंगे मकान। म के माने मत और कानके माने कान, अर्थात जिसमें दूसरेका कान न जाय सो मकान। कौनसा शब्द ऐसा है जो वस्तुका नाम बतला सके। भैया ! सब शब्द वस्तुकी विशेषता बतानेवाले हैं। उन ही शब्दोंके सहारे सामान्य दृष्टि बनाकर सामान्य तत्त्व निरख लिया जाता है। सब जीवोंके जाननेमें भी ये दो दृष्टियाँ काम करेंगी। एक सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेषदृष्टि। सामान्यदृष्टिका नाम है द्रव्यार्थिकनय और विशेषदृष्टिका नाम है

पर्यायार्थिकनय । जिसका केवल शुद्ध द्रव्य स्वरूप निरखनेका प्रयोजन हो, उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । जिस दृष्टिका प्रयोजन पर्यायभेद, विशेपता दिखानेका हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं ।

जुदे-जुदे नेत्रोंसे देखनेपर फूट निकलनेवाला विविध परिणाम—चूंकि समस्त वस्तुयें सामान्यविशेपस्वरूप हैं इस कारण वस्तुका स्वरूप देखनेवाला, समझनेवाला जो महापुरुष है, समझनेके लिये उसकी क्रमसे दो आंखें काम करती हैं । यहां आंख का मतलव चमडेकी आंखसे नही, ज्ञानकी आंखसे है । ज्ञान की दो आंखें होती हैं । एक द्रव्यार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके सामान्य तत्त्वका अवगम करता है और दूसरा पर्यायार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके विशेपका अवगम करता है । यहाँ दो दृष्टियाँ होती हैं, इन दोनों दृष्टियोंमें से जव हम पर्यायार्थिक दृष्टिको वन्द करलें और द्रव्यार्थिक नेत्रको खोल लें तो वहाँ केवल शुद्ध चैतन्य स्वभाव प्रतीत होता है और इस दृष्टिमे समस्त जीवलोक एक जीव द्रव्य मालूम होता है । इस ही दृष्टिसे परमार्थ ब्रह्मस्वरूप जाना जाता है ।

जैसे रोजगार वहुत तरह के हैं, पर जो सरल रोजगार हैं उनमे आमदनी कम है और जो दुस्तर रोजगार है उनमे अधिक आय हो सकती है । सो अधिक आयकी चाह करने वाले उससे घवडाते नही हैं । किन्तु व्यापारके करनेमे हिम्मत वढाये चले जाते हैं । इसी तरह इस ज्ञानकी भी ऐसी ही वात है । जो मजा देनेवाला ज्ञान है, मौज उडानेवाला ज्ञान है, किस्सा कहानियोंवाला अथवा दिल वहलानेवाला ज्ञान है उससे लाभ इतना ही रह जाता है कि उस समय कल्पनानुकूल मन प्रसन्न हो गया, दिल खुश हो गया । वडा अच्छा सगीत हुआ, वडा अच्छा गानतान हुआ, वहुत अच्छी हँसीकी वात कही उससे दिल खुश हो गया, यही तक ही वात रहेगी, पर जो तात्त्विक ज्ञान है उसका उपार्जन करना कठिन है । उसकी वात यदि वडे उपयोगसे सुनें तो ग्रहणमे रहती है । जरा भी उपयोग तितर-वितर किया वहाँ तात्त्विक वातावरण गन्दा हो गया । अव उस तात्त्विक उपयोगको ग्रहण करना कठिन हो गया ।

तत्त्वज्ञानकी शरण गहनेका फल शाश्वत आनन्द—यह तात्त्विक ज्ञान ऐसा लाभकारी है कि यदि यह समझमे आ जाय, अनुभवमे आ जाय तो वेडा पार हो जाय, ससारके दु खोंसे सदाके लिए छूट जाय । इस जीवको इन झूंठे गन्दे विचारोंने पागल वना दिया है, चचल वना दिया है, मायाकी ओर झुकने वाला वना दिया है, सत्यानन्दसे दूर कर दिया है । विपय प्रसग, विपयके साधन, ये सव जीवके पतनके साधन हैं । पतनके साधनकी ओर जाते हुए तुम्हे सरलता मालूम हो रही है और ज्ञानका उपयोग वना रहे यह वात कठिन मालूम हो रही है । पर भाई ! यह रफ्तार तो अनादिसे

चली आ रही है, रागद्वेप, मोह आदि चिपटे हुए चले आ रहे हैं तो बताओ फिर उद्धार कैसे किस भवमें किया जायगा। स्त्री, पुत्र इत्यादिसे मोह करते हुए ही जीवन विताना है तो सूकर, गधा, कुत्ता वनकर भी तो यह काम पूरा किया जा सकता है। विषय भोगोंका भोगना ही जीवनमें सार है तो कुत्ता, गधा, घोड़ा, सूकर इत्यादि वनकर भी तो भोगा जा सकता है। ऐसा उत्तम मनुष्य भव पाकर क्या लाभ उठाया? सोचो तो सही कि यह जीव कितना अंधेरेमें है, मोहमें है। अनेक शास्त्रोंमें गुरुदेवोंने इतनी हितकी वातें लिख दीं कि जिन्हें हम अपने आप उपार्जन करके पाना चाहें तो वड़ी कठिन तपस्यासे अन्तरंग ज्ञानमें जुटनेका महान संयम करें, तव कहीं उन वातोंका पता पड़ सकता है।

आचार्य देवने हितकी वातोंको स्पष्ट ग्रन्थमें लिख दिया, किन्तु हम ऐसे कुपूत वन गए कि सामने पड़ी हुई निधिको भी हम उठाना नहीं चाहते। अर्थात् ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे अमृत तत्त्व भरा है, फिर भी हम उसे पीना नहीं चाहते। भैया, कोई पुरुष दुःखी, भूखा आलसी हो, जिसके सामने अनेक व्यंजनोंसे पूर्ण थाल रख भी दिया जावे, फिर भी वह इतना आलस्य करे कि खानेकी इच्छा न करे, मुखमें हाथसे उठाकर रखना भी पसन्द न करे तो इसे वेवकूफी कहोगे या वुद्धिमानी। कोई यह कह दे कि अच्छा, हम हाथसे उठाकर तुम्हारे मुँहमें धरे देते हैं और फिर भी वह यह कहे कि ग्रास चवानेमें आलस्य है तो इससे वढ़कर और क्या वेवकूफी हो सकती है। ग्रन्थोंमें स्पष्ट आचार्य देवने सव लिख दिया है किन्तु उनका स्वाध्याय न किया, गप्पोंमें ही समय विता दिया तो क्या आप समझते हैं कि यह वुद्धिमानी है? नहीं, अविवेक है।

दो आंखोंके द्वारा चार प्रकारका दर्शन—यहाँ आचार्य देव वस्तुस्वरूपको सर्वतोमुखी व्यक्त कर रहे है, वस्तुके स्वरूपको समझनेके लिए द्रव्यार्थिक दृष्टि और पर्यायार्थिक दृष्टिकी मुख्यता व गौणता कराकर ज्ञानमें उद्यम करा रहे है। देखो—भैया जैसे मनुष्यकी दो आँखें है, सो वायीं आँख वंद करके दायीं आंखसे देखें तो देखा जा सकता है, दायीं आँख वंद करके वायीं आँखसे देखें तो देखा जा सकता और दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसार कर देखें तो देखा जा सकता है तथा दोनों आँखोंको वंद करके भीतरमें कुछ देखना चाहें तो भी कुछ देखा जा सकता है। देखनेकी पद्धति चार हैं। इसी तरहसे चेतनके कार्य होनेकी विधियाँ भी चार हैं। द्रव्यार्थिक नयके नेत्रसे देखो अथवा पर्यायार्थिक नयके नेत्रोंसे देखो-ये हैं नय, अथवा दोनोंका आश्रय करके देखो, यह है प्रमाण, अथवा नय और प्रमाण इन सवको गौण करके मात्र अनुभव करो। इस तरह चार वातें है। द्रव्यार्थिक नयसे सामान्यतत्त्वका ज्ञान होता है, पर्यायार्थिक नयसे विशेषका ज्ञान होता है तथा दोनोंके प्रमाणसे प्रमेय ज्ञात होता

है और इन सबको गौण करके परम विश्राममे रह जाय तो आत्माके स्वय सहज का अनुभव जगता है।

यहाँ दोनो नयोकी बात चल रही है। द्रव्यार्थिकनय कहते हैं उसे, जो सामान्यको विषय करे और पर्यायार्थिक नय कहते है उसे, जो विशेषको विषय करे। ये दर्शनशास्त्रकी तात्त्विक बातें चल रही हैं। भैया, समझमे नहीं आता हो तो इतना ही विश्वास रखो कि वस्तुस्वरूपके समझनेकी पद्धति जैन दर्शनने अनोखी है, ऊँची है। कुछ तो ज्ञान हो ही रहा होगा। उन दोना दृष्टियोंमे से जब पर्यायार्थिक नय नेत्रको गौण कर दिया अर्थात् वर्तमान उपयोगमे बिल्कुल बद कर दिया, उसकी दृष्टि ही न रक्खी और केवल द्रव्यार्थिक नयके नेत्रको ही उघाडा, द्रव्यार्थिक नय नेत्रकी दृष्टि ही रक्खी तो उसमें इस ससारके समस्त जीवोमे जोकि कोई नारकी हैं, कोई तिर्यञ्च हैं, कोई मनुष्य है और कोई देव हैं तथा ससारसे परे जो पवित्र मुक्त आत्मा हैं इन ५ प्रकारके समस्त जीवोमे इन ५ प्रकारकी समस्त परिणतियोंमें, उन सब विशेषताओंमे रहने वाला जो जीव सामान्य है वही देखा जाता है। भैया वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती हैं। जैसे मनुष्य सामान्य और सेठ, दरिद्र, राजा, प्रजा, रंक, पडित, मोही इत्यादि विशेष हैं। तो इसमे जब सामान्यको निरखें तो मनुष्य-मनुष्य मे कोई भेद नजर नही आता है और जब विशेषको निरखे तो उसमे परस्पर भेद नजर आता हैं। इसी तरह जब जीवसामान्यको देखते हैं तो निगोदसे लेकर सिद्ध-पर्यन्त तक सब प्रकारके जीवोमे कुछ भी अन्तर नहीं नजर आता, एक चेतन सामान्य ही उसके उपयोगमे रहता है। इस दृष्टिमे जीवसामान्य एक देखा जाता है सो जीव सामान्य जिन पुरुषोंने देखा उनको उस समय विशेषका अवलोकन नही हुआ। वह वहाँ विशेष, भेद, पर्याय या गुण मे दृष्टि नही डालता।

ऐसे ज्ञानी पुरुषोको यह समस्त जीव लोक एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। जैसे यहाँ बहुतसे बैठे हुए मनुष्योको यदि जातिका कुलका, धनी निर्धनीपने का, ज्ञानी अज्ञानीका कोई भेद न रक्खा जाय तो सारे मनुष्य एकसे ही नजर आते हैं। उनमे अन्तर नही नजर आता है।

दृष्टिका प्रताप—भैया, सामान्य दृष्टि या विशेष दृष्टि करनेमे अब देखलो क्या फल मिलता है। जब सब मनुष्यको एक मनुष्यके निगाहसे ही देखा ये उस समय यो सामान्य मनुष्य देखने वालोको कोई आकुलता नही रहती और जहा विशेष विशेष भेद देखे गये वहा पर आकुलताएँ हो जाती है। किसीको देखा यह बडे सेठ हैं, यो विशेष देखने वाला उनके सम्मानका यत्न करेगा, अपनेको हीन देखेगा और उसको दूसरोसे भी बडा निरखेगा, अपनेमे क्षोभ उत्पन्न कर लेगा और स्वार्थवश

कुछ चापलूसी सी भी करेगा। सारा कष्ट करना पड़ेगा उसे, क्योंकि उसने विशेष देख लिया। इतना ही नहीं, उसने विशेषकी रुचि भी करली। सामान्यको ही निरखे तो वहां कोई क्लेश नहीं है। बड़े योगीजन आध्यात्मिक पुरुष करते क्या है? यही कोशिश करते हैं कि हमारी कुछ चेतन्य स्वभावमें ही दृष्टि जाय, इसी यत्नके रखने वालेको ही आध्यात्मिक योगी कहते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि द्रव्यमें पर्याय नहीं है। द्रव्य पर्यायशून्य होता ही नहीं है। पर्याय नहीं होगा तो द्रव्यका भी अभाव होगा। जैसे किसी शक्लके बिना कोई मनुष्य नहीं होता है। मनुष्यकी तो कुछ न कुछ शक्ल भी होती है, चाहे वह लम्बी शक्ल हो, चाहे गोल हो, चाहे बेढब चेहरा हो, किसी भी शक्लका होगा तो वह विशेष चीज है और मनुष्यपना सामान्य चीज है। वह मनुष्य क्या जिसमें शक्ल बिल्कुल कुछ न हो। इसी तरह पर्यायके बिना द्रव्य कुछ नहीं है। पदार्थ है तो उसका कोई न कोई परिणमन अवश्य है और होता रहेगा। पर्याय हैं, वे रहें, यहां तो दृष्टिका प्रताप कह रहा हूँ। उस पर्यायमें यदि द्रव्यदृष्टि करलो, यही स्वभाव है, यही सर्वस्व है, ऐसा विशेष दृष्टिमें करलो तो वह मोह है और उसका फल संसारमें रुलना है। भैया! यह बात ठीक है ना, और कोई द्रव्यदृष्टिका एकान्त करले कि जिसका परिणमन ही नहीं है, केवल एक चैतन्य है, ब्रह्म है, सर्वव्यापक है, परिणति उसकी होती ही नहीं है ऐसा एकान्त द्रव्यस्वरूप मात्र माना जाय तो वहां कुछ ग्रहणमें ही नहीं आता, केवल कल्पनाओंमें ही बन्धन रहता है। इससे द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुका ज्ञान होनेपर ही सम्यग्ज्ञान जग सकता है।

सो सम्यग्ज्ञान जगा कर भी जब तक इस प्रकारके लोकका संग रहता है और अनेक तर्क-वितर्कोंमें ही फंसा रहता है उपयोग, ऐसा ही चंचल चल रहा है मन, इस पर्यायसे इस विशेषका भारी संग बन रहा है, तब तक ऐसी स्थितिमें तुम्हारे भीतर यह प्रयत्न बनना चाहिए कि कभी-कभी इन विशेषोंको गौण करके इस एक जीवत्व सामान्य अमृत तत्त्वका पान किया करें। हां, जो जीव वीतरागी है विश्वका ज्ञाता द्रष्टा है उसको विशेषदृष्टि गौण करके सामान्यदृष्टिकी मुख्यता करनेका यत्न नहीं करना पड़ता है। वह तो सब प्रकारके विकल्पोंसे परे है, मात्र ज्ञाता द्रष्टा है। पर जिसकी ज्ञाता द्रष्टा बने रहनेकी स्थिति नहीं है उसको तो यह यत्न करनेकी आवश्यकता ही है और इस यत्नसे उसे लाभ ही है।

द्रव्यार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन—भैया! जब पर्यायार्थिकनय नेत्र बन्द करके द्रव्यार्थिकनय नेत्रसे देखा जाय तो जीव सामान्य स्वरूप नजर आता है। और इस नजरसे सर्व जीव एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। चूंकि यह दृष्टि स्वहितके बड़े कामकी है, इस कारण इसका ही एकान्त करके कोई अभेद अद्वैतका दर्शन मान लेते हैं

तो वह अधूरी ही बात है, क्योंकि पर्यायशून्य केवल द्रव्यकी बात करना कल्पनाएं करना ही मात्र है। वहां वस्तु या चीज नहीं बन पाती है। यह है द्रव्यार्थिकनय की दृष्टिकी बात।

पर्यायार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन— अब आगे चल कर देखो कि जब द्रव्यार्थिकनय का नेत्र बन्द कर लिया जाय और पर्यायार्थिकनयके नेत्रसे देखें तो वहां जीव द्रव्यमें रहनेवाले नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, सिद्ध ये पर्याय नजर आते हैं, पर्यायात्मक विशेष ही नजर आते हैं सो उन विशेषोंको जो लोग देखते हैं वे सामान्यको नहीं देख रहे हैं। ऐसी दृष्टिमें ये भिन्न-भिन्न जीव नजर आ रहे हैं। ये जीव अन्य है, ये जीव अन्य हैं, ये जीव अन्य हैं। यह तिर्यक् सामान्यके मुकाबिलेमें तिर्यक् विशेषकी अपेक्षा बात कही गयी है।

सामान्य तत्त्वके दर्शन की दो पद्धतियां—सामान्य तत्त्व देखनेके दो तरीके हैं। जैसे एक मनुष्यसामान्यको देखना है तो एक तो यों देखा जा सकता है कि उन सब मनुष्योंको विशेषकी दृष्टि गौण करके एक सामान्यमनुष्यत्वकी दृष्टिसे निहारना और एक यों देखा जा सकता है कि एक ही मनुष्यको देखे, वह बालक हो, जवान हो, या बुड्ढा हो इन सब अवस्थाओंमें रहनेवाला जो एक है उसको देखे, वह सामान्य मनुष्य है। इसे कहते हैं ऊर्द्ध्वता सामान्य और सब मनुष्योंको मनुष्यसामान्य देखना इसे कहते हैं तिर्यक् सामान्य। एक ही वस्तुकी सब अवस्थाओंमें उसको एक वस्तुसामान्य देखना ऊर्द्ध्वता सामान्य कहलाता है। यह दर्शनशास्त्रकी पद्धति है, जिसके द्वारा हम वस्तुका स्पष्ट लक्षण समझ पाते हैं। सो अब ऊर्द्ध्वता सामान्यकी अपेक्षा नजर करें तो एक ही जीवमें अनादि अनन्त जो स्वरूप है, वह स्वरूप द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाता है और एक ही जीवकी समय-समयकी होने वाली जो हालत है वह सब परिणतिविशेष पर्यायार्थिकनयसे देखा जाता है।

जो कर्ता वही भोक्ता, कर्ता अन्य भोक्ता अन्य—अब देखलो इन दृष्टियोंके एकान्त करनेका फल, जिन्होंने सामान्यका ही एकान्त किया उनकी निगाहमें एक ब्रह्म· वाद ही नजर आया और जिन्होंने पर्यायार्थिकनयका एकान्त किया उनके यहां क्षण-क्षणमें अन्य-अन्य जीव होते नजर आये। इसे कहते हैं बौद्ध दर्शन और उसे कहते हैं वेदान्त दर्शन। यहाँ सामान्य एकान्त व विशेष एकान्त के, भेद और अभेद एकान्तके दर्शन हुए। किन्तु जैनदर्शनमें ये दोनों ही दर्शन हैं।

द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे तो यह सब एक जीव द्रव्य दीखा और पर्यायार्थिकनय दृष्टि से वे सब भिन्न-भिन्न जीव दीखे। यदि यह पूछा जाय कि बतलावो जो करता है वही भोगता है या कोई दूसरा भोगता है। यह प्रश्न सामने रक्खा। क्या उत्तर दोगे ? एक

दृष्टिमे यह उत्तर आएगा कि जो करता है वही भोगता है, कोई दूसरा नही भोगता है, जिस जीवने किया उस जीवने भोगा। एक जीवके करनेका फल दूसरा जीव कैसे भोग सकता है। जिसने किया उसने ही भोगा यह उत्तर आया है। यह भी उत्तर सही हो सकता है कि जो करता है वह नही भोगता है। मनुष्यने तो तप किया, व्रत पाला, दान किया, परोपकार किया और उसका फल किसने भोगा? यह मनुष्य देव बन कर भोगेगा ना। तो किसने भोगा? क्या मनुष्यने भोगा? नही, देवने मजा लिया, यह भी सही है। ये दोनों ही उत्तर सही हैं। जब द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे उत्तर सोचो तो यह आता है कि जो करता है वही भोगता है पर जब पर्यायार्थिक नयकी ओर दृष्टि दें तो उत्तर होगा कि करने वाला और है व भोगने वाला और है। किया तो मनुष्यने और भोगा देवने। तो ये दोनो ही उत्तर ठीक हैं। कोई कहे कि सही बात तो बताओ, तो कहोगे कि सही बात तो यह भी है और यह भी है। दृष्टिकी बात है सब।

द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकका व्यापी अर्थ—इससे आगे और समस्याओको सुलझावो तो द्रव्यार्थिकनयका नाम है अभेद दृष्टि और पर्यायर्थिकनयका नाम है भेद दृष्टि। अभेद दृष्टिमे अभेद नजर आता है और भेद दृष्टिमे भेद नजर आता है। जैसे किसीने पूछा कि भाई! बतलाओ जीव नित्य है कि अनित्य? नित्यका अर्थ है सदा रहनेवाला और अनित्यका अर्थ है होनेवाला और मिटनेवाला। बतलावो कि जीव नित्य है या अनित्य है? इसके समाधानमे दोनों उत्तर आयेंगे। जीव नित्य है और अनित्य भी है। जब अभेद दृष्टिमे देखें तो जीव वही है अनादि अनन्त और भेद दृष्टिमे देखे तो जैसा जीव सुबह था वैसा दोपहरमे नही रहा। सुबह तो शान्त था और भगवानका नाम ले रहा था मगर अब भूख-प्यासकी कल्पनामे अधीर बैठा है। जो सुबह पर्याय था वह अब नहीं रहा। भेददृष्टिसे, पर्यायदृष्टिसे क्षण-क्षणमे उत्पाद व्यय करनेवाला है। इसलिये जीव नित्य है और अनित्य भी है। जीव एक है कि अनेक हैं? क्या उत्तर होगा? दोनों उत्तर होंगे। अभेददृष्टिसे देखो तो जीव एक नजर आता है और भेददृष्टिसे देखा तो जीव अनेक नजर आवेंगे।

इसी प्रकार जितने भी प्रश्न किये जाये उत्तर देनेके लिए भेददृष्टि और अभेददृष्टि दोनोंका आश्रय किया जायगा। और इसीके अनुसार उत्तर आता है। जैसे एक मनुष्यके विषयमे पूछे कि यह कौन है तो कहा जाता है कि फलानेका पिता है तो यह तो उत्तर ठीक है और यदि यह कहा जाय कि यह फलानेका पुत्र है तो यह भी उत्तर सही है। यह अपेक्षाकी बात कही जाती है। अपेक्षा पहले दिमागमे आती है और पीछे बतलायी जाती है बात। तो पदार्थोंका उत्तर अपेक्षासे आता है।

इसलिये अपेक्षा लगाकर उनका ज्ञान करना चाहिये। इससे ही सम्यग्ज्ञान होगा। सम्यग्ज्ञानसे ही शुद्ध दृष्टि जगेगी और उस शुद्ध दृष्टिमे ही इस जीवका कल्याण होगा।

जीव स्वरूपकी अपेक्षा एक व अर्थक्रियाकी अपेक्षा अनेक—भैया! जितने भी पदार्थ होते हैं वे निरन्तर परिणमन करते हैं। सो यही निश्चय कीजिये कि पदार्थ तो हमेशा रहते हैं उनकी दशा बदलती रहती है। आज कुछ दशा है कल कुछ दशा है, ऐसी प्रतिसमय उनकी अवस्था बदलती रहती है, किन्तु है प्रत्येक वस्तु वही का वही। अब उसमे द्रव्यको देखो तो वह एक है और जब पर्यायको देखो तब वह भिन्न-भिन्न है, आज कुछ है कल कुछ है। जब जीवको द्रव्यार्थिकनय-दृष्टिमे देखा तो वह एक द्रव्य ही मालूम होता है और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिमे देखो तब वह भिन्न-भिन्न मालूम होता है। जैसे एक तुम ही जीव हो, आज मनुष्य हो, पहिले और कुछ थे, आगे और कुछ होगे, तो वह भिन्न-भिन्न हो गया। पर्यायार्थिकनयदृष्टिमे देखो तब वे भिन्न-भिन्न चीजें हैं। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि पर्याय भिन्न-भिन्न होती या द्रव्य? द्रव्य तो भिन्न-भिन्न नहीं होता। जैसे यहीं जीव द्रव्यसे तो एक है पर पर्यायसे अनेक है। तो पर्याय अनेक है कि जीव अनेक है। अगर कहे कि पर्याय अनेक हैं, जीव अनेक नही हैं तो जीवमे फिर यह नही घटा कि जीव अनेक हैं। उसका उत्तर श्री अमृतचन्द्र आचार्य यह दे रहे हैं कि जो द्रव्य होता है और उस द्रव्यके पर्याय होते हैं सो पर्यायके समयमे वह द्रव्य पर्यायसे कुछ जुदा नही होता, वह पर्यायसे तन्मय है। पर्यायात्मक जो विशेष होते हैं, उन उन विशेषोमे द्रव्य तन्मय है। जीवको जो पर्याये हैं, उन पर्यायोसे जीव पर्यायके समयमे तन्मय है। इसी बातको प्रवचनसारमे भी कहा है कि "परिणमदि जेण दव्व तक्काल तम्मयत्ति पण्णत्त।'

द्रव्यकी पर्यायकालमे पर्यायसे तन्मयता—द्रव्य जिस रूपसे परिणमता है उस कालमे वह द्रव्य तन्मय हो जाता है। जब जो पर्याय व्यक्त है, उस पर्यायमे द्रव्य तन्मय है। जिस समय जो पर्याय है उस समय द्रव्य उसमे तन्मय है। अत जब पर्यायको देखा कि भिन्न-भिन्न है और पर्यायसे द्रव्य है तन्मय, सो पर्यायकी मुख्यतासे यदि द्रव्यको देखा जायगा तो वह पदार्थ भी भिन्न-भिन्न कहा जायगा, क्योकि उस वस्तुको पर्यायकी मुख्यतासे देखा है। सो यह नही कहा जायगा कि सर्व पर्याय भिन्न-भिन्न है, क्योकि पदार्थोको तो देख रहे है, हाँ, पर्यायकी दृष्टिकी मुख्यतासे देख रहे हैं तो यह कहा जायगा कि पर्याय भिन्न-भिन्न हो गया है। जैसे कि अग्नि कोयलेमे लगी है, अग्नि काठमे लगी है, अग्नि पत्रोमे लगी है, अग्नि तिनकेमे लगी है तो सर्वत्र अग्निका स्वरूप गर्मी है, कडेमे हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है कोयला काठ आदि मे हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है। और भी सोचो अग्नि कोयलेमे लगी है, तो

उस कोयला ईंधनका जो पिंड है उससे अग्नि तन्मय है कि नहीं ? जब जिस ईंधनमें अग्नि है तब उस ईंधनमें अग्नि तन्मय है सो यही अग्नि भिन्न-भिन्न कही जायगी। तभी यह कम तेज अग्नि है, यह ज्यादा तेज अग्नि है, उनमें यह भेद पड़ जाता है।

इसी तरह समझलो जीव तो एक ही द्रव्य है। जिस समय पर्यायको वह अंगीकार करता है उस समय वह पर्यायसे तन्मय होगा। वह पर्याय कहीं भिन्न द्रव्यसे, भिन्न क्षेत्रसे नहीं आयी। उस समय वह द्रव्य ही उस पर्यायरूपमें उपस्थित हुआ है। द्रव्य प्रति समय किसी न किसी पर्याय रूपमें ही उपस्थित होता रहता है। ऐसा ही द्रव्यका वह स्वतःसिद्ध गुण है।

दृष्टिके अनुकूल तत्त्वविज्ञान—द्रव्य पर्यायसे तन्मय है उस पदार्थको जब पर्याय दृष्टिसे देखें तो वह द्रव्य भिन्न-भिन्न मालूम होगा और द्रव्य दृष्टिसे देखें तो एक ज्ञात होगा। इस तरह पदार्थोंके निरखनेकी दो प्रकारकी दृष्टियाँ हैं। (१) द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और (२) पर्यायार्थिकनयदृष्टि। इन दोनों दृष्टियोंसे देखो तो सत् का सर्वविलोकन होता है। उस सत् को ऐसी दृष्टिसे देखें कि जिसकी दृष्टिमें द्रव्य ही प्रयोजन है, सामान्य ही जिसका लक्ष्य है तो उस दृष्टिमें वही सत् एक दीखा, नित्य दीखा और उस ही सत् को जब पर्यायदृष्टिसे याने पर्याय ही जिसका प्रयोजन है इस दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें विशेष विशेष दीखा, अनित्य दीखा, भिन्न-भिन्न दीखा। वही सत् द्रव्यदृष्टि द्वारा देखे जानेसे एक नित्य और वही पर्यायदृष्टि द्वारा देखे जानेसे अनेक और अनित्य दीखा। जब जिस दृष्टिसे देखें तब सत् में वही दीखता है। इसका कारण यह है कि पदार्थ जितने हैं, वे हैं और परिणमते रहते हैं। यह बात तो पदार्थोंमें स्वतः सिद्ध है। यह खासियत किसी दूसरेकी कृपासे नहीं आई है। यह पदार्थ है तो इसमें ये दो बातें हैं ही। वे हैं और परिणमते रहते हैं। वहाँ न तो "है पना" छूटता है और न परिणति छूटती है। प्रत्येक समय है और प्रत्येक समय परिणमते है। जब हम शुद्धदृष्टिसे देखते हैं तो वह एक मालूम होता है और जब परिणमनकी दृष्टिसे देखते हैं तो भिन्न और अध्रुव मालूम होते हैं। ये वस्तुओंके जाननेके मुख्य तरीके हैं। यह पद्धति स्याद्वादकी देन है। स्याद्वादके बिना वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं किया जा सकता है। ये विषय तो दोनो दृष्टियोंके अलग-अलग प्रताप हैं। जब द्रव्यदृष्टिसे देखें तो सामान्यतत्त्व देखनेमें आया और जब पर्यायदृष्टिसे देखें तो विशेष तत्त्व देखनेमें आया; पर जिस समय दोनों ही दृष्टियों को एक ही साथ खोलें, द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और पर्यायार्थिकनयदृष्टि दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसारें और सत् को देखें तो एक ही साथ सामान्य और विशेष दोनों तत्त्व दीख जाते हैं।

नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्धपना, इन पर्यायोमे रहनेवाला जीवसामान्य है और जीवसामान्यमे रहनेवाले नारक तिर्यञ्च मनुष्य देव और सिद्धपना विशेष है। जब पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनय इन दोनोंके द्वारा वस्तुधर्म एक ही साथ देखे जाते हैं तब वस्तुका "है पना" और वस्तुका परिणतिरूप विशेष ये दोनो ही एक साथ नजर आते है। यदि एक-एक दृष्टिमे देखते है तो उस अवगमको तो नय कहते हैं और दोनो नयोको एक साथ देखें तो उस अवगमको प्रमाण कहते हैं। इसमें एक चक्षुसे देखें तो एक अश देखते रहते हैं और दोनो चक्षुदोंसे देखें तो सर्व अश देखते रहते हैं अर्थात् जब द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे देखें तब एकदेश सामान्य तत्त्व देखने मे आया। और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखें तो एकदेश विशेष तत्त्व देखनेमे आया। किन्तु, दोनो ही दृष्टियोसे जब देखते है तो वह पूर्ण सत् देखनेमें आया, जोकि सामान्यविशेषात्मक, द्रव्यपर्यायात्मक है। एक देश देखनेमे तो एक बात मालूम पडेगी। जैसे द्रव्यार्थिकनय दृष्टिमे देखें तो तत्त्व एक व अनन्य मालूम पडेगा। और पर्यायार्थिकनय दृष्टिमे देखें तो तत्त्व अनेक और भिन्न-भिन्न मालूम पडेगा। सो सर्वावलोकनमें ये दोनो बातें एक साथ दृष्टिमें आती हैं उनका निषेध नही किया जा सकता है। ये दोनों दृष्टियां हैं-भेददृष्टि और अभेददृष्टि। इनके द्वारा अन्य-अन्य बातोंका भी यथार्थ निर्णय किया जाता है।

भेददृष्टिमे निमित्त नैमित्तिक आदि सम्बन्ध—जैसे देखते है कि अग्निके होने पर जल गर्म हो जाता है, सूर्यकी किरणोंके होनेपर मनुष्यशरीर गर्म हो जाता है तो यह विषय है भेददृष्टिका। भेददृष्टिसे देखें तो निमित्त नैमित्तिक भाव समझमे आये याने पर्यायार्थिकनय दृष्टिमे देखें तो निमित्त नैमित्तिक भाव नजरमे आये, परन्तु अभेददृष्टिसे देखें, द्रव्यार्थिकनय दृष्टिमे देखें तो उस दृष्टिका विषय ही एक पदार्थ है। सो सब ही उपादान उपादान नजर आते हैं। जब द्रव्यार्थिकनय दृष्टिकी मुख्यतासे देखे तो वही एक उपादान नजर आता है। जो प्रतिकूल भी परिणमा है सो उसकी ही शक्तिसे परिणमा है। जो परिणतिया है उन्हे ही देखा गया है अन्य कुछ सम्बन्ध आदिक देखा ही नही गया है। यह बात सत्य है, फिर भी जब पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखे, भेददृष्टिसे देखें तो यह सब अपने प्रतिभासमे हो रहा है कि अमुक चीज अमुक पदार्थका निमित्त पाकर अमुक अमुक प्रकारसे परिणम गया हैं। यह बात प्रतीतिमे आता है। इन दोनो बातोमे से किसको कहा जा सकता है कि यह सत्य और यह है असत्य। भैया! द्रव्यदृष्टिसे देखनेपर सब उपादान रूप है, अपने आप सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते रहते हैं। जब पर्यायार्थिकनय दृष्टि (भेददृष्टि) से देखें तो यह सम्बन्ध भी सत्य नजर आया कि अमुकका निमित्त पाकर अमुक पदार्थ इस रूप परिणम गया। और इस तरह परिणमा करता

है यह सम्बन्ध भी सत्य है। दृष्टियोंकी भी बात देखें तो क्या यह कहा जा सकता है कि द्रव्यार्थिकनय दृष्टि सत्य है और पर्यायार्थिकनय दृष्टि असत्य है? नहीं, दोनों ही सत्य हैं क्योंकि पदार्थ हैं और परिणमते रहते हैं। इनमें से किसका लोप किया जाय। हां, यदि यह व्याख्या करें कि जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं और जो उस सत्में न हो उसे असत्य कहते हैं, तो इस दृष्टिमें "है" और परिणमन दोनों सत्य होंगे जब इस प्रकार देखें कि जो जो सत्में सहज हो वह सत्य हैं और जो सहज नहीं हैं वह असत्य हैं तो द्रव्य दृष्टिका विषय तो सत्य होगा और पर्यायार्थिकनयका विषय असत्य होगा। मगर यह व्यवस्था द्रव्यार्थिकनय दृष्टिमें है। अगर पर्यायार्थिकनय दृष्टिमें देखते हैं तो पर्यायकी बातें सत्य हैं। इस कारण सच्ची जानकारी करना हैं तो दोनों दृष्टियोंसे पदार्थोंको निरखो और सच्चा ज्ञान करते जावो, क्योंकि सभी दृष्टियोंसे देखनेपर वस्तुओंका सर्व स्वरूप देखा जाता है।

सर्व दृष्टियोंसे वस्तुकी अवगम्यता—भैया, ज्ञानमें तो सभी बातें ज्ञात करना चाहिए और जब उपादेयकी बात चले कि तुमको कौन सा ज्ञान, कौन सी दृष्टि हितकर है, शान्तिप्रद है तब उसमें पदवीके, योग्यताके अनुकूल यह उपदेश है कि जो वीतरागी हैं वह तो ज्ञाता द्रष्टा ही रहता है, उनको तो इन नयोंमें से आलम्बनकी छटनी नहीं करना हैं, क्योंकि वे तो वीतराग है, कृतकृत्य है, वे तो सहज परिणमते रहते हैं। किन्तु जो वीतरागकी दशामें न तो प्राप्त है और जिनका कि नाना प्रकार के सगोंमें रहना होता है जिनका मन चचल होता है ऐसी योग्यतावालोंको यह उपदेश है कि ममताकी साधनभूत जो अध्रुव विषयकी दृष्टि है उसको तो गौण करदें और जो एक नित्य ध्रुव विषय है उस विषयमें दृष्टि दें तो मिथ्या कल्पनाएं हटें, विकल्प हटें, शुद्ध आनन्द प्रकट हो, कर्मोंका क्षय हो, मोक्षमार्ग बढ़े। परन्तु सम्यग्ज्ञान करनेके लिए तो सभी समी दृष्टियोंका उपयोग करना चाहिए। तभी हम वस्तुको पूर्ण जान सकते हैं। जैसे यह चौकी है, इसके बारेमें ज्ञान करना है तो ऊंचाई, चौड़ाई, लम्बाई और मजबूती सभी बातोंका ज्ञान करते हैं और सभी बातोंका ज्ञान होनेपर प्रयोजनमें उसकी मजबूतीपर कड़ा ध्यान रखते हैं, क्योंकि गैर मजबूती हो तो उसपर बैठनेसे हाथ पैर टूट जायगा। ज्ञान सबका है, पर बैठनेके प्रयोजनमें लक्ष्य उसकी मजबूतीपर है। इसी तरह ज्ञानी जीवका पदार्थोंके बारेमें ज्ञान तो सबका होता है सही, किन्तु प्रयोजनमें दृष्टिकी मुख्यता होती है। सो दृष्टियोंसे द्रव्यका, पर्यायका यथार्थ ज्ञान करके अथवा पर्यायको पर्याय समझ कर द्रव्यको द्रव्य समझ कर फिर पर्यायकी दृष्टिको गौण करके द्रव्यदृष्टिकी मुख्यता करके अपने ध्रुव सामान्यके उपयोगका साधन करना, ऐसा हितके लिए ज्ञानी महर्षियोंका उपदेश है।

एकदेश और सर्वदेशदृष्टिका विषय—वस्तुका पूर्ण अवगम द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों दृष्टियोंसे होता है - एक दृष्टिसे केवल एकदेश ही अवगम होगा प्रमाणदृष्टि से सर्वदेश अवगम होता है। भैया, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका और बड़ा विस्तार है। किसी बातको सर्वप्रथम जिस किसी अभेदरूपमें रखते हैं, यदि मैं उसको उससे और अधिक अभेदकी ओर ले जाऊँ तो पहली बात पर्यायार्थिकनय हो जा सकती है और अधिक अभेदकी बात द्रव्यार्थिकनय हो जाती है। जैसे कि संग्रहनय और व्यवहारनय मुकाबिलेतन बदल जाते हैं, जैसे स्कन्ध या अणु भी संग्रहनयका विषय है किन्तु उनके मुकाबलेमें कहा जाय कि पुद्गल, तो पुद्गल संग्रहनयका विषय होगा और अणु, स्कन्ध व्यवहारनयका विषय होगा। फिर जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश काल रूपसे द्रव्यके भेदोंमें पुद्गलको रक्खा तो इस दृष्टिमें व्यवहारनयका विषय पुद्गल होगा और द्रव्य संग्रहनयका विषय होगा। जैसे संग्रहनय और व्यवहारनय कोई नियमित रूप नहीं रखते हैं। मुकाबले से संग्रहनय और व्यवहारनय बदलना रहता है। हाँ संग्रहमें जो परसंग्रह है या परमसंग्रह है वह नहीं बदलता है। इसी तरह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय, इन दोनों का नाम बदल बदलता रहता है पर आत्मस्वभावका विषय करनेवाला परम द्रव्यार्थिकनय नहीं बदलता। जहाँ भेद है वहाँ पर्यायार्थिकनय है और जहाँ अभेद है वहाँ द्रव्यार्थिकनय है।

अभेद और भेदके परिवर्तनका उदाहरण—जैसे धवल ग्रथमें जिस चीजका वर्णन करना हुआ तो यदि सामान्य रूपका वर्णन कर दिया तो कहते हैं द्रव्यार्थिकनयका वर्णन और विशेषरूपसे वर्णन कर दिया तो कहते हैं कि पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके वर्णन किया। जैसे जहाँ यह कहा कि ज्ञानावरण ५ प्रकार के हैं और फिर अगले सूत्रमें भेदोंके नाम बताये तो प्रश्न हुआ कि इनको तो पहिलेसे बताया था तो कहा कि यह तो पर्यायार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा है और वह द्रव्यार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा था। यह प्रकार बताना द्रव्यार्थिकनयका विषय है क्या ? वह पर्यायार्थिकनयका विषय है। फिर भी संक्षेप व विस्तारका मुकाबला करके द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकनयका उपयोग होता है। ५ भेदोंका नाम लेकर बताना, पर्यायार्थिकनय वर्णन है। संक्षेपमें कह दें कि ज्ञानावरण ५ प्रकार हैं तो वह द्रव्यार्थिकनयका वर्णन है। भैया, जिस वर्णनको संक्षेपमें कहा जा रहा है वह है द्रव्यार्थिकनयकी पद्धतिका वर्णन, और विस्तार हो गया सो हुई पर्यायार्थिक पद्धति।

परमशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी परम अभेदरूपता—द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी परिभाषा बहुत पद्धतियोंमें है, परन्तु परम शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका भेद नहीं है। वह तो एक परम अभेदको ही विषय करता है इसको न लेकर सामान्यतया देखो

द्रव्यार्थिक भी विस्तृत हो जाते है। भैया! इनके उपयोगको बड़ा कौशल चाहिये। जिस किसी चीजको थोड़े लेक्चरसे समझादे तो यह कहा जायगा कि द्रव्यार्थिकनयके रचितोंसे समझाया। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमे द्रव्यार्थिकनयका संक्षेपसे व पर्यायार्थिकनयको विस्तारसे समझानेमे कुशल कहा है यह चीज यहाँपर कही जा रही है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमे भेद और अभेदमे भी सम्बन्ध है। अब दूसरी बात अध्यात्मके मूलनयकी ले चले। इसमे दो नय हैं (१) निश्चय और (२) व्यवहार। निश्चयमे भी द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनो होते हैं। इन नयोंका चक्र बहुत बड़ा दुर्गम चक्र है। जैसे पहिले संग्राममे सुदर्शन चक्र सरीखे बड़े-बड़े चक्रोंके द्वारा विजय होती थी इसी तरह तत्त्वज्ञानके संग्राममे नयचक्रोंमे ही विजय होती है।

नयचक्रकी दुर्गमता—यहाँ भैया! नयोंकी बात चल रही कि ये ज्ञानके साधन (हथियार) कितने दुर्गम है—यहाँ पहिले निश्चय द्रव्यार्थिक और निश्चय पर्यायार्थिक, व्यवहार द्रव्यार्थिक और व्यवहार पर्यायार्थिक ये चार दृष्टिया लो। उनमे से द्रव्यार्थिकके तीन भेद हैं नैगम, संग्रह, व्यवहार और निश्चय पर्यायार्थिक नयके चार भेद हैं ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवंभूतनय। नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन नयपद्धतिप्रयोगसे व्यवहार द्रव्यार्थिक भी कहे जाते हैं। इनमे उस व्यवहारनयका काम नही है जिसका लक्ष्य दो या अनेक पदार्थोंपर पर व पर पदार्थके निमित्तसे होनेवाले परभावोपर है। व्यवहार पर्यायार्थिकनय भी उसे कहते हैं जो दो या अनेक पदार्थोको बतावे या उनका परस्परमे सम्बन्ध बताये। इन सात नयोमे दो या अनेक पदार्थोंके सम्बन्ध बतानेकी बात नही है। सो भैया, निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बताना यह व्यवहारनयसे हो सकता है। न तो यह निश्चय द्रव्यार्थिकनयमे है और न निश्चय पर्यायार्थिक नयमे है, और न व्यवहार द्रव्यार्थिकमे है।

निश्चय और व्यवहार का अर्थ—निश्चयका अर्थ है एक पदार्थको विषय करना। यह निश्चयकी मूल परिभाषा है। यदि एक पदार्थको पर्यायार्थिकनयकी गौणता करके अनादि अनन्त अहेतुक स्वभावकी मुख्यतासे जानें तो उस निश्चयका नाम है परम शुद्ध निश्चयनय। और निश्चयकी सीमामें तो एक द्रव्यको ही जानना, अनेकको न जानना, किन्तु यदि पर्यायकी मुख्यता करके पदार्थोंको जानें तो वह या तो शुद्ध निश्चयनय हो जायगा या अशुद्ध निश्चयनय हो जायगा। शुद्ध पर्यायसे तन्मय पदार्थोको जाने तो शुद्ध निश्चयनय होगा और अशुद्ध पर्यायसे तन्मयको जानें तो अशुद्ध निश्चयनय होगा। परन्तु व्यवहारनय उसे कहते हैं जो दो पदार्थोंको या अनेक पदार्थोंको या किसी निमित्तभूत पदार्थके निमित्त से होने वाले विकार परिणमनो को देखें।

अकर्तृकर्मभाव व निमित्तनैमित्तिकभावका समन्वय—भैया, विकाररूप तो विकारी पदार्थ स्वयं परिणमता है, किन्तु पर पदार्थको निमित्तमात्र करके परिणमता है। व्यवहारनयका मामला असत्य हो, सो नही, सत्य है, परन्तु व्यवहारनयका जो विषय है वह न केवल उपादानका आश्रयरूप है और न केवल निमित्तभूत वस्तुका आश्रयरूप है। किसी एक द्रव्यमे वह नही है इसलिए एक सत् मे न होनेके कारण असत्य कहा जाता है, मगर झूठ नही कहा जाता है। असत्य और झूठमे अन्तर है। असत्यका अर्थ है सति भव, सत्य, न सत्य इति असत्य। जो सत्मे हो उसे सत्य कहते हैं और जो सत् मे न हो उसे असत्य कहते है। तथा सत् पदार्थमे जो अनादि अनन्त हो उसे तो कहते हैं ध्रुव सत्य और जो सत् पदार्थोमे हो तो सही, पर आगे पीछे न हो उसे कहते हैं अध्रुवसत्य। परन्तु सम्बन्धकी बात तो किसी एकमे नही होती, इसलिए सम्बन्ध कैसा भी हो वह सत्य नही है, क्योकि न तो वह सत्मे ध्रुव है और न सत् मे परिणमनरूप है। इस कारणसे निमित्तनैमित्तिक भाव, सयोग आदि सम्बन्ध सब असत्य हैं, पर झूठ नही हैं। ऐसा नही है कि कर्मोदयके होनेपर भी राग हो और कर्मोदयके न होनेपर भी राग हो। इस कारण उस कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामे रागादिक होते हैं ये बातें सच हैं झूठ नही हैं, मगर ये सम्बन्धकी बातें हैं वे किसी एक पदार्थमे नही हैं, इसलिए ये असत्य हैं।

सम्बन्ध का अभाव—सम्बन्धकी बात दो मे सोची जानेके कारण एक सत मे सम्बन्धका नही है। सत्य दो प्रकारके हैं ध्रुव सत्य और अध्रुव सत्य। ध्रुव स्वभाव है और अध्रुव उसकी परिणति है। अनादि अनन्त सदा अन्त प्रकाशमान जो बना रहता है वह ध्रुव सत्य है और जो सत् मे तो प्रकट हुआ किन्तु उत्तरकालमे विलीन हो गया वह अध्रुव सत्य है। अब इन चार बातोमे से अर्थात् निश्चय द्रव्यार्थिकनय, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनय, इनमे से अब अन्तिम दो की बात देखें, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी बात देखें। जैसे कहे कि ससारी जीव, तो ये भी दो प्रकारके होते हैं एकत्रस और दूसरा स्थावर। यह कहे कि ससारी जीव, इतना अश तो हुआ सग्रहनय, यह हुआ व्यवहार द्रव्यार्थिक नय। ससारी जीव कोई निश्चय द्रव्यार्थिकनयकी बात है क्या? यह तो व्यवहारकी ही बात है। त्रस और स्थावर इन्ही दो भेदोका निर्गम स्थान ससारी जीव जीव सग्रहनय है और विकृत जीवका वर्णन है इस कारण व्यवहार है। अत यह व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है। पर्यायार्थिकनय तो ऋजुसूत्रनयसे शुरू होता है।

द्रव्यार्थिकनयके तीन रूप हैं (१) नैगम (२) सग्रह (३) व्यवहार। इस भेदमे पर्यायकी ओर न झुकें, भेद करनेवाले एक पिंडकी ओर झुके, पदार्थोंकी ओर

झुकें। इसका कारण है द्रव्यार्थिकनय दृष्टि, और जिसके कारण पर्यायमयताके रूपमें देखना होता है वह है पर्यायार्थिकनय दृष्टि। पर्यायार्थिकनय ऋजु-सूत्रसे शुरू होता है। निश्चय द्रव्यार्थिकनय, निश्चय पर्यायार्थिकनय और व्यवहार द्रव्यार्थिकनय इन तीनों का विवरण इन सात नयोंमें आता है। व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें यह निमित्त है, यह उपादान है, यह इसके निकट है, यह संयुक्त है, यह पर भाव है ये सभी बातें प्रसिद्ध होती है। ये दृष्टियाँ सच हैं झूठ नहीं है इसलिए निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात झूठ नहीं है, किन्तु एक सत् में रहने वाली बात नहीं।

जैसे देखा करते है कि सूर्यके निमितसे, सूर्यकी सन्मुखताके निमित्तसे सब चीजें प्रकाशित हो जाती है। जैसे दीपकका निमित्त पाकर रातमें भी प्रकाश हो गया और दीपक बुझ गया. तो अन्धकार हो गया। रसोई बनानेकी बात याद ही होगी कि अग्निका निमित्त पाकर दाल खिचड़ी पक जाती है ये बातें तो झूठ नहीं हैं। इनको झूठ कहा ही कैसे जाय, क्योंकि सब लोग देखते ही हैं। हां, यह सम्बन्ध कोई सद्भूत नहीं है, किसी सत्में नहीं है। इस आशयमें परस्पर सम्बन्धवाली बातें असत्य हैं। तो अब निश्चय और व्यवहारके मैदानमें चल कर देखते है तो यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि अशुद्ध उपादान, अशुद्ध परिणमन पर अशुद्धको निमित्त पाकर स्वयं अशुद्ध परिणम जाता है। निमित्त परमें परिणमन नहीं करता, निमित्त तो अपनेमें परिणत होकर अपनेमें बना रहता है। निमित्तसे बाहर निमित्तका गुण, निमित्तके कार्य, निमित्तका तत्त्व कुछ भी नहीं है। निमित्तभूत द्रव्य अपने आपमें अपने परिणमन करते हुए बने रहते हैं। उनका सान्निध्य पाकर अशुद्ध उपादान स्वयमेव विकाररूप परिणम जाता है।

अशुद्ध परिणमन वाले पदार्थोंका परस्पर में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध— अशुद्ध परिणमनमें भी पदार्थोंका परस्पर कर्त्ताकर्मसम्बन्ध नहीं है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपनेमें हैं, और परिणमते है, इतना ही सब पदार्थोंका काम है। जब सबका काम है कि वे हैं और परिणमते रहें, होते रहें तथा-अगुरुलघुत्वगुणके कारण-अपनेमेंही परिणत होते रहें तो एक दूसरेको कुछ करदे, यह कैसे हो सकता है? यहाँ यह प्रश्न हैं कि जब पदार्थोंका स्वयं परिणमन है तो उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध क्यों है? इसका समाधान यह है कि चीज एक देखी जानेपर यह शंका नही की जासकती है। इसी तरह अविनाभावपद्धतिसे युक्तिपूर्ण व्यवहारोंमें भी शंका नहीं रहती है। परके कर्तृत्वको कौन करता है, योग्य निमित्तकी सन्निधिमें अशुद्ध योग्य उपादान स्वयमेव रागादिकरूप परिणमता जाता है। यदि यह व्यवहार असत्य हो जाय तो सर्व व्यवस्था भंग हो जाय। उसका अर्थ यह होगा कि कभी जीव

कर्मका सान्निध्य पाकर विकाररूप परिणम जाय, और कभी कर्मोदयके विना भी विकार रूप हो जाय, किन्तु ऐसा तो नही हैं।

भैया, अशुद्ध परिणमनोंमे परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध न हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह सव कुछ जो परिणमन है, वह विभाव परिणमन है। यह विभाव परिणमन तभी कहलाता है जब कि दूसरोका निमित्त पाकर परिणमन होता है। अन्य दृष्टियोसे उसमे कुछ हस्तक्षेप नही है, पर निमित्तके सान्निध्य विना उपादानमे विकृत परिणमन नही हो सकता। क्या कोई दूसरा द्रव्य किसी दूसरेको कुछ कर देता, इस कारण विभाव कहते हैं ? नही, उपादानमे ही ऐसी कलाएँ भरी हैं कि वह कैसे सान्निध्यको पाकर किस प्रकार परिणम जाय। इसी कारण कभी यह स्खलन नही होता कि कोई निमित्तके सान्निध्यमे विभावरूप परिणमे और कोई पर उपाधि न होते भी विभावरूप परिणमे। यहाँ कभी कोई अन्तर नही होता, इस-लिए कि परिणामवाला पदार्थ चूकता नही है। जैसे क्रोध परिणतिका उदय निमित्त मात्र पाकर जीव क्रोधरूप परिणम जाता है। यह सर्व व्यवस्था वनी रहती है। क्योंकि निमित्तभूत पदार्थोंकी शक्तियां तो निमित्तभूत पदार्थोंके ही क्षेत्रमे रहेंगी। निमित्तभूत पदार्थका गुण, उसका पर्याय, उसकी प्रकृति सव कुछ निमित्तभूत पदार्थोंमे ही रहेगा। निमित्तका भी तत्त्व उपादानमे नही जायगा।

परिणमनकला—भैया, उपादानकी ही सव कलाएँ है कि वे किस उपाधिके सान्निध्यमे किस रूप परिणम जायें। वे सव इस उपादानकी ही लीलाएँ है। इसमे स्वतन्त्रता नष्ट नही होती। कर्मोदयका निमित्त भी पाया और आत्मा विकार रूप भी परिणम गया तो भी आत्माके विकाररूप परिणमनमे परतन्त्रता नही आयी। स्वतन्त्रता ही है। परतन्त्रता तो तव आती जव कर्म अपनी परिणतिसे आत्माको जवरदस्ती परिणमाता। कर्म अपनी परिणति आत्मामे नही रखता, इस कारण आत्मा स्वतन्त्र है, पर ऐसा जो विकार होता है वह परका सान्निध्य पाकर होता है। जीव इस विकारसे हटे, विश्वास तो ऐसा हो कि मेरा ता स्वरूप मुझमे ही है, सवसे न्यारा है। जीवका काम परिणमनका है। परिणमन चल रहा है। उसकी शुद्ध अशुद्ध उपादानकी वात है अशुद्ध उपादान है तो वह परके निमित्तको पाकर स्वय ही अशुद्धरूप परिणमता चला जाता है। जैसे किसीने गाली दिया तो गाली सुनकर गुस्सा आगया। तो गाली से पराधीन नही हुआ, गालियोसे उसे गुस्सा नही आया, वह गालियोका निमित्त पाकर स्वयमेव गुस्सा कर गया और विकाररूप परिणम गया। अव इन्ही सव अपेक्षावोके आधारभूत स्याद्वाद व सप्तभगीका वर्णन करते हैं—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्व।
पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्ण वा ॥ ११५ ॥

इसमें सप्तभंगीका वर्णन करते हैं। इस वर्णनको सप्तभंगीका अवतार कहा है। यह शब्द क्या कहता है? यह स्याद्वादका सिद्धान्त एक सिद्ध देवतास्वरूप है जिसको अब यहाँ उतारना है। अवतारके माने उतारना अर्थात् भगवानके द्वारा प्रणीत इस स्याद्वाद पद्धतिके दिखानेको इसका अवतार कहा है। किसी भी बातको कहेंगे, तो एक बात कहेंगे ना? एक बात रखेंगे। कुछ भी रखें। जो बात रखी जायगी उसके विरुद्ध भी तत्त्व पाया जाता है। तो कितनी बातें हो गयी? दो बातें। (१) कही जाने वाली और (२) उसके विरुद्ध। दो बातें हो गयी। अब दो बातें हो गयी तो दोनों बातोंकी दृष्टियां जुदी जुदी हो गयी। एक दृष्टिमें सीधी बात और दूसरी दृष्टिसे उल्टी बात। अर्थात् एक अपेक्षासे विधिकी बात और दूसरी अपेक्षासे निषेधकी बात। दो बातें हो गयी। इन दोनों बातोंके कहनेका, एक साथ बतानेका यत्न करें तो जो कुछ बताया जा सके, तो एक यह भी बात हो गयी। तो कितनी बातें हो गईं? तीन बातें हो गईं। तीन तो स्वतन्त्र बातें हैं। इन तीन बातोंका संयोग मिलाकर अगर कहा जाय तो चार बातें और हो जायेंगी।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वक सात भगों का सयुक्तिक विवेचन— जैसे तीन चीजें हैं (१) नमक (२) मिर्च और (३) खटाई। तीनों चीजें रखी है। तो उन तीनो चीजोंका आप स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वाद ले सकते हैं। तो स्वतन्त्र स्वतन्त्र चीजोंके ३ स्वाद हुए। अब तीनों चीजोंका संयोग लेकर अगर स्वाद लिया जावे तो कितने और स्वाद हो जायेंगे? चार। नमक मिर्च एक साथ मिलाकर खायें तो संयोगकी हुई एक बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खायें तो हो गई दूसरी बात, मिर्च खटाई खावें तो हो गई तीसरी बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खावें तो हो गई चौथी बात। तीन चीजें हैं और उनका स्वाद लिया तो चार और हो गईं। इस प्रकार एक बात कुछ भी जनताके सामने रखेंगे तो उसके खिलाफ भी एक बात होगी और दोनोंको मिलाकर भी एक साथ वाली बात और एक होगी। फिर तीनोंका संयोग अगर करेंगे तो चार बातें और होगी।

जनता के सामने यह बात रखें कि जीव नित्य है तो इसके विरुद्ध भी एक बात आयगी कि जीव अनित्य भी है। अब दो बातें सामने आयी कि जीव नित्य है और अनित्य है। और जब दोनों बातोंको एक साथ रखकर कहा जायगा तो हुआ अवक्तव्य। अच्छा नित्य और अनित्यको एक साथ कहेंगे तो क्या कहा जा सकता है? नहीं, तो, सो अवक्तव्य हो गया। तीन बातें स्वतन्त्र हो गईं।(१) नित्य (२) अनित्य (३) अवक्तव्य। इन तीनों बातोंका यथायोग्य संयोग रखकर क्रमसे बोलेंगे तो चार बात और आ जायेगी। (१) नित्यानित्य (२) नित्य- अवक्तव्य (३) अनित्य अवक्तव्य (४) नित्य अनित्य अवक्तव्य। इसी तरह अन्य सब शेष धर्मोंकी भी अपेक्षायें हो

जाती हैं। किसी भी एक चीजको सामने रक्खेंगे तो उसके फूटते-फूटते सात अपेक्षायें हो जाती हैं। इन सर्व अपेक्षाओंका वर्णन करना यही सर्व देशका वर्णन हो गया। छूटा कुछ नही। इसी को कहते हैं सप्तभगी, इसका ही नाम है स्याद्वाद।

सप्तभगों की अपेक्षायें—अब इसकी अपेक्षायें क्या है ? उन्हे विचार जैसे जीव नित्य है, किस दृष्टिसे ? द्रव्यार्थिक दृष्टिसे। चूँकि द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे देखनेपर द्रव्य सामान्य तत्त्व दिखा जो नष्ट नही होता, वह अनादि अनन्त बना ही रहता है। इस कारण जीव नित्य है। यह तो बात सही है कि जीव नित्य है। और जीव अनित्य है यह किस दृष्टिसे सही है ? क्योंकि पर्याय इसके प्रति समय नये-नये होते हैं। उन पर्यायको देखकर जब जीव पदार्थका विचार किया तो यह अनित्य समझमे आया। जो था सो नही रहता है, अन्य होता रहता है, बदलता रहता है, तब जीव अनित्य हुआ। द्रव्यार्थिक-नयकी दृष्टिसे नित्य और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे अनित्य हुआ। इन दोनो धर्मोको एक एक बारमे द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे देखा तब नित्य प्रतीत हुआ फिर अनित्य प्रतीत हुआ। और दोनो दृष्टियोंसे एक साथ देखे तो, अथवा कहा जायगा कि भाई तुम तो नित्य भी कहते और अनित्य भी कहते, सच तो बतलाओ कि यह जीव कैसा है ? एक शब्दमे बतावो तो क्या कहा जायगा ? नित्यमे तो एकदेशका वर्णन हुआ और अनित्यमे भी एकदेशका वर्णन हुआ। नयकी अपेक्षा लेकर वस्तुका सर्वदेश वर्णन करना चाहे तो नही किया जा सकता है।

जब वर्णनमे एक ही बात आ सकती है तब कहा जायगा कि वस्तु अवक्तव्य है। जब एक साथ कहे तब कहनेकी असमर्थता होनेसे अवक्तव्य है। अब क्रम-क्रमकी दृष्टि निकट-निकट लगाकर देखें तो अवक्तव्य होते हुए भी नित्य है ऐसा बताया जा सकता है। अवक्तव्य होते हुए भी अनित्य है, सो दो बातें हुई। अनित्य होते भी नित्य है और नित्य होते हुए भी अनित्य है ऐसी दृष्टियाँ सामने रक्खी जा सकती हैं यह हुआ नित्यानित्य अवक्तव्य। भैया, देखा—स्याद्वादमे किसी भी धर्मका प्रतिबन्ध नही है।

एक बातके रखनेपर सात भगोंका प्रकट होना—अब दूसरा प्रकरण लो, जीव है यह बात किसी के सामने रक्खें तो दूसरी बात क्या आ जायगी कि जीव नही हैं। क्या ये दोनो बातें सही नही हैं ? ये दोनो ही बातें सही हैं। यह जीव है और नही है ये दोनो ही बातें सही है। जीव, जीवके स्वरूपमे तो है और जीव जीवातिरिक्त अन्य सब पदार्थोंके स्वरूपमे नही है। अर्थात् यह अपने चतुष्टयसे है, परके चतुष्टयसे नही है, इन दोनो बातोको एक साथ कहा जाय तो वह अवक्तव्य हैं। फिर अवक्तव्य होते हुए भी नही है। फिर तीनो दृष्टियोंके क्रममे-है, नही, व अवक्तव्य है। यह सप्तभग आ गया। इसी को कहते हैं स्याद्वाद।

सप्तभंगके प्रसंगमे एक लौकिक दृष्टान्त—भैया, अब जरा लौकिक दृष्टान्त लो। किसी मनुष्यको कहा जा रहा है कि यह कौन है ? तो कहा गया कि अमुकका पिता है। अमुकका पिता है, के विरुद्ध क्या बात हो गयी कि यह अमुकका पुत्र भी है। यह पिता भी है और पुत्र भी है। यह लौकिक दृष्टान्तसे कह रहे हैं, नही तो वैसे इसे इस कायदेमे रखना चाहिए। कि यह पिता है, इसके विरुद्धकी बात है कि यह पिता नही है। यह बात कायदेमे आती है मगर जल्दी समझनेके लिए पुत्र को ले लें। यह मनुष्य पिता है तो दूसरी बात क्या सिद्ध कर ली जायगी कि यह पुत्र है। कोई कहे कि एक शब्दमे बतलावो यह क्या है ? तो यह अवक्तव्य है अवक्तव्य होते हुए भी पुत्र है यह भी समझ मे आता है अवक्तव्य होते हुए पिता है यह भी समझमे आया, पिता होते हुए भी पुत्र है यह भी समझमे आया और अवक्तव्य होते हुए भी पिता है और पुत्र है, यह भी समझमे आया। तो अब ७ बातें हो गयी।

भगोंका क्रम—शास्त्रोमे भगोंका वर्णन करते समय अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य इस तरह क्रमका वर्णन आता है। फिर अस्तिनास्ति, फिर अस्तिअवक्तव्य, फिर नास्ति अवक्तव्य फिर अस्तिनास्ति अवक्तव्य, मगर जिज्ञासुवोको जल्दी समझानेके लिए कह दिया जाता है, अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति फिर अवक्तव्य आदि। पर क्रमपद्धतिमे यह नही होना चाहिए। क्रम यह होना चाहिए कि पहले स्वतन्त्र तीन बातोंका वर्णन हो, फिर सयोगियोका वर्णन हो। स्वतन्त्र तीन बातें है (१) अस्ति (२) नास्ति और (३) अवक्तव्य। इनमे कुछ मिला तो नही है। तीन स्वतन्त्र बातो का वर्णन करके अब उनमे मेल करें तो अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्तिनास्ति अवक्तव्य-दृष्टान्त जैसे अभी दिया है—नमक, मिर्च, खटाई इत्यादि उससे बहुत जल्दी समझमें आजाते हैं।

सप्तभंगकी गणितपद्धति—प्रश्न—भैया ! कैसे समझा जाय कि स्वतन्त्र धर्म इतने हैं ? उत्तर—धर्म तो एक कुछ रखा जायगा सो दूसरा प्रतिपक्षी हुआ, तीसरा अवक्तव्य हुआ। स्वतन्त्र पदार्थके बिना भग नही निकलते है। जैसे कोई चार चीजें हैं स्वतन्त्र, तो चारो के कितने भग होंगे ? चारोंके १५ भग होंगे। चारका स्वाद १५ तरह से लिया जा सकता है। तो इसके निकालनेका सरल तरीका यह है कि चार जगह २×२×२×२, रख दो, परस्पर गुणा करदो, जो फल आवे उसमे १ घटा दो तो भग निकल आते है। २×२×२×२ बराबर १६ मे से १ घटा दो तो १५ बचे। चार चीजें अगर स्वतन्त्र है तो १५ तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है, और तीन चीजें हो तो तीन जगह २×२×२ बराबर ८ मेसे १ घटा लिया

तो ७ रह गए। तीन चीजें होती हैं तो उनका सप्तभग होता है जिसे सप्तभगी कहते हैं। उसका आधार क्या है ? यह बतानेके लिए तीन चीजें सबसे पहिले बतायी जायेंगी, जो कि स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र पदार्थ होनेपर ही उसका भग वन सकता है। इसलिए सबसे पहले स्वतन्त्र तीन पदार्थोकी वात कही है। और खुशीकी वात है कि इस प्रवचनसार ग्रन्थमे भी यही क्रम दिया है। स्यात्अस्तिएव, स्यात्नास्तिएव, स्यात्अस्ति अवक्तव्यएव, स्यात् नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव। किन्ही ग्रन्थोंमे इस तरह भी दिया है कि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, किन्तु यह क्रम नियममे नही आता। क्रमका नियम यह हो कि तीन स्वतन्त्र धर्मोंको पहिले रखें फिर मिलीहुई चीजोकी अपेक्षा रखें। लेकिन सुगमता समझनेमे यह क्रम सहायक है, इससे यह भी ठीक है।

स्याद्वादमे शब्दों की योजनाके अनेक मार्मिक रहस्य—अब इन धर्मोंमे ध्यान देने की वात है कि यहाँ शब्द बोला जा रहा है स्याद्अस्ति एव। यह कथन जरा कठिन मालूम होता होगा, परन्तु भैया, कुछ दिनो अभ्यास और उपयोग होनेसे सरल होता जायगा। यहाँ यही प्रसग चल रहा है कि यह कह रहे हैं स्याद्-अस्ति-एव। स्यात् का अर्थ है इस अपेक्षासे एक अपेक्षासे, अस्तिका अर्थ है 'है' व एव का अर्थ है "ही"। दूसरे धर्मका नाम है स्यात् नास्ति एव, एक अपेक्षासे नही है ही इत्यादि सर्वत्र धर्म नामसे पहिले स्यात् और वादमे एव देनेका, अर्थात् ये तीन शब्द देने का क्या प्रयोजन है ? इसका मर्म जानना चाहिये, यह वहुत ही अधिक मननकी चीज हैं।

स्याद्वादमे सशयवादताका अभाव—कितने लोग ऐसा कहते हैं कि स्याद्वाद तो सशयवाद है, कभी कह लिया कि नित्य है, कभी कह लिया कि अनित्य है। नित्य है या अनित्य ऐसा सशय सा रहता है। यही सशयवाद है। भैया, यहाँ सशय विल्कुल मिटा देना चाहिए इस एव शब्दको देखकर। इसमे यह सशय न रखो कि है कि नही है। इसमे पूरे जोरके साथ कहा गया कि एक अपेक्षासे है ही, द्रव्यार्थिकनयसे जीव नित्य ही है, और पर्यायार्थिकनयसे जीव अनित्य ही है। ही जहाँ लगा होता है वहाँ निश्चय कहा जाता है कि अनिश्चय ? जैसे कोई एक आदमी मान लो रघुवर दयाल। हाँ तुम्हारा पुत्र कौन है ? हुकुमचन्द। अच्छा रघुवर दयाल हुकुमचन्दके पिता ही हैं। और रघुवर दयालके पिता का नाम फुन्दी लाल। अच्छा ये फुन्दी लालके पुत्र ही हैं। इसमे सशय तो रहा नही कि ये पिता हैं कि नही हैं। अपेक्षा लगाते ही, ही लगा दिया जिससे सशय मिट जाता है। इसलिए स्याद्वादमे सशयका स्थान नही हैं, प्रत्युत निश्चयका इसमे पूरा स्थान है। जीव द्रव्यार्थिकनयदृष्टिसे नित्य ही हैं और पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे अनित्य ही है। इसमें सशयका कोई स्थान नही है।

भी लगाने की नयी पद्धति—एक नयी पद्धति यह भी चल पड़ी है स्याद्वाद को बतलानेके लिए कि नित्य भी है अनित्य भी है। यह नई पद्धति, प्राचीन पद्धतिकी अपेक्षा निर्बल है। और भी शब्द सुनकर भी लोगोंने स्याद्वादको संशयवाद बताने वाला कह दिया है। जहाँ एक बातमे अडिग न रहे, थोडी देर बादमे कहते नित्य है और थोडी देर बादमे कहते अनित्य है, वहाँ निश्चयकी कमजोरी मानी जाती है। यद्यपि इस नवीन पद्धतिमे भी मर्म है। भी बोलने वालोंको अपने मनकी अपेक्षामे बल रहता है। मुखसे नही बोलता है पर उसके हृदयमें सोचनेकी सामग्री होती है। अतः भी लगाना गलत नही है मगर यह तुम्हारे मनकी बात है, तुम्हारे मनमे हैं। अव्यक्त मर्म जाने बिना जहाँ भी लगा रहना है वहाँ संशय किया जा सकता है। भी लगाकर बताने की पद्धति नई है। प्राचीन पद्धति एवकारकी है। अपेक्षा लगाना और उस अपेक्षामें धर्म बताकर एव कहना, यह प्राचीन पद्धति है। इसमे संशयका स्थान नहीं रहता है। अपेक्षा लगाकर 'भी' बोला जाय तो वह गलत हो जाता है। जैसे कहे कि यह हुकुमचन्दके पिता भी है तो इसमें कितनी गल्तीकी बात कही गयी ? क्या यह हुकुम चन्दके और कुछ भी है ? (हँसी)। संशय और कुछ भी हो गया। अपेक्षा लगाकर "भी" लगाना अनर्थ होना है और अपेक्षा न लगाकर "भी" शब्द लगाना किसी सुनने वालेके लिए अनर्थकारी हो सकता है। अतः "भी" की पद्धति उत्तम नही है। "ही" की पद्धति उत्तम है। इस कारण आर्ष ग्रन्थोंमे एव शब्द लगा करके इसका वर्णन किया जा सकता है।

पक्ष और प्रतिपक्षमे से एकको अवहेलनासे दूसरेका नाश—भैया ! कोई भी पदार्थ हो, अपने स्वरूपमे तो है ही और पर के स्वरूपमे नही है। जैसे घडीको हाथ मे लेकर कह रहे हैं कि यह पदार्थ घडी रूपसे तो है और चौकी वगैरह के रूपमे नहीं है, क्योंकि यह चौकीके रूपमे हो जाय तो यह चौकी हो गई। तब घडीका काम खतम हो जायगा, सो अस्तित्व खत्म हो जायगा। जैसे एक आप ही हैं, आप अपने स्वरूपमे तो हैं और सिंह हाथीके रूपमे नही हैं। यदि सिंह हाथी आदिके रूपमे आप हो जांय तो हम सबको तो यहाँ से भागना पडेगा, नहीं तो प्राण संकटमे चले जायेंगे, प्राण बचना मुश्किल हो जायगा। सो भैया, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे है, परके स्वरूपमे नही हैं। जीव द्रव्यको ही घटित कर लो। जीव अपने स्वरूपसे तो हैं और बाकी पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इनके स्वरूपसे नही हैं। हाथकी दो अँगुली ले लो, यह बीचकी अँगुली अपने स्वरूपसे तो है पर इस दूसरी अगुलीके स्वरूपमे नहीं है। अगर इस दूसरी अगुलीके स्वरूपसे हो जाय तो फिर तीन ही अगुली चार की जगह पर रह जायें। उसका अस्तित्व ही मिट जायगा।

पदार्थ है यह पहिली बात है। हैका उल्टा क्या लिया जायगा ? नही है, यह

दूसरी वात है। दोनो को एक साथ कहा जाय तो अवक्तव्य हैं। ये तीन स्वतन्त्र भग हैं। अव इकहरे यूनिट से चलिए। अस्ति देखो तो अस्ति है और नास्ति देखो तो नास्ति है और एक साथ दोनोको देखो तो अवक्तव्य है। भैया ! एक साथ दोनोको देखना भी एक दृष्टि है। क्रमसे अस्ति नास्ति देखो तो अस्ति नास्ति है। उसमे दो दृष्टियोका क्रमश उपयोग है इस कारणसे इसमे अस्ति नास्ति सयोगी भग हैं, स्वतन्त्र भग नही है। अवक्तव्यमे भी दोनो दृष्टिया है किन्तु युगपत् है। एक साथ कहना चाहें तो वह एक क्या है ? उसका नाम है अवक्तव्य । ये तीन स्वतन्त्र भग हैं। अस्ति नास्तिमे दोनो क्रमसे मिले होते है, पदार्थ निज स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपमे नही है। और एक साथमे अवक्तव्य है, और दोनोको एक साथ तथा निज रूप इन दोनो दृष्टियोसे देखें तो अस्ति अवक्तव्य है। तथा दोनोको एक साथ तथा पर रूप इन दोनो दृष्टियोमे क्रमसे देखें तो नास्ति अवक्तव्य है। स्वरूप और पर रूप इनको क्रमसे व युगपत् देखे तो अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। अस्तिनास्ति को क्रमसे तथा युगपत् देखनेपर वह अस्ति नास्ति अवक्तव्य है।

दृष्टिके सुगम चार प्रकार—(१)नित्य है (२)अनित्य है (३) अवक्तव्य है और (४) नित्यानित्य है, ये चारो भग जल्दी समझमे आते है। जीव सदा रहता है इस-कारण नित्य है, मगर जीवकी परिणति प्रत्येक समय नई-नई होती है। परिणतियोंके समयमे द्रव्य परिणतियोंसे अभिन्न रहता है। जव जो पर्याय होते है तव उनके समयमे द्रव्य उनसे अभिन्न रहता है। वही द्रव्य पृथक् हो व पर्याय पृथक् क्षेत्रमे हो ऐसा नहीं है । वही द्रव्यका क्षेत्र है, और वही पर्यायका क्षेत्र है। पदार्थ जिस पर्यायमे आते हैं उस समय उस पर्यायसे तन्मय होते हैं। पदार्थ नित्य हैं और पर्यायमे तन्मय हैं सो पर्यायार्थिकनयकी मुख्यतामे जीव को भी अनित्य कहा जाता है, क्योकि यहाँ पर्यायरूपसे जीवको देखा जा रहा है।

सो भैया, पर्यायार्थिकनयमे देखो तो यह जीव अनित्य है और द्रव्यार्थिकनयसे देखो तो यह जीव नित्य है। जैसा स्वत सिद्ध जीव है वैसे ही यह स्वत नित्य है इस कारण जीव द्रव्यार्थिकनयसे नित्य ही है। पर्यायार्थिकनयसे देखो तो जीव अनित्य ही है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनोकी एकसाथ की दृष्टिमे यह अवक्तव्य है द्रव्यार्थिकनय व दोनोकी एक साथ दृष्टि इन दोनोको क्रमसे देखो तो यह जीव नित्य अवक्तव्य है। इसी प्रकार पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनय पर्यार्थिकनय दोनोको एक साथ ऐसे क्रमसे देखें तो यह अनित्य अवक्तव्य है।

सप्तभगका उपसंहार—मूल वात यह है कि किसी भी पदार्थमे आप कोई तत्व

देखेंगे तो प्रथम वह जानेगा एक बातको, किन्तु एक बातके जानते ही उसमे सब ७ दृष्टियां हो जावेंगी। कुछ तो जानोगे, उससे ही ७ अपेक्षाएं बन जावेंगी परन्तु एकान्तवादी जन जिस एकान्तको जानते हैं उनको ही ग्रहण करते हैं। स्याद्वादकेद्वारा उस एकके जाननेके साथ ७ प्रकारसे निर्णय होता है। (१) जिस एकको जाने उसे और (२) उसके विरुद्धको तथा (३) दोनोंको एक साथ मे जाननेपर अवक्तव्य को। यों स्वतत्र तीन चीजोंको जाना जाता है। फिर इन तीनोका द्विसयोगी तीन और त्रिसयोगी एक, इस प्रकार एक के जानते ही ७ भग बन जाते है। इस सप्तभगमे एवकार लगाकर उनका उच्चारण करना और उनकी अपेक्षाका स्यात् शब्दका अमोघ मत्र पहिले लगाना। इस तरह से जो कुछ कहा गया उसका पूर्ण निर्णय भी हुआ और विवादका निषेध भी हुआ।

वस्तुस्वरूपको जानकर एकाग्र के व्यामोहकी समाप्ति सम्भव—क्षणिकवादी भाई बोलते हैं कि जीव अनित्य है और अभेदध्रुववादी भाई बोलते हैं कि जीव नित्य हैं। उन दोनोंका समन्वय द्वारा समाधान इस स्याद्वादसे प्राप्त हो जाता है। ध्रुववादी आत्माको नित्य अपरिणामी कहते हैं तो द्रव्यार्थिकनयसे सिद्ध ही है कि आत्मद्रव्य नित्य अपरिणामी है। क्षणिकवादी आत्माको क्षणिक कहते है, क्षण क्षण मे दूसरी आत्मा हो रही हैं तो यह बात भी पर्यायकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। इस पर्याय दृष्टिको अपनाकर स्वरूप सर्वस्वकी बात मानलें तो हम अबुद्ध अशुद्ध हो जाते हैं। और द्रव्यदृष्टि की बातको उतना ही सर्व मानलें तो यह कथन भी अशुद्ध हो जाता है। स्यादवाद ही एक ऐसी अमोघ औषधि है कि जिसमे सब विवादके रोग खतम हो जाते हैं, और पदार्थ यथार्थ स्वतंत्र नजर आते हैं। स्याद्वादके द्वारा जीव वस्तुमे ७ प्रकारके भग सिद्ध हुए हैं। अन्य भी जितने कथन हैं यदि उनमे स्याद्वादका पुट है तो शुद्ध हैं और एकातकी पुट है तो अशुद्ध है।

स्याद्वादमे अनिष्टपरिहारकी ध्वनि—एक बार गुरु जी सुनाते थे कि कही भाषण हो रहा था, उसमे हिंसापोषक एक वक्ता व्याख्यान दे रहा था। उसको भाषण देनेकी इतनी अच्छी कला मालूम थी कि जैसे श्रोता देखे वैसा वह भाषण करता था। बहुत भीड हो गयी। दूरसे देखा कि जैन लोग जा रहे हैं सो उस वक्ताने चर्चा छेड दी कि दुनियामे ७२ कलाएं होती हैं, पर जैनोंमे ७४ कलाए हैं। जैन लोग सुनकर खडे हो गए और यह सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे कि वे कौन सी दो कलाएं हममे अधिक हैं। वह वक्ता तो बलिकी महिमाका वर्णन करने लगा और जीववध आदिका भी समर्थन करने लगा। जब व्याख्यान पूर्ण हो गया तब एक जैनने अपने ग्रूपके प० जी से कहा कि आपने हम लोगोको अच्छा खड़ा करवाया, भाषणमे तो

सारी बातें हिंसाकी कही गयी। तब प० जी बोले यह वक्ता भी ठीक कह रहा है। वह जैन बोला—प० जी क्या कह रहे हो? हिंसाकी बातोंमे भी सचाई बता रहे हो। तब प० जी बोले कि मिथ्यात्वकी दृष्टिमे ऐसा ही कहा जाता है कि नही? अशुद्धवाद भी अशुद्ध दृष्टिके उपयोगमे उस अशुद्धोपयोगीको सच हो जाता है। मिथ्यात्वकी दृष्टिमे मोहकी ही बातें हुआ करती है, उल्टी ही बातें सूझती हैं। ऐसा देखने वाला मिथ्यादृष्टि क्या अपनी मान्यताको अशुद्ध मान सकता है? अज्ञानकी दृष्टिमे ज्ञानकी बातें गलत हैं। खैर, अब देखो उसने अतमे दो कलाएँ ये बतायी थीं (१) खुद जानना नही (२) और दूसरोकी मानना नही। इन दो बातोका जिकर समयसारमे मिलता है कि खुद आत्माको जो जानते नही और आत्मज्ञोकी उपासना करते नही वे आत्मतत्त्वको कैसे समझ सकते है। जो धर्मकी बातें नही करते हैं वे धर्मकी बातको जानते भी नही है। जिसने आत्मज्ञ पुरुषोकी सेवा सगति नही की उसको धर्मका परिचय कैसे हो।

दुर्लभ नरजन्मके सदुपयोगकी प्रेरणा—भैया, यह वस्तुका स्वरूप जिसमे यथार्थ प्रतिपादित हो ऐसे आगमका हमने शरण पाया है फिर भी यदि हम आगमके ज्ञानमे अपने उपयोगको नही उतारते, अपना उपयोग नही देते, केवल गप्पोंमें ही अपना समय गुजारते तो नर जन्म पाना व्यर्थ रहा। सोचो तो सही कि नर जीवन क्या बार बार मिलता है? जैसा ज्ञान इस जीवने किया है जैसा ही उपयोग बनाया है, उसीके अनुसार कर्मोका बन्ध है। यह जीव पुण्य कर्मोंका उदय आ जानेसे इस लोकमे छलसे बनावटी भी पोजीसन बना लेता है। यह अपने ज्ञानको स्वरूपमे उतार कर नही चल रहा है। सो भैया, अभी तो मनुष्य है यदि कीडे मकोडे हो गए तो? सो फिर इस असज्ञी अवस्थामे कुछ पुरुषार्थ ही न चलेगा। कीडे मकोडे हो जाना इन रागके बन्धनोका ही परिणाम है। यदि बन गए कीडे मकोडे तो कुछ उन्नति करनेका मार्ग ही न मिलेगा, यदि असज्ञी बन गये तो जिन्दगी बेकार हैं। जिन्दगी तो तब जीवकी सफल है जब वह-कुछ कल्याण कर सके। हम आप मनुष्य हैं, अब अपने अपने उपयोगको ठीक करलें, शास्त्रोमे जो बना बनाया अध्यात्म भोजन मिल गया है उसको खा तो लें। तृष्णावोंसे तो पूरा न पडेगा, जो लाखो करोडोका वैभव है उससे तो पूरा न पडेगा। सो भैया, आत्मज्ञान करो यही सबसे बडा विवेक है। ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसे ध्यान के समय जो जानन भाव का स्वरूप है उसके जाननमे रहे तो आत्माका विशद ज्ञान होता है।

जिसके हितमार्गके लिये सर्व उपदेश हैं, उक्त निर्द्धारणमे जिसका उदाहरण दिया गया है ऐसे इस जीवके जो उपाधिसम्बन्धमे मनुष्यादि पर्यायें हो गई है वे सब मोहक्रियाके फल हैं इस कारण वे सब जीव स्वभावसे अन्य हैं ऐसा द्योतन करते है—

एगोत्ति गत्थि कोई ग गत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता ।
किरिया हि गत्थि अफला धम्मो जदि गिप्फलो परमो । ११६ ॥

परम्परामे कर्मबन्धनकी अनादिता—जीव दो प्रकारके होते हैं । (१) समारी (२) मुक्त । जिन जीवोंका कर्मोंमे सम्बन्ध लगा हुआ है । वे जीव ससारी हैं, और जिनका कर्मोंसे सम्पर्क नही रहा वे जीव मुक्त है। ये कर्म जीवोंके साथ अनादि मे लगे हुए है । जब से ये जीव हैं तब ही से ये कर्म जीवके साथ लगे हुए हैं । क्योकि यदि कर्म किसी दिनमे लगे हो तो उन कर्मोंके लगनेसे पहिले वे शुद्ध कहलायेंगे, कर्मरहित कहलायेंगे । जो कर्मरहित हो वे शुद्ध हैं । फिर क्या वजह है कि उनके साथ कर्म बँध गए । यदि कर्मरहित जीवके कर्म बँध जायें तो कर्मोंका नाश करके जो कर्मरहित हुए, मुक्त हुए याने सिद्ध भगवान हुए, उनके भी कर्म लग जायेंगे, फिर मुक्ति क्या चीज कहलायेगी, फिर तो वह मुक्ति वैकुन्ठके समान हो गयी । जैसे कोई मानते हैं कि वैकुन्ठ मे जीव कर्ममुक्त हो कर रहते हैं और जब ईश्वरकी मर्जी रुलाने की होती है तब उसे वहाँ से निकलकर ससारमे जन्म लेना पडता है और उनके ससारका चक्र लगने लगता है। ऐसे ही यहाँ कर्मरहित हो गए तो कुछ दिन कर्मरहित बने रहे और फिर अपने आपही कर्मसहित बन गए । कर्मसहित हो जानेसे फिर ससारमे रुलने लगे । ऐसी थोडे दिनके लिए कर्मरहित अवस्था मिली और फिर कर्मरहित हो गए तो ऐसे कर्मोंकी मुक्तिकी क्या इच्छा की जाय ? विवेक तो यह है कि ऐसा यत्न करे कि जिस यत्नके प्रसादसे फिर कभी दुःख न आयें । यदि मुक्तिके बाद फिर दुःख आया तो वह मुक्ति ही क्या रही इस कारणसे यह ही सुनिश्चित होता है कि जीवके कर्म अनादिकालसे लगे हैं । कर्म लगते क्यो है ? जीवके अशुद्ध परिणामको निमित्त पाकर नये कर्म लगते है । उन कर्मोंके निमित्तसे जीवके परिणाम अशुद्ध होते हैं । यदि जीवका परिणाम शुद्ध हो गया तो लो कर्मोंका बन्धन भी समाप्त हो गया ।

कर्मरहित होनेपर कर्म बँधनेके हेतुका अभाव—जो जीव कर्मरहित है उसके फिर अशुद्ध परिणामोका कोई प्रश्न ही नही है । यदि अशुद्ध परिणामोके बिना जीवोंके कर्म बँध जायें तो मुक्त भगवानके भी कर्म बँध जावेंगे । फिर तो यह समार पूरा अधेरखाना हो जायगा । फिर तो शुद्ध अशुद्ध का कुछ खास अन्तर ही नही रहता । शुद्धके भी कर्म लग गये और अशुद्धके भी कर्म लग गये । न्यायकी बात कुछ नही मिलेगी, जब न्याय कुछ नही रहा तो वस्तु स्वरूपमे भी अन्याय चला जायगा, अटपट व्यवस्थाएँ होने लग जायेंगी । सो न ऐसा हुआ और न होगा । इसका प्रबल प्रमाण यह है कि तभी तो सब वस्तुओंका अस्तित्त्व बना हुआ है । जितने भी ससारी जीव हैं हैं उनके कर्म लगे होते हैं । ये कर्म विभावके निमित्तसे व वे विभाव कर्मके निमित्तसे

हुए थे, यो वे कर्म अनादिसे परम्परासे लगेहुए है। अनादिकालसे लगेहुए इन कर्मोकी उपाधिका निमित्त पाकर ससारी जीवोंके विभाव परिणमन हो रहे हैं। विषय कषायोके भाव होनेके कारण इन ससारी जीवोको दु ख होना प्राकृतिक ही बात है। कोई दूसरा इन ससारी जीवोके कार्य नही करता। इन ससारी जीवोका कोई दूसरा परिणमन नही करता। कर्मोंका निमित्त पाकर स्वय ही जीवके परिणमन याने कमके फल अथवा कार्य होने लगते हैं।

निमित्तनैमित्तिकता और स्वतन्त्रता—जैसे लोकमे देखते हैं कि अग्निका सयोग पाकर डेंगचीमे रखी हुई खिचडी पक जाती है। अग्नि अपनी जगह पर रखी है, खिचडी भी डेंगचीसे निकल कर बाहर नही पकती, वह स्वय ही डेगचीके अन्दर पक जाती है। अग्नि तेज जलती है स्वयमेव ही अग्निका निमित्त पाकर वह खिचडी पकती हैं। और भी देखलो, प्रकाशके समयमे कोई भी मनुष्य खडा हो, उस खडे हुए मनुष्यका निमित्त पाकर उस प्रकाशके सम्मुख प्रतिपक्षमे पृथ्वी स्वय छायारूप बन जाती है। मनुष्य अपनेमे से निकलकर उस जमीनको छाया रूप नही बनाता। उस उस जमीनको तो मनुष्य छूता भी नही है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि वह पृथ्वी मनुष्यका निमित्त पाकर छाया रूप बन जाती है। यहाँ कोई किसी को करता नही है पर उपादान वैसी ही योग्यता रखता है सो वह योग्य उपादान अनुकूल निमित्त पाकर स्वय ही छाया रूप परिणम जाता है।

एव स्वमे ही स्वकी परिणति—इसी प्रकार यह पुद्गल कर्म इस जीवको कुछ ही नही करते हैं। जीवका स्वरूप जीवमे है, पुद्गलका स्वरूप पुद्गलमे है फिर भी ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है अथवा उपादानकी कला है, विशेषता है कि वह योग्य निमित्तभूत पदार्थोका निमित्त पाकर विकार रूप परिणमनकी योग्यता रखता है, तो विकाररूप परिणाम जाता है। इसी प्रकार कर्मोका जब उदय होता है तो अशुद्ध उपादान वाला यह जीव कर्मोदयका निमित्त मात्र पाकर अपनी ही विशिष्ट भाव विक्रियासे अनेक विकारोरूप परिणम जाता है। यह है कर्म और जीवोंके सम्बन्धमे आचार्यो द्वारा बताया गया यथार्थ दर्शन। ये कर्म कैसे रुकें, इसका उपाय भी निमित्त नैमित्तिक पद्धतिके प्रसगमे आ जाता है कि जीव अशुद्ध परिणाम नही करे, तो कर्म अपने आप रुक जायेंगे, क्योंकि कर्मोंकी समाप्ति विकारोकी निवृत्तिमे हैं।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वकविकार समाप्तिमे कर्मसमाप्तिका विवेचन—जैसे बहुत मोटा दृष्टान्त है कि एक लडका जिसका स्वभाव गाली देनेका पड गया है, वह किसी बडे लडकेको गाली देता है। बडा लडका गाली सुनना सहन नही कर सकता तो वह उस छोटेको मारता है। बडे लडकेकी मार छोटा सहता जाता पर गाली देना नही छोडता। बडा लडका मारता फिर छोटा गाली देता, फिर बड़ा मारता पीटता,

फिर छोटा गाली देता। उस छोटेका गाली देना न बन्द हुआ और न बड़ेका मारना पीटना बन्द हुआ। वह छोटा लडका रोता है, दुखी होता है। अच्छा बताओ छोटे लडकेके न पीटे जानेका उपाय है क्या ? वह उपाय बस छोटे लडकेके हाथ है। अगर वह गाली देना बन्द कर दे तो वह पिटनेमे, मार खानेसे छूट जाय।

पर्यायमे परस्पर निमित्तनैमित्तिकता—उक्त दृष्टान्तवत् यह जीव करता है अशुद्ध भाव, कषायके भाव, सो पुद्गलकर्म आ धमकते हैं, बन्धनको प्राप्त हो जाते हैं। जब उन कर्मोंका उदय आता है तब जीवका नवीन अशुद्ध भाव होने लगता है। जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, उनके निमित्तमे कर्मोंके बन्धन लगते हैं। इस प्रकारकी निमित्त नैमित्तिक परम्परा अब तक चली आती है जिसके फलमे यह सारा ससार इस प्रकार नजर आ रहा है, विचित्र विचित्र परिस्थितियोंमे यह जीव बँधा हुआ है। यह कर्म बन्धन कैसे मिटे ? इसका उपाय क्या है ? कर्म बन्धन आता कैसे है। कैसे जीव बन्धनमे आता था ? जीव अशुद्ध परिणाम करता था कि कर्म आते थे। कर्मोंको न आने देना हो तो उसका उपाय है कि जीव अशुद्ध परिणाम न करे। बिल्कुल सीधा उपाय है किन्तु यह बात कब सम्भव है ? यह बात तभी सम्भव है जब कि जीवको यथार्थ ज्ञान हो जाय। शुद्ध ज्ञान जगे बिना अशुद्ध परिणाम नही मिटते हैं। सही ज्ञान हो कि विकार भाव समाप्त होने लगते हैं।

तत्त्वज्ञान हुए बिना अशुद्ध परिणमन मिटना असम्भव—जैसे किसी घरमे एक रस्सी आँगनमे पडी हुई है, कुछ अँधेरा उजेला है। उस रस्सीकी शक्लको देखकर उस पुरुषको भ्रम हो गया कि यह साप है। सापका भ्रम होनेसे वह घबडाने लगा, चिल्लाने लगा। अरे ये साप है चिन्ता करने लगा कि यह अगर घरमे रहेगा तो कभी न कभी किसी न किसी को जरूर काटेगा। वह बहुत घबडाता, बहुत चिल्लाता। बाद मे वह कुछ धैर्य बनाता है कि जरा देखें तो सही कि कौन सा साप है। विषैला है कि साधारण है ? सो हिम्मत बना कर वह थोडा सा देखनेके लिए चला तो कुछ समझमे आया कि अरे यह तो हिलता भी नही, चलता भी नही, यह कैसा साप है ? और जरा सा चलकर देखा तो समझमे आया-यह तो रस्सी है साप नही है। इतना समझमे आते ही घबडाहट खतम हो गयी, भीतरका सब भय खतम हो गया। अब क्या हो गया ? वही घर है, वही रस्सी है, वही आदमी है, न उस रस्सीको पीटा मारा और न कुछ क्रोध किया किन्तु जहाँ सच्चा ज्ञान जगा कि यह साप नही है, यह रस्सी है वही ऐसे सच्चा ज्ञान जगते ही सारे सकट खतम हो गये।

भैया इसी प्रकार इस जीवने भावसकटका भार अपने ऊपर लाद लिया और इन कर्मोंका भी भार लादा है। सो जगह जगह नाना योनियोंमे नाना शरीर

यह जीव बँधा फिरता है ये सारे संकट कैसे मिटेंगे ? बस ज्ञानसे ही ये सारे संकट मिटेंगे। जरा यह जीव साहस तो करे, बाह्य पदार्थोंसे अपना दिल तो मोड़े, अपनी ओर तो झुके, अतरगके दर्शन तो करे, देखे कि मैं केवल चैतन्यस्वरूप हूँ। यह तो अमूर्त है, सबसे पृथक् वस्तु है, समस्त पदार्थोंका केवल जानने वाला है, इसका काम मात्र जानन है, इसका स्वरूप ही जानन है। सो यह ज्ञानके द्वारा अपने आपको जानता रहता है। इतना ही तो इसका काम है, इतनी ही तो इसकी दुनिया है। इसके आगे अन्य कुछ नही है, यह मैं तो सुरक्षित ही हूँ। यह न किसीसे छेदा जा सकता है, न पीटा जा सकता है, न रोका जा सकता है, न अग्निसे जलाया जा सकता है, न पानीसे भीग सकता है, और न हवासे उड सकता है, न इसे कही रोका जा सकता है, यह स्वय सत् है, ज्ञानमात्र है, सबसे न्यारा है, इसका तो यही है इसका अन्य कुछ नहीं है, जैसा ज्ञान स्वरूप यह है खुद, खुदके ध्यानमे आ जाय, सच्चा ज्ञान जग जाय तो ये सारे सकट दूर हो जावेंगे, सारे शरीर के बन्धन समाप्त हो जायेंगे, कर्म बन्धन रुक जावेंगे, और यह साधक स्वय परम आनन्दमय हो जायगा।

अपनी ही भ्रमवृत्तियोंसे पतन व ज्ञानवृत्तियोंसे उद्धार—इस ससारी जीवने भ्रम करके, राग द्वेष बढाकर स्वय ही अपनी कुगति कर ली है, सो यह जीव स्वय ही विकाररूप परिणमता है, और इसका कार्य स्वय होता जा रहा है। कर्म इस जीवके कार्य नही करते किन्तु कर्म अपनी ही शक्तिसे सम्पन्न हैं, उदयमे हैं। कर्मोंकी जीवस्वरूप गति नहीं चलती है। कर्मोंके उदयमे, कर्मोंका निमित्त पाकर यह जीव स्वय विकाररूप परिणमता है। इन खोटे कार्योंका फल है कि यह नाना विभावो व नाना असमानजातीय पर्यायो रूप कार्योंको उत्पन्न करता है। पर्यायोंमे ऐसा कोई पर्याय नहीं है जो निश्चल हो, टङ्कोत्कीर्णवत् स्थिर हो, ऐसी कोई परिणति नही है। क्योंकि यह परिणति उत्पन्न होती रहती है और विलीन होती रहती है। जब जब जिन जिन कषायोंका उदय होता है, कर्मोंका उदय होता है उस समय यह जीव स्वय ही मनुष्यादिक पर्यायोरूप हो जाता है। इन जीवोंके कषाय दूर हो तो कर्म मिटें। पहिली करतूतें कर्मोदयके फलमे आई, इस पद्धतिमे पहिला कार्य समाप्त हो जाता है दूसरा कर्म होने लगता है सो उत्तरोत्तर कार्य होते हैं और पूर्व-पूर्व कार्य विलीन होते हैं। इस कारण इन ससारी जीवोके कार्योंमे कोई भी कार्य ऐसा नही है जो नित्य हो, सदा रहने वाला हो, इस ही पर्यायदृष्टिसे अनित्य भावनाको बताया गया है। जैसे कि हिन्दी काव्य मे कहते है —

राजा, राणा, क्षत्रपति, हाथिनके असवार, मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार। जितने भी ये जीव दीख रहे हैं, राजा हो, राणा हो, महाराणा हो,

धनी हो, बलवान हो, पंडित हो, सबको एक दिन मरना है अर्थात् इस पर्यायको छोड़ना है, इतर पर्यायमें विलीन हो जाना है।

संसारकार्यका फल क्लेश—भैया, इस पर्यायमें कोई परिणति ऐसी नहीं है जो सदा रही हो, इन खोटी योग्यताओंके कारण और कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर यह जीव खोटे कार्य करता है। वे खोटे कार्य हैं क्या ? इस चेतनकी विशेष परिणति रूप कार्य है। दशा, अगली दशा, विलक्षण दशा जो इन्द्रियों द्वारा भी ग्रहणमें आवे मन द्वारा भी ग्रहणमें आवे ऐसी ये सब स्थूल दशायें इन जीवोंके अशुभ परिणामोंके कारण हैं। सो कर्म अशुभ परिणति नहीं करते। सबके कर्म नाना प्रकारके विचित्र दशाओं से सफल हो रहे हैं। ये संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके स्वरसतः नहीं होते, उपाधिका निमित्त पाकर संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके होने से जीवके कार्य सफल हो रहे हैं अर्थात् दुनियामें जीव भटक रहे है, सुख दुःख की व्यवस्थाएँ बना रहे हैं। यह सब जीवके खोटे परिणामोंका फल है। ऐसा इस संसारका फल ही चाहते हैं तो अपने ज्ञानको सोने दें और खोटी परिणतिमें चलें, और यदि संसारका यह फल ठीक नहीं लगता तो खोटे परिणामको त्याग दें।

आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे सर्वत्र अन्तरका अभाव—जीव जितने है वे सब एक स्वरूप ही हैं, स्वरूपमें किसी से भी अन्तर नहीं है। कोई भी जीव हो, चाहे एकेन्द्रिय हो, चाहे पंचेन्द्रिय हो, वे सब शुद्ध भगवान सम हैं। सब एक स्वरूप हैं। जितने भी पदार्थ हैं सबका कुछ न कुछ करनेका स्वभाव है। कार्यके विना पदार्थ नहीं रहते। कार्यके माने परिणति। प्रत्येक पदार्थोंमें परिणति होती है। कौनसे पदार्थ ऐसे हैं जो हैं तो सही और उनकी परिणति न बने, कोई पर्याय नहीं हो जिसकी कोई सकल सूरत न हो। पदार्थ है तो उसकी परिणति अवश्य है। जीव भी पदार्थ हैं। तुम भी पदार्थ हो तो तुम्हारी भी परिणति है। तुम्हारी परिणति क्या है ? चैतन्य स्वभाव रूप। जीव तो स्वरसतः स्वभावरूप परिणमता है। उसका जो कार्य होगा वह शुद्ध भावरूप होगा। पुद्गलके कार्य तो चलें फिरें, टक्कर लगाने से टूटें, खिसकानेसे हटे आदि हैं। पर जीवका यह काम नहीं है।

जीवकी दुर्गतिका हेतु मायात्मक श्रम—जीवका काम भावात्मक है, सुखी होना हो तो सुखी हो ले, दुःखी होना हो तो दुःखी हो ले, विशेष परिणाम भी करलें, भाव भी करले, इसके अतिरिक्त और कोई काय नहीं किया जा सकता। जीवका स्वरूप चैतन्य है, उसकी जितनी भी परिणति है सब चेतन्यात्मक है। चैतन्यात्मक कार्य बने रहे इतने मे कोई हानि नहीं है। पर इस जीवके साथ जो मोह

लगा हुआ है, जब तक मोहका मिश्रण मिटता नहीं है, तब तक उसे अपनी करतूतका फल मिलना रहता है। यदि मोह न रहे तो ममारका कोई फल नही मिलता। कोई नाना कैसा ही विचार करता है, किसीका राग करता है उसका फल है कि कोई पशु वन रहा कोई पक्षी वन रहा, अनेक तरहकी स्थिति हो रही है यह सब इस मोहका ही फल है। मोह न हो तो जीव परमात्माकी तरह शुद्ध निराकुल रहेगा।

कैवल्यमे आपत्तिका अभाव—भैया, वात तो यह है कि जैसे पुद्गल परमाणुओंके कार्य उन एक एक परमाणुओमे ही चल रहे हैं, वे अवद्ध परमाणु हैं, तो उसका कार्य कोई विडम्वना करनेवाला नही। किन्तु दूसरे अनेक परमाणुओंमे वह मिल जाय तो उसकी परिणति व्यावहारिक वातोको वनानेके लिए समर्थ है। अर्थात् उनका स्कन्ध छिदने, भिदने योग्य हो जाता है। इसी प्रकार केवल आत्माकी वात रहे तो उसमे कोई खरावी नही है, कोई विडम्वना नही हैं। पर इसके साथ जो मोह मिल गया इसके कारण मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि अनेक कार्य वन गये। तो मोह जव मिलता है तभी जीवके कार्य संसार फलको देते है। मोहका नाश हो तो जैसे अन्य परमाणुवोका सम्वध नष्ट होनेपर एक परमाणुकी परिणति ससारके, व्यवहारके कार्य करने मे समर्थ नही होती है। इसी प्रकार एक आत्मा ही केवल रह जाय उससे मोह दूर हो जाय तो मनुष्य पशु पक्षी आदि रूप फल नही वनेगा। फिर तो क्या है, जो द्रव्य है उस द्रव्यका सही स्वभाव परिणमन रहेगा।

परके संगसे ही विपत्तियो और गडवडियोका प्रादुर्भाव—जितनी ये गडवडियाँ चल रही हैं सव मेलने कराई हैं। अव अपने जीवनमे देख लो अकेला पुरुष है, किसीसे भी सम्वन्ध नहीं है तो वह आनन्दमग्न है। किसीकी चिन्ता न करो। जिसने चिताए की हैं, दूसरे जीवोंसे स्नेह रखा है सोई जीव फस गया, उसका वन्धन हो गया। तो जहाँ दूसरोका सग मिलता है वहाँ वाधाए भी आ जाती हैं और जहाँ अकेला ही हो वहाँ वाधाए नहीं आती हैं। अच्छा तो यह है कि गृहस्थीमे रहते हुए भी अपनेको कुटुम्व, परिवार, मित्रोसे अलग जानो। अपनेको अकेला ही समझे तो वही ज्ञानी है। घरमे रहते हुए भी समझमे आ जाय कि घरके ये दसो आदमी स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं नही। उनके पीछे चिन्ताए न करना चाहिए। वे सव अपने आपमे हैं, स्वतन्त्र हैं, किसी अन्यसे मिले हुए नही हैं।

केवलताके अनुभव विना सकटोंका विकार—भैया, अपने आपको मोहसे रहित अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको अनेकसे मिला हुआ अनुभव करनेपर अशान्ति ही रहती है। यदि शुद्ध दृष्टि रहे तो आनन्द ही आनन्द है। अव

भीतरसे मोहको छोडो, अपनेको ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको आनन्दमें रखना चाहते हो तो अपने सहजभावका अनुभव करो, एकत्वका अनुभव करो। यदि ऐसा अनुभव न कर सके तो आकुलताएँ ही बनी रहेगी। बतलावो भैया! घरके लोगोंमे, पुत्र, परिवार इत्यादिसे मोह आ गया, उनसे तेरा कोई सम्बन्ध है क्या? तेरा कुछ भी तो इन घर वालोंसे सम्बध नही। अगर तेरे घरमे इन जीवोंके बदले और कोई जीव आते तो क्या उनसे न मोह करते? तो फिर अपने घरके लोगोको अपना मानना और दूसरोंको गैर मानना यह तो ठीक नहीं। यह मेरा है यह उसका है, यह पराया है, ये सब मोहकी ही तो व्यर्थकी बातें हैं। यदि इन विषयोंमें ही फसे रहे तो इनसे तो सदा अन्धकारमें ही पडे रहोगे। सही बात को सही न मानने से तो परेशानियाँ होती ही हैं।

जैसे को तैसा मानना ही सुलझनेका उपाय—जो जैसा है उसे वैसा मानना ही ज्ञान है। यहाँ मेरा कुछ नहीं है, मैं तो अकेला ही हूँ, यदि ऐसा भाव रहे, सबको छोडकर अपनेको अकेला अनुभव करे तो परेशानियाँ न रहेंगी। सर्वत्र ही अपनेको अकेला अनुभव करो। ऐसा विश्वास यदि बनाओ तो धर्म रहेगा। यदि दूसरोसे मोह है तो आकुलताएँ ही रहेगी। इस मोह से तो अधर्म ही होगा, लाभ कुछ भी न रहेगा। सो आचार्य महाराज बतलाते हैं कि जब तक मोह रहेगा तब तक तुम्हारी परिणतिसे संसार बनता रहेगा। मोह न रहे तो तुम्हारी यह चैतन्यात्मक परिणति तुम्हे भगवान बना देगी।

संसारी बनना व मुक्त होना अपने उपयोगपर निर्भर—भैया, संसारी बनते हो तो अपने आप बनते हो, भगवान बनते हो तो अपने आप बनोगे। प्रभुकी भक्ति तो अपना ध्यान सही करने के लिए है। प्रभु अपनी जगहसे उतर कर यहांके मोही पापी जीवोंको ऊँचा उठानेके लिए तकलीफ क्यो उठायेगा? उसे ऐसी क्या अटक पड़ी है? वह प्रभु तो शुद्ध हैं, ऐसा वह कर ही नही सकता है। वह तो समस्त विश्वका ज्ञाता है और अपने आनन्दमें मग्न है, इन चक्रोंमें नही है। भैया, यह मनुष्य जन्म बडी कठिनाईसे मिला, इस मनुष्य जन्मको यदि विषय भोगोंमे ही खो दिया तो इस उद्धारक भवको यों ही खो दिया। जैसे समुद्रमें रत्न फेंक देनेसे खोजनेमे नही आता इसी तरह भोगोंके गहरे भयानक समुद्रमें इस आत्माको अगर फेंक दें तो यह मनुष्य जन्म मिलना बडा कठिन है। सो जितनी मेहनत धन वैभव पानेमे करते हो उससे अधिक मेहनत ज्ञानके प्राप्त करनेमे करना चाहिए। असली बात तो यह है। अगर मोह ऐसा पड़ा हुआ है कि ज्ञानके लिए दृष्टि ही न जायगी, लडको बच्चोंमे ही मोह बना रहेगा, उनके लिए ही हजारो लाखो रुपया खर्च कर डालेंगे। अपना कुछ न सोचें तो सब गुड़ गोवर ही समझो।

ज्ञानयात्राका महत्त्व—अरे भैया, धर्मकी बात मनमे लावो और यह विचार करलो कि चलो ज्ञानयात्रा करलें। २–३ माह यात्रा करनेमे हजारो रुपया खर्च कर दिया। खैर ठीक है मगर उस यात्रासे अधिक ज्ञानकी यात्रा है। हजार न खर्च करो, दो सौ खर्च कर दो, एक अच्छी जगह दो माह को बैठ जावो, जहाँ ज्ञानकी बातें मिलती हैं, उपदेश मिलता है। २ महीनेकी ज्ञानकी यात्रा करलो तो गाँठमे लेकर भी कुछ आवोगे। अन्यथा तो यात्रा करके सिर्फ मन भरना है। गिरिनार जी कर लिया, पावापुर कर लिया, चम्पापुर कर लिया, कर तो लिया, मगर पूर्ववत् मोह है, प्रीति है, आरम्भ है, परिग्रह है, फर्क कुछ नही पडा। यात्राका तो फल होना था कि विषय कषायोंमे कुछ कुछ फर्क पडता। दस बार यात्रा कर आवें मगर फर्क नही पडे तो बताओ उसका फल क्या मिला ? केवल उस यात्रासे मन ही तो भर लिया। अगर अपने ज्ञानकी यात्रा करो तो पूरा पडेगा नही तो पूरा नही पडेगा। इस यात्रामे भी ज्ञानकी बात आवे तो यात्रा है। अब यात्रा भी करते जा रहे हैं और सगमे रहने वाले यात्रियोंसे लडते झगडते भी जा रहे हैं तो यह यात्रा नही हुई। यदि सतोष आवे, वैराग्य आवे तो यह यात्रा सफल है।

ज्ञानातिरिक्त सर्व परिस्थितियोंकी असारता व आत्महितकी प्रेरणा—सो भैया, अपना हित चाहते हो, अपनी आत्माका विकास चाहते हो तो ज्ञानोपयोगसे अपना पोषण करके अपनी भलाई करलो। यह जग लुटेरा है, ये सब समागम विनाशीक हैं, इस विनाशीक समागममे रहके भी एक मौका मिला है आत्महित करने का। सो इस मौकेमें इन चक्रो और बातोंकी उपेक्षा करलो। घरमे रहने वाले जो १० व्यक्ति हैं उनके साथ कर्म लगे हैं। तुम किसी के कर्मोंके ठेकेदार नही हो। उनका उदय जब खराब आयगा तो क्या कर लोगे ? उन लड़के बच्चोका उदय अच्छा है इसलिए तुम उनकी नौकरी करते हो। ऐसा जानकर दूसरे जीवोकी चिन्ता छोड़ो और अपने हितकी बातमे ज्यादा चित्त दो, अपने तन, मन, धन और वचनोको धर्ममे लगावो तो अपने आपको कुछ फल भी होगा। और यदि विवेक नही उत्पन्न कर सके तो सारे समागम बेकार रहे। सो कहते हैं कि धर्म रूप रहना है तो समागम के ज्ञाता द्रष्टा रहो और ज्ञानानुभूतिकापुरुषार्थ करो।

अभी कोई दूसरा आदमी गिर पडे तो उसको देखकर वेदना उत्पन्न नही होती, चाहे हसी आ जावे। और जिसको अपना मान रखा है उसको जरा सी चोट आ जावे तो विषाद पैदा होता है। यह जो दुवाभाति है यही तो इस जीवके सकट लग गया है। यही मोह कहलाता है। इस मोहको मेट दो। इस मोहको मेटकर केवल ज्ञाता द्रष्टा रहो। जब मिले हुए स्कन्धोंसे कोई परमाणु मुक्त हो जाय याने एक परमाणु स्कन्धोंसे छूट जाय, अकेला रह जाय तो वह न पकडा जा सकता, न काटा

जा सकता, न भेदा जा सकता, न जलाया जा सकता। यहाँ भौतिक फल न मिलेगा, भौतिकता न रहेगी, वह शुद्ध अणु रहेगा। इसी तरह यह जीव मोहमे छूट जाय, जिस मोहके कारण यह मूर्तिमान बना फिर रहा है, तो यह आत्मा केवल शुद्ध पवित्र अपनी परिणति रखेगा फिर इसमे कोई क्लेश ही न रहेंगे।

अपने पतनका हेतु अपना ऐब—जब तक यह जीव रागादिक भावोंमे जकडा होता है तब तक इसकी दुर्गति होती है। जिसे कहते हैं कि चौरासी लाख योनियोंमे यह जीव चक्कर लगाता रहता है और दुखी होता रहता है। कोई मनुष्य यहाँ भी यदि बाजारमे कोई ऐब करदे, दुराचारका काम करदे तो उसके ऊपर जूते, लाठी बरसाये जाते हैं। वह जो पीटा जाता है तो उसकी करतूत से ही पीटा जाता है। किसी मनुष्यकी लोग तारीफ करें कि यह मनुष्य बडा सज्जन है, इसका बडा सहारा है, या उसकी तारीफ करके, आश्रय करके उसका सहारा ताकते हैं सो कोई सोचे कि इसको सब चाहते, यह सब भूल है। उसका सदाचार सद्व्यवहार ही तारीफ कराता है। और, पिटनेवालेने दुराचार किया था तभी तो सताया गया। क्या जीवका कोई ऐसा भी नाता है कि वह पाप ही करे और लोग उसको पसद ही किया करें, जीवका तो सब पदार्थोंके साथ मात्र जानने देखने का नाता है।

सदाचार ही प्रतिष्ठाका कारण—क्या भैया, कोई आदमी चोरी करता हो, डकैती करता हो, दूसरेकी स्त्रीको हरता हो, अन्याय धोखासे परिग्रह जोडता हो, कजूस हो फिर भी उसको हितू मान उसकी ही प्रसंसा करे ऐसा उससे नाता है कोई क्या ? नाता तो किसीसे नही है, यदि कोई भला है तो उसको सब भला कहेंगे। खुद बुरा है तो वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। औरकी बात ही क्या करें, यदि आपका लडका ही कपटी हो जाय, खोटा हो जाय, आपके भी विरुद्ध हो जाय तो आपही अपने लडकेसे अपना मुख मोड लेंगे। तो है कौन किसका ? दुराचार है तो सब बुरा कहते हैं, अगर सदाचारका मार्ग है तो लोग उसका सत्कार करेंगे। यदि वह व्यक्ति अच्छी तरहसे रहता है तो उसको देखकर लोग उससे शिक्षा लेते हैं, उसकी उपासना करते हैं, वह व्यक्ति त्यागी है, वही ऊँचा है, वही सदाचारी है, अगर वह व्यक्ति कभी दुराचारी बन जाय तो फिर उसको कौन त्यागी मान सकेगा ? जब तक सदाचार है तब तक सत्कार है। त्यागसे ही पूरा पडेगा, त्यागीको, सदाचारीको इसीलिए लोग पूजते हैं।

त्यागके पूज्यताकी साधनता—यथार्थ तो यह है कि लोग त्यागको पूजते हैं, व्यक्ति को नहीं। उसके त्यागको भी परमार्थसे नही पूजते हैं, यदि उसका त्याग सुहा जाता है, उसका त्याग उत्तम माना जाता है तो इसभावको लोग पूजते हैं। सो सही बात

अपने ज्ञायकी है। आपके ज्ञानमें जब तक भलापन नही आया तब तक आप किसी भी त्यागी को, किसी भी सदाचारी पुरुषको पूज नही सकते हैं। सो परमार्थसे आप अपनेको ही पूजते हैं। न तो दूसरेके त्यागको आप पूजते है और न पुरुपको, किन्तु अपने आपको पूजते हैं ये तो सब जीव हैं और अपना अपना परिणमन करते हैं, इनके साथ जो मोह लग बैठा है उसी से सारी गाड़ी उल्टी हो गयी। इससे न तो अपना स्वरूप ज्ञात हुआ, न ज्ञाता द्रष्टा रहा, न आनन्दमग्न ही रहा। इस मोह को त्याग कर ज्ञानरूपमे यह जीव परिणमन करे, तो भला हो सकता है। यदि मोह न त्याग सके तो फलमे क्लेश ही मिलेगा।

आत्मदृष्टिसे च्युत आत्मपरिणतिमे ससारकी कारणता—आत्मा तो चेतन है, इस चेतनका जो कार्य है वह चेतन्य परिणमनस्वरूप है। चैतन्य परिणमन प्रति समयमे नया-नया चलता रहता है। सो उत्तर कालमे चैतन्य परिणमन होनेपर पूर्व कालमे हुआ चैतन्य परिणमन उस ही चेतनमे विलीन हो जाता। और उत्तर कालमे जो और चैतन्य परिणमन हुआ सो पूर्वका यह चैतन्य परिणमन भी उसमे विलीन हो गया। जैसे यह एक अगुली है, अभी सीधी है, इसके बाद जब यह टेढी हो गयी तो जो इसका सीधा परिणमन था वह अगुलीमे विलीन हो गया। अब वह परिणमन नजरमे न आयगा। इसके बाद उस अगुलीको सीधा करलें तो अगुलीका टेढापन इस अंगुलीमे विलीन हो गया। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यका नवीन परिणमन होता है, पूर्व परिणमन उसी पदार्थमे विलीन हो जाता है, उत्तर परिणमनरूप हो जाता है। तो चेतन भी अपना चैतन्यात्मक कार्य करते हैं वे चैतन्य परिणमन प्रत्येक समय नवीन नवीन चलते रहते हैं। इस आत्माकी स्वयमेव चलती हुई चक्कीमे मोहका सम्मेलन होनेसे इसकी परिणति विशिष्ट बन जाती है और वह परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी, देव आदि पर्यायोका निष्पादन करनेकी कारणभूत हो जाती है। इससे ससारी जीवोकी यह क्रिया सफल हो रही है। सफल होनेका मतलब कुछ अच्छा नहीं है। इस फलसे मतलब ससारसे है। यह क्रिया ससार फलको दे रही है, चतुर्गतिके जीवोको भटका रही है।

क्रियाफलका दृष्टान्त—जैसे कि एक परमाणु दूसरे परमाणुकी सगति पा लेने से स्कधमे बँध जाय तो उस परमाणुकी परिणति स्कधके कार्योको बना देनेमे सफल हो रही है और परमाणु स्कन्धमे आकर वे एक भौतिक रूप रख लेते हैं। जैसे यह चौकी, यह चटाई, यह काठ वगैरह नजर आते हैं इसलिए ही स्कधकी सकल बन गयी, तो अब इन्हें उठा सकते हैं, बन्द कर सकते हैं यहांसे उठाकर ले जा सकते हैं, पर सगमुक्त परमाणुको कोई नही उठा सकता है, न तो कोई बन्द कर सकता है,

न यहाँसे वहाँ ले जा सकते हैं, पर वह परमाणु स्कन्धका संग पा लेने से देख लो, ये नव बँध रहे हैं। नव उठाये जा रहे हैं, जलाये जा रहे हैं, अनेक बातें होती हैं।

क्रियाफलका दृष्टान्त—इसी प्रकार इस जीवके ये कार्य जीवके ही तो हैं, स्वत सिद्ध हैं, मूलमे हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, स्वरसत चैतन्यात्मक हैं, पर मोहका मिश्रण होनेसे ये ही परिणतियाँ ससारफलको बना रही हैं, और इन परिणतियोंमे ऐसा मिश्रण बना है, मिश्रित होकर एक ऐसी परिणति बन गयी है कि इसमें कषायोंका और चैतन्यात्मक परिणतियोंका विवेक करना कठिन हो गया है। वे एक परिणति हैं, क्योंकि चैतन्य द्रव्य है, सो उनकी एक समयमे एक ही परिणति है पर वह मोह उपाधिसे मिश्रित है सो उससे ज्ञानी जीव विवेक कर डालता है। जो चीज मिट जाया करती है मिट जाती है और मिट जायगी वह तो जीवका अतत्त्व है और जीवकी ही सत्ताके कारण जीवमे स्वरसत उठने वाले कार्य जीवके तत्त्वरूप हैं, किन्तु ससारी जीवको देखो यह मोह होनेके कारण अपना कैसा सर्जन करते चले जा रहे हैं। आज मनुष्य है तो जैसा यह मनुष्यका अग मिला, हाथ, पैर, नाक, मुँह मिले उसी रूपमें यह आत्मप्रदेश फैल गया और जैसी यह गति मिली उसके अनुसार इस जीवके भाव बन गये।

आत्मस्वभावकी ओर झुकने वाली परिणति ही शुद्ध सृष्टिका कारण—अब जीवकी मूलमे ही वही परिणति जब केवल बन जाती है, मोहसे हट जाती है, तो जैसे एक परमाणु उस स्कन्धसे हट जाता है, अलग हो जाता है, केवल रह जाता है तो उसकी परिणति अब वह कार्य नहीं कर सकती जो कार्य स्कन्धरूपमे करती थी। अब वह परमाणु न बाँधा जा सकता, न छेदा जा सकता, न उसका कुछ व्यवहार ही बनता। इसी तरह जिस आत्माकी परिणति मोहसे हट गयी, केवल ज्ञानज्योति स्वरूप रह गयी, अब वह आत्मपरिणति विशुद्ध हो गयी, उसकी परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च आदि ससारी अवस्थाओंकी सृष्टि करनेमे असमर्थ हो गई। वह तो अपनी शुद्ध सृष्टिमें आ गई। तो जैसा वह आत्मा परम द्रव्य है, जैसा स्वभाव है, वह परम स्वभाव होनेसे वह परिणति परम धर्मरूप हो गई, अब इस ससारकी सृष्टिको बनानेमे असमर्थ हो गई।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि—भैया, आप हम सब आत्मा हैं, अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि बना रहे है। कोई मनुष्य हुआ, कोई पशु बना, अन्य अन्य पर्यायों रूपमे रहे, इन सबका संगम करने वालों तो उन उनकी परिणति है। मोह राग द्वेषमे सहित चैतन्य कार्य इस संसारकी सृष्टिको कर रहे है। मोह बाहर हो जाय, इष्ट अनिष्टका विचार हो जाय, किसी प्रकारके राग द्वेष विकल्प न रहे, शुद्ध

चैतन्यात्मक परिणति हो, तो अब वह न इस ससारी पर्यायको रचता है और न विपय कषाय भावोको रच सकता है और न उसके कर्मोंका वन्धन हो सकता है, उसको यह कहा जायगा कि यह परम धर्मरूपपरिणति अब फलरहित हो गई। संसारके कार्योको न बना सके इसही को विफलता कहते हैं। परम धर्म तो यही है। यदि ससारफल तुम्हें मीठा लगता हो कषाय करो और ससार मे रुलो।

परम धर्मके लिए कर्त्तव्यका निर्देशन—परम धर्मके लिए अपना कर्त्तव्य है कि अपनेको सबसे न्यारा, अकेला अपना स्वरूप मात्र, चैतन्यस्वरूप अनुभव करें। कुछ जाननेमे आये तो, उसका मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे, उनमे यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, ऐसी कल्पनाएँ, आकुलताएँ न उठ सकें। यदि ऐसा बन सका तो इसको ही धर्म कहते है। अपने आत्माको इस प्रकारसे ढालनेकी कोशिश करो कि मेरेमे दूसरेके प्रति मोहका भाव न उत्पन्न हो। घर कुटुम्बमे चित्त दौडाते हैं तो यहाँ चित्तका दौडना आसान लगता है, इन भिन्न पर तत्त्वोमे झुकना आसान जचता है। लोकव्यवस्थामे यहाँ पर घर परिवार वैभव तुम्हे मिला है सो मोह करलो, जो चाहो सो करलो, परन्तु इसका फल बडा कटुक मिलेगा।

विषय कषायका भोग तो आसान किन्तु फल मँहगा—विपय कपायोका बडा मँहगा फल प्राप्त होगा, वह क्या फल है? आकुलताएँ, कर्म बन्धन, नाना झझटें, इत्यादि फल हैं। और नही तो बैठे बैठे आप यह सोचकर दु खी हो जायेगे कि देखो स्त्री पुत्रोके पीछे कितना परिश्रम किया, इसके पीछे कितना कष्ट उठाया, इनको कितना राजी रक्खा पर ये पूरे तौरसे मेरे मन माफिक नही चलते हैं। अरे मन माफिक तो कोई चल ही नही सकता है। चलता भी है वहाँ कोई, तो फर्क रह जाना नियमित ही है। कुछ न कुछ फर्क रह ही जाता है। भैया, इनमे तुम कुछ कर ही नही सकते, तुम तो विपय कपायको भोग रहे हो। किसी भी पर पदार्थके प्रति मोह न रहे,बस यही धर्मका पालन है।

शुद्ध ध्येयके बिना बिडम्बना—हम आप मन्दिरमे भगवानके दर्शन करने जाते हैं तो भगवानको कितने ही लोग यह कह जाते हैं कि भगवान हम खुश रहे, घरके सब लोग खुश रहें। मुखसे कहते जाते हैं। अभी मनमे ही रक्खें, इतनी बात नही, भगवानसे कहने तक लगते हैं कि भगवान हमारे घरके लोग खुश रहे। कहाँ तो इतना परिश्रम करके, इतने कष्ट सहकर मदिर गए, और गौडे तोडे, लेकिन बाहरी पदार्थोंमे ही रुचि लगाए हैं, बाह्य पदार्थोंकी ही आशा रख रहे हैं सो मनमे तो अधर्म है और श्रम ही शरीरसे किया जा रहा है, फिर मदिरमे आकर धर्म कहाँसे लग जाय। धर्म तो मोह क्षोभके झझटसे रहित परिणतिका नाम है। भगवानकी

मुद्राके दर्शन करके हमे शिक्षा लेना चाहिए कि मुझको भी मोहरहित होना चाहिए। मोहरहित होनेमे ही इस आत्माका उद्धार है।

भैया ! भगवानकी मूर्ति देखकर यह मन चक्कर काटता फिरे कि हमारे घरके लोग भी खुश रहे, हम भी खुश रहे तो यह धर्म कहाँ हुआ ? जरा भी तो धर्म नही हुआ। कोई देवी देवताओंके आगे यह जाकर मांगे कि हम खुश रहे तो उससे तो अच्छा है कि अपने महावीर स्वामीके आगे जाकर लौकिक सुखोंको माग लें, ऐसा यदि ख्याल हो तो मेरे ध्यानमे अच्छा नही है, कुछ अन्तर नही है। मिथ्यात्व पूरा है, वहाँ उन कुदेवोंके आगे वे लोग सुख मागते है। यहाँ भी विषय सुखकी बातें लोग महावीर-स्वामीसे मांगते हैं कि कुछ दे दें। इन विश्वासोंने महावीर स्वामीको इन मांगने वालोंने अपने उपयोगमे बिगाड दिया कि नही ? मोही, ससारी दुखिया प्रभूको बना दिया कि नही ? वे तुम्हारे बनानेसे कुछ नही बन जाते, पर इन विश्वासोंसे मिथ्यात्व रहा कि न रहा ? चाहे देवसे मागो चाहे कुदेवसे मांगो, मिथ्यात्व तो है ही। अन्तर केवल भावी आशामे है। भविष्यमे अन्तर हो सकता है। अनुमान तो कमसे कम इस भगवानकी मूर्तिके दर्शन करने वालोंके प्रति तो आता ही है कि सभव है कुछ दिनोंमे, कुछ वर्षोमे बुद्धि बदल जायगी। कुछ साधुजनो, पडितजनोंके उपदेश मिलें तो सन्मार्ग प्राप्त हो जायगा। इस अनुमानसे वर्तमानमे तो अन्तर न पड जायगा। सभावनाका अन्तर है पर इनसे क्या, वर्तमानमे तो विष पीनेका ही फल मिलेगा। देखो भावका गजब। मूर्तिके दर्शन करके भी वे विष ही पीनेको पावेंगे, अमृत वे नही पी सकेंगे।

भगवानके पूजन दर्शनमे हमें ध्येय क्या रखना चाहिए ?—दर्शनका तो ध्येय यह रखना चाहिए कि हे प्रभो मेरे हितका मार्ग तो यही है कि जो आपकी मुद्रामे भरा हुआ है। प्रभुकी मूर्तिमुद्रा भी यही दर्शा रही है कि हे उपासक ! तेरे कल्याणका मार्ग तो यही है जो हमने किया। प्रभुदर्शन करके ज्ञानी पुरुषका यही परिणाम होता है कि मोहरहित होकर ही कल्याण हो सकता है। मोहमे उद्धार नही है, इस प्रकारका अनुभवन करो और मोहको दूर करो, फिर घरके सब काम भी करते रहो, किसी कार्य का हम आपको अभी निषेध नही कर रहे हैं, दूकान वही है, घर वही है, घरके लोग वही हैं, केवल भीतरमे ज्ञानका उजेला हो जाय यही अपने हितकी बात है। अपनेमे कुबुद्धि न आये कि यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है। अरे ये कोई तेरे नही हैं। इतना तुम्हे विश्वासपूर्ण एव दृढ होना चाहिए जैसे बडे बडे सतोका होता है ज्ञान तो तुम्हे स्वच्छ और स्पष्ट रखना चाहिए जैसे कि बडे बडे सतोंके होता है। फर्क केवल व्यवहारका रह जायगा।

ज्ञानीके उपेक्षा—सत शुभ वातावरणमे है, शिष्य लोग साथ हैं, अथवा कुछ

पटनेकी सामग्री भी साथमे है, फिर भी उनकी जैसी स्थिति है उस स्थितिमें ही वह मन लगसे विरक्त रहता है। गृहस्थके पास ये २-४ खण्डके मकान है, दो एक दूकान हैं, दस पाँच परिवारके लोग है पर ज्ञानी पुरुष वही है जो इस प्रसंगकी गृहस्थीमें रहते हुए भी उस सबसे विरक्त रहे। साधु अपने योग्य वस्तुओंके संगमें रहकर विरक्त रहता है तो गृहस्थ बड़े भारी परिग्रहके बीचमें रहता हुआ भी अन्तरंगमें परिग्रहसे विरक्त रहता है। और यदि उन शब्दोंमें कहे कि साधुको तो ज्यादा कठिनाइयां कुछ नही पडती क्योंकि उनके पास इतना परिग्रह नहीं लगा, सो वह अपने ज्ञानको साफ बनानेमे कठिनाइयाँ नहीं पाता। मगर गृहस्थको इतना परिग्रह लगा है तिस पर भी उस सब संगमे विरक्त रहकर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ ज्ञानदृष्टिको पकड़े रहता है तो उसका साहस महान है, तो ये शब्द कुछ अत्युक्तिक नहीं होंगे।

भैया, यह ज्ञान दृष्टि ही शुद्ध धर्म है। अन्य कुछ धर्म नहीं हैं। धन रखते है, छोडते हैं यह धर्म नही है। धनका त्याग तो पापका प्रायश्चित्त है, परिग्रह रखकर पाप किया है, उन पापोमे छूटनेका प्रायश्चित्त दान है। कोई पाप न हो तो दानकी क्या आवश्यकता है? आरम्भके पाप करते है सो आहारदान में दृष्टि हो जाती है। उद्यमके पाप करते है तो उसका प्रायश्चित धर्मायतन बनाना, शिक्षा संस्थाएं खुलवाना परोपकारमें धन लगाना आदि आदि हैं। और-और भी धर्मके काम करें उन कार्योंके करनेसे उद्यमके कारण बने हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पर अन्यायसे उद्यम करके पाप नष्ट करले ऐसी बुद्धिसे जो उद्यम करते हैं, दान भी देते है उनके पाप नष्ट नही होते हैं। न्यायसे कमायें और दान करे तो न्यायसे कमानेमें भी जो पाप लगे वे दान करनेमें दूर हो जाते हैं।

अब मनुष्य आदिक जो पर्यायें जीवोंकी है वे पर्यायें जीवोकी क्रियाओंके फल हैं इस बातको श्री पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य प्रकट करते हैं। जीवोने क्रियायें की, उन क्रियाओंके परिणाममें मनुष्य आदिक पर्यायें बन गयी, यह बात बतलाते हैं। जगतमे जो यह जीवोंका स्वरूप दीखता है यह कैसे बन गया? क्या ईश्वरने बनाया? या किसी एकने बनाया, कैसे बन गये इस बातको बतला रहे हैं। जैसा जीवोंका जो पर्याय हैं वह पर्याय उस जीवकी क्रियाका फल है। अर्थात् जीवने ही अपने विभाव से सृष्टि बनायी यहाँ यही बात व्यक्त करते हैं।

कम्मं णाम समक्खं-सहावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ ११७ ॥

इस गाथामे श्री कुन्दकुन्दाचार्य सीधे और स्पष्टरूपसे यह बात कह रहे हैं कि नाम कर्म नामका जो कर्म है वह अपनी ही प्रकृतिसे आत्माके स्वभावको ढक करके तिर्यञ्च

नारकी व देव रूप कर लेते हैं। कर्म अपनी ही प्रकृतिमें आत्माके स्वभावकी तो तिरोभूत कर देते हैं और तिर्यञ्च नारकी आदि पर्यायोंरूप व्यक्त कर देते हैं। इस गाथा में इस रूपमें बिल्कुल सीधा स्पष्ट कहा है। अब श्री अमृतचन्द्र आचार्य इस बातका इस तरह वर्णन करते हैं कि जीवोंके जो कार्य हैं वे जीवोंके द्वारा ही प्राप्य हैं इसलिये वे जीवोंके कर्म हैं। कर्म नाम असलमें जीवके कार्यका है। पुद्गल वर्गणावोंमें जो सम्बन्ध लगे हैं वे निमित्त नैमित्तिक भावसे लगे हैं और जो उनका कर्म नाम पडा है वह इस सम्बन्धसे पडा है। अर्थात् जीवोंकी विकार परिणतिसे मिश्रित चैतन्यात्मक कार्य हैं, जीवोंके इन कार्योंका निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणायें स्वयं ही ऐसी प्रकृति रूप बनती है कि उनके उदयका निमित्त पाकर जीवक्रिया विभावरूप परिणमती है। जीवका कर्म असलमें जीवका विभाव कार्य है। और उस कार्यका निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माणवर्गणावोंमें जो विचित्रता होती है उसका नाम पीछे कर्म रखा गया।

निश्चयदृष्टिसे जीवकी परिणतिके जीवका कर्मत्व—कर्म असलमें जीव के कार्यका कहते हैं। इस कर्मके निमित्तसे जो कार्माणवर्गणावोंकी परिस्थिति बनी इनको भी कर्म उपचारसे कहा गया है। या यों कह लो कि वास्तवमें कर्म नाम जीवोंके कार्यका है और कार्माणवर्गणावोंका कर्म नाम उपचारसे रखा है। परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव जैसे जगतमें चलते हैं वे यहाँ भी चल रहे है सो आत्माका जो विभाव परिणमन है वह कर्म है, उसका निमित्त पाकर जिन पुद्गलोंने एक विशिष्ट परिणाम पाया है उन पुद्गलोंका नाम ही कर्म रख दिया गया। फिर उस कर्मके कार्यभूत ये मनुष्यादिक पर्यायें हैं इस कारण पर्यायोंके स्रोतभूत कारण जीवके कार्य हैं। और जीवके कार्यके निमित्तमें प्राप्त हुआ है विशिष्ट परिणमन जिसमें ऐसा पुद्गल कर्म है। और पुद्गलकर्मके उदयमें मनुष्यादिक पर्यायें हुई इसलिये ये मनुष्य आदिक पर्यायें जीवके कर्मका फल कही जाती हैं। भले ही यह सारी विचित्रता पुद्गल कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर हुई परन्तु इनका मूल कारण तो जीवका विभाव है। इसलिए मूल कारण जीवके विभावसे यह पर्याय (परिणति) होती है।

नाना प्रकारकी सृष्टियाँ हो जानेमें वस्तुगत सिद्धान्त—उक्त बातोंको सुनकर यदि कोई यह प्रश्न करे कि यह जीव मनुष्यादिक कैसे बन गया? तो यह कहा जाना चाहिये कि यह जीव अपनी करतूतसे मनुष्यादिक बन गया। यह जीव कीडे मकोडे कैसे बन गया? तो यह कहा जायगा कि यह जीव अपनी करतूतसे कीडे मकोडे बन गया। यह स्थावर और निगोद कैसे बन गया? अपनी करतूतसे बन गया। इसलिए लोकमें जितने जीव समूह दिखते हैं वे इस जीवके कार्यके फल हैं। इस कारण यह बात भी सिद्ध है कि इस सृष्टिका करनेवाला यह स्वयं ईश्वर है। जीव

सब इस कारण ईश्वर हैं क्योंकि उनका जो स्वरूप है वह है चैतन्य। जीवोंका स्वरूप भी चैतन्य है। तो जो स्वभाव प्रभुका पाया जाता है वही स्वभाव हम और आपका भी पाया जाता है इसलिये प्रत्येक जीव ईश्वरका स्वरूप रखते हैं। सो चाहे यह कहलें कि इस जीवकी करतूतका फल यह ससार है, सृष्टि है और चाहे यह कह लो कि ईश्वरकी करतूतका फल यह सृष्टि है।

जीवेश्वरके विकारका परिणाम—भैया, जीवकी करतूत है भावात्मक, क्योंकि मूलमे जीव के जो कार्य हैं वे भावात्मक हैं। उस जीवके हाथ पैर नही हैं। हाथ पैर तो कार्यके फल हो गये पर जीवकी चीज तो नही हुई। ये हाथ पैर कैसे प्रकट हो गये ? इस बातको बतला रहे हैं कि इसके व्यक्त होनेका मूल कारण जीव के भावात्मक कार्य हैं। तो वहाँ इसके ऐसे भावात्मक कार्य हुये जिसे लोकमे यह कहने लगे कि ईश्वरकी मर्जी हुई तो यह सृष्टि बन गयी। सो यह बात सत्य है इस आत्मा मे एक मर्जी उत्पन्न हुई, इच्छा उत्पन्न हुई, किसी भी प्रकारसे हो उस इच्छाका ही प्रसाद यह सारा ससार है। इस तरह यह विचित्र जीवलोक, ये मनुष्यादिक पर्यायें जीवोके ही कार्योंका फल हैं।

श्री अमृतचन्द्रसूरीजी कहरहे हैं कि यह कार्यफल जीवोकी भावात्मक विक्रिया-वोका फल है। यदि जीवकी क्रिया न हो तो पुद्गलमे कर्मपना नही आ सकता था। यह निमित्तनैमित्तिक भावोंमें देखिये। यद्यपि स्वरूपमे नजर दो तो यह बात सुप्रसिद्ध है कि पुद्गलमें जो कर्मत्व आये वे पुद्गलके कार्योंसे आये। जीवकी परिणतिसे पुद्गल कर्मोंमे कोई बात नही आई है। जीवमे जीवकी परिणति है, पुद्गलमे पुद्गलकी परिणति है। दुनियामे अपना-अपना काम हो रहा है। मगर जिनके होनेपर होता है और जिसके न होनेपर नही होता, ऐसा सम्बन्ध भी तो देखा जाता है। यह सम्बन्ध असत्य नही, मगर सम्बन्धकी बात एक सत्मे नही होती, इसलिए असत्य है।

निश्चयदृष्टिमे सम्बन्ध असत्य है, निमित्त नैमित्तिक भाव असत्य है, क्योकि निश्चय दृष्टि तो एक ही पदार्थमे ही उस एक पदार्थकी बातको निरखती है। यह दूसरे पदार्थोंका विषय ही नही करती। जब निश्चयदृष्टि रखकर कुछ सम्बन्ध जानना चाहे तो नही जान सकते हैं क्योंकि निश्चय दृष्टि एकको देखती है। निश्चय दृष्टिका विषय सम्बन्ध नही है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धी युक्तिकी प्रगति—जब युक्ति और बुद्धिको पसार कर कुछ और देखते हैं तो क्या यह बात नही है कि जीवके बिभाव होने पर ही कर्मका कर्मत्व आता है, जीवविभावके हुए बिना कर्ममे कर्मत्व कदापि नही आता यही बात ठीक है। जब यह निर्णय हुआ तब इसीके माने निमित्तनैमित्तिक भाव है।

जीवमे विभावात्मक कर्म नही होता तो पुद्गलमे कर्मत्व नही होता। और पुद्गलमे कर्मत्व नही बनता तो यह मनुष्य आदि पर्याय भी नही होता । क्योकि जिस-जिस प्रकार की प्रकृतिका उदय चलता है उस-उस प्रकार की उन पर्यायोकी सृष्टि देखी जाती है। इसलिए उन पर्यायोका मूल कारण जीवोंके कार्य हैं। इन कर्मोमे, प्रकृति पडती है, स्थिति पडती है और विशिष्ट रूपमे प्रदेशबंध होता है, इस प्रकारके विशेष कर्मोका होना जीवकी विक्रिया होनेपर ही होना है। प्रकृति स्थिति प्रदेश अनुभाग यद्यपि कर्म हैं और कर्मकी विचित्र शक्तिसे ही यह व्यक्त होता है, लेकिन ऐसी प्रकृति स्थिति इत्यादि बन जाना जीवके विभावके बिना क्या सम्भव है ?

स्वतन्त्रदृष्टिसे देखो तो जीवका कुछ काम कर्ममे न आयगा, कर्मका कोई काम जीवोंमे न आयगा। मगर निमित्त नैमित्तिक भावोकी विचित्रताको देखो कि जीवोंके विभावोका निमित्त पाकर ये कार्माण वर्गणायें १४८ प्रकारकी प्रकृतिरूप बन गईं हैं। और यह कर्म, कर्मरूपमे कितने समय तक जीवोंके साथ लगा रहेगा ? यह विचित्रता जीवोंके विभावका निमित्त पाकर बन्धनके समय ही आ गई थी और ये कर्म किस प्रकारसे अनुभाग रख रहे हैं ? उस कर्ममे कितनी अनुभाग शक्ति है ? यह अनुभागका विभाग भी कर्मबन्धनके समय पड चुका था। इतनी बातें ऐसे जीवके कार्यके बिना नही होती। जीव उन पुद्गल कर्मोके कार्योको नही करता पर जीवके विभाव बिना कर्मत्व नही होता है। इस प्रकार निमित्तपरम्पराओंमे चलते हुये देखो तो यह स्थिति होती है कि ये सब जीवलोक जीवोके कर्मोका फल है।

मरणके बाद नया देह पानेका हेतु सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध—ऐसी भी प्रसिद्धि है कि किसी जीवका मरण होता है याने वह भव छूटता है, मनुष्यादिक पर्याय छूटती हैं तो जीव सूक्ष्म शरीर लेकर जाता है और वह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके निर्माणका कारण होता है। और जब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक क्षेत्रावगाही होकर एकमकसा हो जाता है तो यही पौद्गलिक रूप इस जीवको दृष्टिबन्धन मे बांधे रहता है। वह सूक्ष्म शरीर क्या है ? यह कार्माण शरीर। कार्माण शरीर किसी स्थूल शरीरके निष्पादन करनेके लिए बडा निकट निमित्त बनता है। किसी जगह कोई बीज पडा है गेहूँ इत्यादि का या रजवीर्यका, उसे जीवके शरीर- रूप कोई बना ले, यह सब कार्माण शरीरकी विचित्रता है। गेहूँका सूखा दाना है, यह वर्तमानमे बिल्कुल अचित्त हैं, उसमे जीव कतई नही हैं। जो यह प्रसिद्ध है कि साबूतदाना जीवका योनिभूत सचित्त है, उसको पीसे बिना नहीं खाते तो जीवकी योनि भूत तो है मगर स्वय अभी यह निर्जीव है। गेहूँके दाने से छूटा हुआ जीव नहीं है। वह तो अभी ऐसा अचित्त है जैसे ककड पत्थर। फर्क यह होगा कि ककड पत्थर गेहूके अकुरमे योनिभूत नही है और गेहूँ दाना योनिभूत है।

सूखे गेहूँ मे कोई एकेन्द्रिय जीव कुकरके बैठा हुआ हो और खुद मिट्टी पानीका संयोग पाकर उठ खडा होता हो ऐसा नही है। इन गेहूँके दानोंमें उस समय कोई भी जीव नही है। वे दाने सूखे हुए अचित्त हैं। यह विशेष बात जरूर है कि वे अकुरके योनि भूत हैं। जब जीव अपने सूक्ष्म शरीरको लिए हुए उन योनिभूत पुद्गल पदार्थपर पहुचता है तब वह स्थूल शरीरका कारण कैसे बन जाता है ? इसका भौतिकविज्ञानने निर्णय नहीं कर सकते। यह शुद्ध ज्ञानदेद्वारा ही निर्णयमें आता है। यह निमित्त-नैमित्तिक भावोकी युक्तियोंसे गम्य है। पदार्थ सब अपने-अपने स्वरूपमे हैं तिसपर भी यह निमित्तनैमित्तिक भाव भी उसी तरह अबाध रूपसे चलता रहता है। यह सम-झलो कि पदार्थोंमे परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो चल रहे हैं किन्तु कर्तृकर्म-भाव कतई नही है। इस तरह ये सब पर्यायें जीवोंके कार्यके फल हैं, यह इस गाथामें कहा जा रहा है।

विभाव पर्यायोमे परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है, कर्तृकर्मभाव नहीं— जीवोंका वास्तविक कार्य तो चैतन्यात्मक है, प्रतिभासात्मक है, परन्तु उस कार्यके साथ जो मोह लगा है उस मोहके कारण इसकी यह क्रिया विक्रिया कहलाने लगती है। आत्माका काम केवल देखना जानना है। जो देखने जाननेके साथ मोह लगा है उसकी यह जो परिणति कहलाती है वह विकारपरिणति कहलाती है। सो जब जीवकी विकारपरिणति होती है तो उसका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाएँ स्वय कर्मरूप परिणम जाती हैं। जीव कर्मको जबरदस्ती नहीं परिणमाता है और कर्म भी जीवको जबरदस्ती कुछ नही परिणमाते। कर्म अपनेमें अपने कामको करता है और जीव अपनेमे अपने कामको करता है। जैसे हाथका निमित्त पाकर भीटमें यह छाया पड रही है, जैसे जैसे हाथ हिल रहा है वैसे वैसे पृथ्वीपर भी छायाका परि-णमन चल रहा है। हाथ उस छायामें कुछ नही करता है। हाथ जो कुछ कर रहा है वह अपनेमें कर रहा है। हाथ अपनेमे ही हिलता है, और पृथ्वी भी इस हाथ का कुछ नही कर रही है पर ऐसा ही सहज निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जिस प्रकार यह सन्निधिमें आया हुआ यह हाथ मिलता है उसी प्रकार भीटका स्कघ स्वयं छायारूप परिणम जाता है। भीट हाथका कुछ नही करता। और हाथ भीटका कुछ नही करता। पदार्थमें परस्पर कर्तृकर्म भाव रच भी नहीं है पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो वहाँ पूरा चल रहा है कि जीवके विभावका निमित्त पाकर पुद्गलको कार्माणवर्गणावोंमें कर्मत्व आया। और कर्मोके उदयका निमित्त पाकर ये मनुष्या-दिक पर्यायें बन गयीं।

मनुष्यादिक जो पर्यायें हैं वे कर्मके कार्य हैं, क्योकि मनुष्यादिक पर्यायोंमे निमित्त कर्मोंका उदय है सो यहाँ प्रश्न होता है कि मनुष्यादिक पर्यायें कर्मोंके कार्य

कैसे हो गये ? इसके उत्तरमें कहते है कि वे मनुष्यादिक पर्यायें जो की गयी हैं सो जीवके स्वभावको दवाकर की गयी हैं। सो स्पष्ट समझमें आ रहा है कि इन पर्यायों के रहते हुये जीवका स्वभाव यह ढक रहा है। यह पशु पक्षी वन गया तो क्या आगा है कि पशुपक्षी पर्यायभी वन कर रहे और जीवका जो असली स्वभाव है,वह भी पूरा प्रकट रहे; ऐसा तो नही देखा जाता है। इन पर्यायोमें जीव भ्रमण कर रहा है तो जीवका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। सो यह सव किस कारणसे हुआ ? सो कहते हैं कि कर्मोके स्वभावने, कर्मोकी प्रकृतिसे जीवका स्वभाव तो दव गया और मनुष्य तिर्यञ्च इत्यादि पर्यायें व्यक्त हो गई इसलिये ये कर्मके कार्य कहे जाते हैं। यदि ये भी मत्र जीव के कर्म हो तो फिर ये कभी न हटाये जा सकेंगे।

दृष्टान्तपूर्वक उपादान, प्रभाव व निमित्तका विवेचन—इसमें प्रदीपका दृष्टान्त आता है कि जैसे दीपक ज्योतिके स्वभावसे जल रहा है ना ? और तैलके स्वभावको दवाकर जल रहा है। तो वह दीपक ज्योतिका कार्य हुआ; याने दीपकमे किसी तेलकी एक-एक वूंद पहुँच कर वहांपर दीपक वना है। तैल न हो, तो दीपक कैसे जले ? यदि सूखी वत्ती जला दें तो थोडी ही देरको वह दीपक वना, जो कुछ भी हो; वह अपने स्वभावको वदलकर दीपक वना है, तैल अपने स्वभावसे नही रह सका। तैल तो चिकना है, पर वस्तुसे सयोग करलो, शरीरमे लगालो, वह सारा तैल यहाँ तिरोभूत हो गया। अब वह तैलनामक पदार्थ अपने स्वभावको छोडकर दीपकके रूपमे उपस्थित हुआ। तो पीछे जो दीपकका कार्य है उसे कहेंगे ज्योतिका कार्य। इस ज्योतिस्वभावने क्या किया कि तैलके स्वभावको तो तिरोभूत कर दिया और प्रदीप वना लिया।

जिस प्रकारसे दीपक ज्योतिका कार्य है इसी प्रकार पशु पक्षी मनुष्यादिक पर्यायें कर्मके कार्य हैं, क्योंकि कर्मके स्वभावसे वह किया गया है। इस कारण यह सारा पर्याय कर्मका कार्य समझिये। तो अव ये पर्याय तो हुये कर्मके कार्य और पुद्गल कर्म हुए जीवके विभावक्रियाके कार्य। सो इस प्रकार यह सब जग जाल ये सब जीव लौकिकजीवोकी क्रियाके खेल हैं। जैसे हम दुःखी होते हैं तो अपनी करतूतसे दुःखी होते हैं। वैसे ही यह सोचना चाहिए कि यदि कोई दुःखी है, तो वह अपनी ही त्रुटिसे दुःखी हैं, दूसरोकी त्रुटिसे दूसरोंमे दुःख हो ही नही सकते हैं। जो उसे क्लेश हैं वे उसकी त्रुटिसे हैं और वह त्रुटि क्या है कि हम ज्ञानको सही नही रख सकते हैं। हम ज्ञानको सही-सही रख ही नही पाते हैं और जो वुद्धि वनी है उसे सही समझते हैं। जो मैं सोचता हूँ वही सही है। गलतका तो गलत ज्ञान है ऐसा ज्ञान ही नहीं हो सकता है। त्रुटिमें तो त्रुटि मालूम ही नहीं होती। यह सबसे बडी त्रुटि होती है कि त्रुटि को त्रुटि न मालूम कर सके। यही सवसे वड़ा कष्ट है।

त्रुटि और महात्रुटि—हम यह गलत रूपमें कह रहे हैं ऐसा बोध हो तो इसमे तो कुछ ज्ञान जग रहा है कि ये गल्ती की सब बातें है। भैया, मोहमे अपनी गल्ती किसीको नही मालूम होती। यदि ज्ञान हो तो गल्ती समझमे आ सकती है। सो जैसे यह दुःख तुम्हारे ही विकारसे होता है वैसे ही वडा ववाल झगडा इत्यादि भी सव अपनी ही गल्तीसे होते हैं अपने ही विकारसे होते है। वैसे ही समझो जीवका मनुष्यादिक पर्यायोंमे वँध जाना, पशुपक्षी, कीडे मकोडे इत्यादिके रूपमे जीवका वँध जाना यह जो सवसे वडा सकट है, यह भी जीवके विकारोंसे ही होता है। अपनी ही त्रुटिसे यह महान सकट हो जाता है। वाहरकी त्रुटिसे अपना सकट मानना अज्ञान है। इस अज्ञानमे रहकर सन्मार्ग, शान्तिका मार्ग नही प्राप्त हो सकता है। यह जितना भी जगजाल है वह सव जगजाल इस जीवकी क्रियाका फल है। भूलमे जीवके ही काय इस प्रकारके होते हैं जिसके कारण यह जगजाल वँध गया है। जीवोका विकार भी, जिसके कारण यह जगजाल है, वह इस जीवके पूर्वके वँधे हुए जो कर्म थे उनके उदयका निमित्त पाकर हुआ। यदि विकार उपादानमे निमित्त पाये विना हो जाय तो वह स्वभावपरिणमन कहलायेगा। स्वभावपरिणमन ही वह कहलाता है जो किसी परका निमित्त पाये विना स्वयं अपने स्वरसमे वने। स्वभावपरिणमन क्या राग द्वेष मोह है? नही ये सव विभाव परिणमन है। विभाव परिणमन वधे हुए कर्मोंके उदयके निमित्तसे हुए और वे कर्म जीवके विकारके निमित्तसे हुए थे।

दृष्टान्तपूर्वक जीव और जीवके परस्परया अनादिवंधत्व की सिद्धि—इस तरह जीवके विकारमे और कर्मके वधादिमे परस्परका निमित्तनैमित्तिक सम्वन्ध अनादिसे चला आरहा है। जैसे पुत्र और पिताका सम्वन्ध अनादिसे चला आ रहा है। किसीको जाना कि यह फलानेका पुत्र है। क्या वह पिता किसीका पुत्र नही है? वह भी किसीका पुत्र है। इसी तरहसे दृष्टि लगाते-जावो तो क्या कोई अन्तमें ऐसा मिलेगा जिसका कोई पिता न हो? कोई नही ऐसा मिलेगा। जैसे वीजसे वृक्ष हुआ और यह वृक्ष कैसे हुआ? उत्तर-वीजसे। यह वीज भी कहासे हुआ? जिस वीजसे यह पेड हुआ? उस वीजसे पहले कोई वृक्ष रहा होगा। इसी तरह अनेक सम्वन्ध वताते जाइये। क्या कोई ऐसा वृक्ष मिलेगा जिसके पहिले कोई वीज न रहा हो? क्या कोई ऐसा वीज मिलेगा जो विना वृक्षके हो गया हो? कोई नहीं मिलेगा।

इससे सुनिश्चित हुआ कि पदार्थ जितने भी हैं वे स्वय सत् हैं, किसी दूसरेसे दूसरे सत् नही वन गये हैं। सत् तो अनादिसे हैं, जो भी पदार्थ हैं वे अनादिसे हैं। उनके परस्पर के यथासम्भव सम्वन्ध भी परम्परया अनादिसे हैं। सम्वन्धके अनादिपनेमे तव शका हो सकती है जव पदार्थ अनादि न हो। जव सभी सत् अनादिसे हैं तो उनका परिणमन भी अनादिसे है।

उपादानकी अनिवार्यता—कुछ लौकिक जन ऐसा भी कहते हैं कि पहले कुछ नही था, केवल जल ही जल था, उससे मछली हुई। तो मान लिया कि पहले जल ही जल था और कल्पना करलो कि कोई कला अगर ऐसी किसीमे वन सके कि उस जल उपादानको मछलीरूपमे तैयार करदें, कर सके तो करदें, पर उस मछलीका उपादान कुछ हुआ तो, जल तो था। अथवा जल नही था तो और कुछ था। कुछ था तो कुछ हुआ है, कुछ भी न हो और कोई सत् वन जाय ऐसा तो नही होता। जो था वही तो सत् है। जो सत् है वह किसी भी रूपमे परिणमे, परिणमेगा अवश्य। अव वह सत् किस किस रूपसे परिणमता है। इसकी वैज्ञानिक पद्धतिमे जानकारी करलें। जैसे सत् अनादि सिद्ध स्वत है इसी प्रकार अन्य अनुकूल पदार्थका निमित्त पाकर पदार्थ किसी न किसी न किसी रूप स्वत परिणम जाते हैं, यह सम्वन्ध भी स्वत है। कैसे पदार्थ का निमित्त पाकर कौन किस रूपमे परिणमते हैं यह सम्वन्ध भी सहज है। जैसे यह किसीने वनाया नही है कि किसी राज्यके अधिकारी मिलकर कानून गढे जिससे ऐसा व्यवहार वने कि प्रजा सुखी रहे ? इसी तरहसे पदार्थोकी व्यवस्था कोई वनावे, ऐसा नही है वह तो स्वय चलती चक्की है। अथवा पदार्थोका जो सम्वन्ध चल रहा है वह किसीके द्वारा गढा नही गया, किसीने इस सम्वन्धका अविष्कार नही किया है क्योकि जैसे पदार्थ स्वय सहज अपने आप सत् हैं वैसेही पदार्थोका ही निमित्त पाकर वे किस किस रूपमे परिणम जाते हैं, यह भी सम्वन्व सहज है किसीने वनाया नही है। प्रथम वात तो यह है कि अगर कानून भी कोई वैठकर वनाये और वह कानून निराधार वनाये तो वह कानून फेल हो जाता है। जिसकी व्यवस्था चल सकती, वही कानून वनाया जाता। तो यह सम्वन्ध वनाया हुआ नही है। यह चल रहा है इसलिए इसको भी अनादि सिद्ध कहते हैं और पदार्थोका सम्वन्ध भी परस्परया अनादिसिद्ध है।

अनादिसम्बद्ध परसयोगके विनाशकी सम्भावना :—अनादिसे जीवोका और कर्मोका परस्पर निमित्तनैमित्तक सम्वन्ध चल रहा है। चल रहा है पर क्या यह सम्वन्ध टूट नहीं सकता। सम्वन्ध तो अनादिसे चल रहा है पर यह सम्वन्ध तोडा जा सकता है। जैसे तिलके दानेमें तेल कवसे भरा हुआ है ? अनादिसे चाहे वह तेल किसी शक्लमे हो पर जवसे तिल है तवसे तैल भरा होता है। ऐसा तो होता नही है कि तिल पहिले वन गया हो और तैल वादमे भरा जाता हो। ऐसा होता है कि जव तिल लग जाता है तभी तैल भी इसमे किसी रूपमे आ जाता है यद्यपि प्रारम्भमें तिलमे तेल मालूम नही पडता किन्तु कितना वडा तिल होने पर उसमे तेल आता है, यह भी तो व्यवस्था नही है। वह तो तिलके दानेका स्वभाव ही है कि वह तैलके स्वभावको लिए है। तिलका दाना तैलमयताको लिए हुए प्रकट होता है। तिलको जव कोल्हूमे पेला जाता है तव तेल उस तिलसे अलग हो जाता है। इसी तरह जीवका

और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है। चले, फिर भी भेद विज्ञानके द्वारा कर्म और जीवको न्यारा न्यारा समझ कर, कर्मके निमित्तसे होने वाले पर्यायोंको भी जीव स्वभावसे न्यारा समझकर जीव यह जीव अपने स्वभावकी ओर झुकता है और निज शुद्ध चैतन्य स्वरूपमे प्रवेश करता है, तो यह कर्म वन्धन स्वयं पृथक् हो जाता है। इससे यह निर्णय हुआ कि जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है तो भी सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे जीवसे कर्म पृथक् हो सकते हैं।

ज्ञानविभूति—सबसे बडा ज्ञान तो यही है, सबसे बडी विभूति तो यह सम्यग्ज्ञान ही है पर यह जीव अपने ज्ञान स्वरूपको भूलकर असार बातोंमे, कुटुम्ब परिवारमे, मित्र शत्रु इत्यादिमे ही दृष्टि लगाकर जिसमे सार कुछ नही, हित कुछ नही, विल्कुल पृथक पदार्थ हैं, उनमे सुखकी आशा लगाये हैं, जिससे अपना स्वभाव तिरोभूत हो गया है। इसीसे तो इसकी प्रभुता विकसित नही हो सकती है। आशाओंसे, लालसाओंसे, वासनाओंसे इनसे अपने ज्ञानको वरवाद कर दिया है। वाह्य पदार्थोंमें ही पडकर यह जीव भिखारी वन गया। किसी भी पर पदार्थसे हित है, कल्याण है ऐसी भावना वनानेसे तो पतन है, किन्तु जीव अपने स्वतत्र स्वरूपको निरखता रहे तो इससे उसका कल्याण है।

जीवके प्रवल ज्योतिर्मय स्वभावके तिरोभूत होनेका कारण—जगतमे ये जितनी भी मनुष्यादिक पर्यायें दृष्टिगोचर होती हैं व ऐसी और भी जो पर्यायें है उन सव पर्यायोमें रहनेवाले जीवोंका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। जीवका स्वभाव तो चैतन्यविकाशका है। जीवकी जानने देखनेकी ऐसी शक्ति है, कि इससे जितना भी जो कुछ सत् है सवको यह जान जाय। और, सवको यह जान जाता है तो उसे कहते हैं स्वभावका पूरा विकाश हो गया। स्वभावके पूरे विकाशका ही नाम प्रभु है। सो इन पर्यायोंमे जो जीवके स्वभावका अभिभव हो गया है, वह क्यो हो गया है? अव इसका निर्धारण करते हैं। पहले तो यह कहा था कि जीवकी क्रियाके निमित्तसे वद्ध हुए पुद्गल कर्मोंके उदयके निमित्तसे हुई मनुष्यादिक पर्यायोमे जो जीवका स्वभाव दव गया है वह कर्मके कारण दव गया है। यह निमित्त दृष्टिकी प्रधानतासे वर्णन हैं, क्योकि कर्मके उदयके निमित्त विना जीवके स्वभावका अभिभव नही होता। अव तटस्थ वुद्धिसे दोनो ओर ख्याल रखते हुए यह निर्धारण करते है कि इन मनुष्यादिक पर्यायोमें जो जीवके स्वभावका तिरोभाव होता है वह किस कारणसे होता है?

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णामकम्मणिव्वत्ता।
ण हि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि ॥११८॥

जीवस्वभावके पूर्ण तिरोभावकी असभावना— ये नर नारक तिर्यञ्च और देव

इत्यादि जो जीव हैं अथवा पर्यायें हैं ये नाम कर्मके द्वारा रचे गये हैं। सो इतने मात्र मे भी वहाँ पर जीवके स्वभावका पूर्ण तिरोभाव नहीं होता है। अर्थात् नामकर्मके द्वारा रचे गए सारे जग जाल भी होते हैं और इन जगजालोंमे भी जीव बुरी तरह फसा हुआ है तिस पर भी जीवका स्वभाव जो ज्ञान दर्शन है वह पूर्णतया नष्ट नहीं होता, वह भी जीवके ज्ञान और दर्शनका विकाश कुछ न कुछ पाया ही जाता है। और यहाँ तक कि सबसे निम्न श्रेणीके जीव हैं लब्ध्यपर्याप्तक, उनमे भी ज्ञान और दर्शनका प्रकाश बना रहता है। उस प्रकाशमे कुछ सीमा तक का विकाश ऐसा है जो सदा निरावरण रहता है। अर्थात् उसको ढकने वाला कोई कर्म नहीं है। निश्चयसे जीवके स्वभावका जहाँ जितना तिरोभाव है वह कर्मके द्वारा नहीं होता। ज्ञान दर्शनकी वह रुकावट वास्तवमे जीवके ही विकार परिणमनके कारण होती है।

दृष्टान्तपूर्वक जीवस्वभावके तिरोभाव होनेके कारणकी सिद्धि —यहाँ एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे माणिक होती है, हीरा होता है ना, उसका बडा तेज होता है वह स्वच्छ उज्ज्वल होता है, स्वर्णकी अगूठीमे यदि बाँध दिया जाय, जैसे कि लोग अगूठीमे हीरा जडाया करते हैं, ऐसी अगूठीमे हीरा जडा लिया जाय तो हीराके जडा लेनेपर भी हीराके तेजका पूरा तिरोभाव तो नहीं हुआ। इसी तरह जीव कर्मोदयका निमित्त पाकर मनुष्यादिक पर्यायोंमे आ गया है और वहाँ यह भी नजर आ रहा है कि इसका ज्ञान दर्शनका विकाश अधूरा है, उसका पूर्ण विकाश नहीं हो रहा है। सो यह जो विकाश रुका हुआ है वह जीवकी अपनी गल्तीसे रुका हुआ है। अपने स्वभावकी पहिचान नहीं है और उस पर इसका दृढ विश्वास नहीं है तथा इस ओर उसका पूर्ण उपयोग नहीं है तो इसका विकास रुका हुआ है।

आशा विकासबाधा—अब यही देखलो किसी चीजके जाननेके लिए जब अन्दाजा करना चाहते हैं कि इस मामलेमे आगे क्या होगा तो जानकारीकी उत्सुकतामे आप हम परेशान हो जाते हैं कि अब क्या होगा? यह जाननेकी उत्सुकता राग द्वेपवश होती है, राग द्वेष मोहके कारण उस उत्सुकतामे परेशानी रहती है। इससे जानना भी नहीं हो पाता है और न परेशानी ही मिट पाती है। यदि जानने की उत्सुकता न रहे अर्थात् राग द्वेष न रहे, किसी भी पर वस्तुके परिणमनमे अपना कोई प्रयोजन न रहे तो परेशानी समाप्त हो जायगी। यदि इस तरहकी परेशानी न रहे और यह अपने विश्राममे बना रहे तो इस सहज ज्ञानकी परिणतिका फल यह होगा कि इन जाननेकी थोडीसी बातोंकी तो बात क्या, समस्त विश्वका ज्ञान हो जायगा। यह आशापरिणमन ज्ञानविकासका प्रबल बाधक है।

ज्ञानमे लौकिक प्रयोजनकी आशासे विकासके असम्भव—इस प्रसगमे साही लोग

यह सोचेंगेकि हमे उस विश्वके ज्ञानसे क्या मतलव है जिनमे जानकर कुछ मतलबकी वात भी न की जाय। ये तो उस ज्ञानको महत्त्व देते हैं जिस ज्ञानको करके अपनी कल्पनाओके मुताविक विषय कषायोका मतलव ऐंठ सकें। इन प्रयोजनोमे रहकर और उस उत्सुकतामे रहकर विकाश कर सकना- प्रगति कर सकना असम्भव है। जीवके अनन्त आनन्दका अभ्युदय ज्ञानके पूर्ण विकासके साथ है। जो इन पर्यायोंमे रहते हुए भी जीवोका स्वभाव पूण नही हो रहा है, वे जीव अपने ही विकार परिणमन से आसक्त हो कर अविकशित है। दूसरे कोई जीव अथवा कर्मोके उदय इन जीवोके स्वभावको नही नष्ट कर-पाते हैं, न दवा पाते हैं, किन्तु यह अपना विकार परिणमन करके स्वय दव गया है।

शक्तिहीनताके विश्वासमे खुदकी शक्तिहीनता प्राकृतिक—जैसे कोई वीर पुरुष किसी भ्रममे आकर कायर वनकर दव कर शक्तिहीन वन जाता है और अपने कार्यमे सफल नही हो पाता है। इसी तरह प्रभुस्वरूप यह आत्मा भ्रम करके अपने स्वरूपको भुलाकर अपने आप ही अपनेको आनन्दरहित मानकर आनन्दकी आशामे परकी ओर दृष्टि देकर स्वय शक्तिहीन हो रहा है, इसीसे अपने स्वभावका विकास नही कर पा रहा है। विचारनेकी वात है कि घर ता आपका वही है, लोग सव वे ही हैं, कही ऐसा नही कि आधा घटा तक उनका ख्याल न करें तो उनके ऊपर वम गिर जाय। आप उनका विकल्प न करें तो क्या वे नष्ट हो जावेंगे ? ऐसा तो नही है। जव ऐसा नहीं है तो हिम्मत कर लीजिए कि लो, अव इस प्रकरणमे मुझे कुछ नही सोचना है, कुछ भी विकल्प नही करना है। यों कुछ समय भी निर्विकल्प विश्राममे व्यतीत हो जाय तो अपने आपको विलक्षण आत्मीय आनन्दका अनुभव हो हो जायगा। इतना साहस यह जीव नही करता है प्रत्युत विकल्प वना कर निरन्तर सोचता रहता है, यही एक खेदकी वात है।

जव प्रवाहका दृष्टान्त व स्वभावाभिभवमे उपादान व निमित्त—एक द्रव्यके द्वारा दूसरे द्रव्यमे कुछ नही किया जाता, किन्तु इस जीवने स्वय मोह वनाकर अपना विकार करके अपनी ही क्रियासे परिणम कर अपने स्वभावको तिरोहित कर दिया है। इसके लिए एक दृष्टान्त जल प्रवाहका दिया जा रहा है। जैसे जव जल वरसता है तो वह जल प्रवाह कितना ही तो नीम आदिक कटु रस वाले पेडोमे पहुँचता है और कितना ही जल समूह चन्दन आदिके वृक्षोंमे पहुँचता है उनके पास पहुँच कर जल अपना स्वभाव तिरोहित कर देता है। अथवा कुँओसे रहट द्वारा जो पानी डाला जाता है तो कुछ पानी मिर्चके पेडोमे पहुँचता है और कुछ पानी केले आदिके पेडोमे पहुँचता है। कही वह पहुँचे वह जल अपने स्वभावको तिरोहित कर देता है। जलका स्वभाव क्या था कि वहना और उसका स्वाद रहना। जलमे जो ये दो वाते थी वे अव खतम

हो गई। नीम आदिक पेडोंमें वह पानी पहुंचा तो पानीका जो स्कन्ध है वह स्कन्ध पेडोंरूप परिणमने लगता है। और पेडोंका कुछ अंग बन जाता है, जिसको स्पष्ट तो नहीं बता सकने पर युक्तिसे समझते हैं। अब पानीका जो बहनेका स्वभाव, है और स्वादिष्ट लगनेका स्वभाव था वह कहाँ रहा ?

कोई कहे कि वृक्षने उसके स्वभावको दबा दिया सो ज्ञान दृष्टि से देखो तो वृक्षोंने जलके स्वभाव को नहीं दबा दिया किन्तु जल स्वयं वृक्षोंका समागम पाकर अपने बहने और स्वादिष्ट लगनेके स्वभावको खो बैठा। सो अब पानीका न तो वह बहनेका प्रदेश रहा जैसाकि फैला हुआ था और न वह स्वाद ही रहा जो पानीके स्वभावमें पहले था। इसी प्रकार आत्मासी इन पर्यायोंमें पहुंचकर कार्माण वर्गणावोंमें बँधकर अपने सारे प्रदेशोंसे और अपने भावोंसे अपने स्वभावको खो बैठा है।

भैया, कर्मोंने जीवके स्वभावको नहीं ढका, क्योंकि ऐसा नहीं है कि शरीरके भीतर जीवका ज्ञान तो पूरा हो और कर्मोंने या शरीरके चमडेने इस ज्ञानको ढक दिया हो। ज्ञानका आवरण तो रागद्वेष विकल्पोंके कारण ही हो गया है।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानकी अवाधगतिकी सिद्धि—ज्ञान जब विकसित है तो उसका ढकनेवाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं हो सकता। जैसे आपके घरके भीतरके कोनेमें तिजोरी रखी है उसके अन्दर एक मजबूत ट्रन्क रखा है, उसके अन्दर एक डिब्बी है और उस डिब्बीके अन्दर कपडेमें बधा हुआ एक रत्न रखा है या अन्य कोई गहना रखा है तो यहाँ बैठे बैठे ही उस गहनेको कितना जल्दी आप जान जावेगे। उसके जाननेमें कुछ भी तो अटक नहीं होती। घरके किवाड, तिजोरी, ट्रंक आदिसे क्या यह ज्ञान अटक जाता है ? नहीं अटकता। क्या वे सब ज्ञानको रोकेंगे या धक्का देंगे। ज्ञान दरवाजेके बाहर बैठा हो और उसे किवाड घुसने न देते हों, ऐसा तो नहीं है। कोई भी अन्य पदार्थ ज्ञानका निरोध नहीं कर सकते।

परपरिणति ज्ञानविकासकी बाधिका—परकी परिणतिमें ज्ञानका स्वभाव प्रकट नहीं है। यह जीव स्वय ही श्रम करके अपनी दृष्टि को बाहर में डुलाता है तो इसका जो अतरग वैभव है वह सारा वैभव तिरोभूत हो जाता है। इसमें ज्ञान व आनन्द सही स्थितिमें नहीं रहता। पर वस्तुओंका लालच करना तो अपने आपको बरबादीमें डालना है। इतना बडा जो आपका नुकसान है उसको कर्मोंने नहीं किया, शरीरने नहीं किया, किन्हीं पर वस्तुओंने नहीं किया, किन्तु यह जीव ही स्वय अशुद्ध योग्यता वाला है सो किसी पर वस्तुका आश्रय करके कर्मोदयका निमित्त पाकर स्वयं अपने आप अपनी ही परिणतिमें बरबाद हो रहा है। और उस स्वभावको प्रकट नहीं कर रहा है। ज्ञान स्वभाव आत्माका सर्वस्व चमत्कार है।

शक्य पुरुषार्थ—देखो भैया, अब तो यही एक पुरुषार्थकी बात है कि ऐसे पर्यायोका बन्धन होते हुये भी कर्मो द्वारा रचे हुए शरीरमे रहते हुए भी, ऐसे अनेक निमित्त प्रसगमे भी जीवका स्वतत्र स्वरूप नजर आये और जीवकी जो त्रुटि हो रही है उसमे भी जीवकी करामात नजर आये, यह है ज्ञानका अनोखा चमत्कार। यह भी देख रहे हैं कि परका निमित्त पाकर यहाँ कितने बवाल हुए हैं और यह भी स्पष्ट दीख रहा है कि यह बवाल जीवकी ही किसी भूलसे हुआ है। किसी दूसरेने बवाल नही मचाया। इन प्रसगोंसे हमे आत्मदृष्टिकी शिक्षा मिलती है। निमित्तदृष्टिसे यह शिक्षा मिली कि मेरा स्वभाव तो निश्चल है परन्तु यह जो चलपना उत्पन्न हुआ है वह उपादानकी अयोग्यतासे अर्थात् विभावयोग्यतासे निमित्त पाकर हुआ है। इन अपने स्वभावको देखें तो ये निम्न चालें सब फेल हो जावेंगी। और उपादानदृष्टिमे देखें तो वहाँ कोई दूसरा निमित्त या आश्रय ही नही नजर आवेगा। यदि परका आलम्बन नही लिया जाता तो परका आलम्बन न होनेमे अपने मार्गका प्रकाश स्वयमेव मिल जाता है।

वस्तुस्वरूपका ज्ञान नयोंके विज्ञान विना नहीं हो पाता है इसी कारण तत्त्वके सम्बन्धमे अनेक प्रकारके विवाद हो जाते हैं। यह निज आत्म तत्त्व क्या कूटस्थ अपरिणामी है या क्षण क्षणमे नष्ट होता रहता है? इसी सम्बन्धमे अब यहाँ बतलावेंगे कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है फिर भी पर्यायोंके रूपसे अनवस्थित है।

जायदि णेव ण णस्सदि खणभगसमुब्भवे जणे कोई।
जो हि भवो सो विलयो सभवविलयत्ति ते णाणा ॥११९॥

कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो नया बनता हो या मिटता हो अर्थात् न तो कोई उत्पन्न होता है और न कोई पदार्थ नष्ट होता है। जो सत् है वह हमेशासे है और हमेशा तक रहेगा। वैज्ञानिक लोग भी यह बात बतलाते हैं कि जो है वह सदासे है और सदातक रहेगा, जो है उसका अभाव नही होता। प्रत्येक पदार्थ द्रव्यत्वसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं। और ऐसा भी नहो है कि कुछ भी न हो और बन जाय तथा ऐसा भी नहीं है कि कुछ है और बिल्कुल न रहे। वैसे तो यहाँ भी आप लोग देख रहे हैं कि कोई चीज है तो क्या वह बिल्कुल उड जाती है? एक लकडीमे आग लग जानेसे खाक हो गई तो कुछ तो धुँआ रूपमे फैल गई और कुछ गरम रूपमे सूक्ष्म स्कन्ध होकर साधारण सन्निधिमे फैल गई, कुछ भस्म रूपमे रह गयी और कुछ वह भी हवामे उड गई, तो उस जगह कुछ खास चीज बाहर देखनेको नही मिली तिस पर भी लकडीमे जितना सत् था वह सबका सब है। चाहे वह आसमानमे धुँआरूपमे उड गया हो, चाहे पकडमे न आ सके, चाहे देखनेमे न आ सके, फिरभी वह सबका

सब मन् है ही। इससे बढकर और लोक को क्या कहेंगे। यह तो प्रकट ही समझमें आ रहा है।

दृष्टान्त पूर्वक पदार्थके उत्पाद-व्ययध्रौव्ययुक्तपनेकी सिद्धि :—जैसे घड़ा है, उसे फोड दो फिर भी कुछ है। जो है वह सदा है और जो नही है वह आता नही है। इस कारण द्रव्यत्वदृष्टिसे देखें तो पर पदार्थ अनादि अनन्त ध्रुव हैं। अब जीवोंके बारेमें देख लो, वास्तविक जीव पदार्थ जो भी हैं, जिनमे अशुद्ध दशामे सुख दु ख विकल्प, सकल्प तरगें व शुद्ध दशामे शुद्ध ज्ञान तरगें हुआ करती हैं। वे सब जीव अनादिसे हैं और अनन्तकाल तक हैं, तिसपर भी जीव जब मनुष्य, देव, तिर्यञ्च, नारकी जिस भी रूप इस लोक मे रहते हैं वे इस रूपसे तो क्षण-क्षणमे नये-नये बनते हैं और पुराने-पुराने पर्यायोंसे विलीन होते है। अब देव बन गए, देव मिटकर मनुष्य बन गए, मनुष्य मिटकर पशु बन गए। सो द्रव्यत्व दृष्टिसे सर्वत्र वही जीव है पर पर्याय दृष्टिसे वह प्रत्येक समय नये-नये पर्यायोंमे उत्पन्न होता है और पूर्व-पूर्व पर्यायो मे विलीन होता है।

द्रव्यसे एकत्व व पर्यायसे अनेकत्व—भैया, पदार्थकी यह विशेषता है कि पदार्थ शाश्वत है, किन्तु प्रतिक्षण परिणमनशील हैं। उनकी सत्ता रहते हुए भी वे पर्यायोंमे बदलते रहते हैं। यह बात विवादकी नही है, यह खडित नही किया जा सकता है किन्तु उत्पन्न और विलीन होनेके बावजूद भी हम उनमे अनेकत्व और एकत्व देखा करते है। अर्थात् जीवोंमे हम ऐसा पाते हैं कि वही जीव है, देवमे आ गया तो वही जीव है और मनुष्यमे आ गया तो वही जीव है। परन्तु उनको शक्लोंमे, पर्यायोंमे, अवस्थाओंमे दृष्टि देते है तो वही नही है, वे भिन्न भिन्न बातें हो गई।

जीवके नित्यानित्यत्व होनेपर ही व्रतादिकी सार्थकता—देखो भैया, तभी तो ये व्रत तप आदि करना सार्थक है, क्योंकि इन दोनो पक्षोंमे यदि किसी एक पक्षका एकान्त कर लिया जाय तो व्रत तप आदि सब निरर्थक हो जायेंगे। ये निरर्थक यो बन जायेंगे कि जीव अपरिणामी है, तब तो परिणमन भी नही होगा वे तो शाश्वत ध्रुव हैं अपरिणामीप हैं, बदलनेवाले नहीं हैं। तब तपसे तो कुछ टसका मस होना नहीं है। तप सयम किसलिए किया जाय? यदि यह कहो कि वह एक कुछ नही है, प्रत्येक समय नवीन-नवीन पदार्थ होते है, नवीन-नवीन जीव आते है, एक तो रहता ही नहीं है, ऐसा कहो तो तप संयम किसलिए करते हो? वे तो नये-नये आ रहे हैं सयम किया तो कष्ट तुम भोगोगे और नये-नये जीव आ गये तो मजा वे लूटेंगे। यदि उत्पाद विनाशका एकान्त करेंगे, तो तप सयम उनके यहाँ निरर्थक हो गए।

सो न तो ध्रुव एकान्त करनेपर साधन बनता है और न क्षणिक एकान्त करनेपर कोई व्यवस्था बनती है।

अवस्थितता व अनवस्थितताके होनेपर ही पदार्थका अस्तित्व—यह द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपमे अनवस्थित है। अब इन दोनो बातोंका क्रमसे वर्णन करते हैं। ये दो बातें कौनसी है? पहिली बात तो यह है कि उत्पत्ति और विनाशमे एकता रहती है, दूसरी बात यह है कि उत्पत्ति और विनाशका उनमे नानापन रहता है। जैसे एक दृष्टान्त लो-घडा और कुण्डका। जैसे घडा बने और घडेको इस तरहसे फोड दें कि उसके ऊपरका आधा भाग खतम हो जाय और कुंड सा रह जाय, जिसमे कि पानी भर देते हैं और पक्षीलोग उस कुंडपर आकर बैठते हैं। तो यह बतलावो कि घडा तो नष्ट हुआ और कुंड बन गया, तो इन दोनोमे एकत्व है क्या? याने जो घडा है सोई कुंड है अथवा जो मिट्टी घडेके बनानेके लिए हैं, घडा बनाते समय पहिले पहल जो बनता हैं और बादमे छापकर, जोट कर बनता हैं। तो वह पूर्ण कुण्ड अवस्था हो गई। अब यह बतलावो कि जो घडा है सोई कुंड है क्या? कुंड का काम अलग है, और घडेका काम अलग है। आपका प्रयोजन भी कुंडका अलग और घडे का अलग है। कोई घडा खरीदने जाय तो कुंड खरीद ले जाय और कुंड खरीदने जाय तो घडा खरीद ले जाय, यह नही देखा जाता है। दोनो अलग-अलग चीजें हैं, भिन्न-भिन्न हैं मगर दोनोकी आधारभूत मिट्टी है। जिस मिट्टीसे घडेका रूप तैयार हो जाता उसी मिट्टीसे कुंडका रूप तैयार हो जाता। जब दृष्टि शुद्ध डालते हैं तब वे एक जँचते हैं। एकत्वकी दृष्टि रखनेसे याने मिट्टीकी निगाह रखने से यह प्रतीत होता है कि जो उत्पन्न होता है वही विलीन होता है।

उत्पादव्यय ध्रौव्यका निर्देशन—अब आगे की बात देखो, मिट्टीमे ही कोई पर्याय उत्पन्न होती है और मिट्टीमे ही कोई पर्याय विलीन होती है। तो जो उत्पन्न होता है वह अलग है और जो विलीन होता है वह अलग है। मगर उन दोनोका आधारभूत जो मिट्टी है वह तो ध्रुव है। जब पर्याय दृष्टिसे देखो तब उत्पाद व्यय हुआ। ये दृष्टियां तो की हैं किन्तु यह जो दृष्टान्त दिया है वह मोटा दृष्टान्त है क्योंकि मिट्टी द्रव्यरूप नही है। वह भी (पर्याय है, पर समझनेकी सीमामे मिट्टीको द्रव्य मानलें और घडेको पर्याय मानलें और समझकर असलियत की ओर बढे।

इसी तरह जीव व उसकी पर्यायको देखेंकि जीव देव आदिक पर्यायोंसे तो उत्पन्न होता है और मनुष्यादिक पर्याय रूपमे विलीन होता है। याने देव बन गया है और मनुष्य मर गया है। ऐसी अवस्थामे यदि एक जीवपर ही दृष्टि दें तो उत्पन्न होता हैं, तो वही है और विलीन होता है तो वही है। क्योंकि पर्यायका आधारभूत जो

जीव द्रव्य है वह तो ध्रुव है ना ? उस दृष्टिमें यह पदार्थ ध्रौव्यवान हुआ और अवस्थाकी दृष्टिमे उत्पाद व्यय वाला हुआ। यह जीवकी बात नही, समस्त पदार्थोंका ऐसा ही स्वरूप है कि वे हैं और परिणमते रहते हैं।

वस्तुस्वरूपका परिचय प्राप्त किये बिना विश्राम पाना असम्भव—भैया, वस्तु स्वरूपको अपने उपयोगमे लो और देखो यह अपने आपमे है और परिणमता रहता है, इतना ही उसका काम है, इतनी ही उसकी दुनिया है, इससे बाहर उसका कोई वास्ता नहीं है। बाहर तो अन्य-अन्य पदार्थ हैं, सो वे भी तो अपने आपके स्वरूपमे हैं और परिणमते रहते हैं। उनमे मेरा सम्बन्ध नहीं है। वह सब तो अपनी कल्पनाओंकी जानकारीका विषय बन जाता है। किन्तु मोहकी प्रेरणासे बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि फँस जाती है। वस्तुत मैं हूँ और परिणमता हूँ, इतनी ही मेरी दुनिया है, इसके आगे मेरा कहीं कुछ नही है, इस अध्यात्म दृष्टिमे देखनेपर यह सिद्ध होता है कि मैं शाश्वत चैतन्य पदार्थ हूँ, और प्रतिक्षण परिणमता रहता हूँ। सो मैं कुछ कर पाता हूँ तो अपने ही चैतन्यात्मक परिणमनको कर पाता हूँ। दूसरी बातों को मैं नहीं कर सकता। इस निज चैतन्यात्मक परिणमनको मैं करता हूँ। किसके द्वारा करता हूँ ? अपने द्वारा यह अपनी क्रियाका फल भी खुद प्राप्त कर लेता है।

रागपरिणमनका कर्तव्य—अब एक रागको ही दृष्टान्तमे ले लो। इस रागको कर कौन रहा है ? यह मैं खुद ही तो राग कर रहा हूँ। मैं किसको कर रहा हूँ ? रागात्मक निजको कर रहा हूँ। मेरे मे जो राग परिणमन होता है वह मेरे द्वारा होता है। कोई दूसरा मेरेमे रागपरिणमन नहीं करता, मेरेमे रागपरिणमन मैं ही तो करता हूँ, इसलिए इन रागोंके परिणमनका कर्त्ता मैं ही तो हूँ। दूसरे पदार्थ मेरे रागोके कर्त्ता नही हैं। जो कुछ राग परिणमन मेरेमे हो गया है वह मैंने ही किया है। घरके चार जीवोंको माना है कि इन पर मेरा अधिकार है तो क्या उन चारो जीवोका परिणमन भी वही कर देता है ? अरे उनका परिणमन वे ही करेंगे, कोई दूसरा नहीं करेगा। मैं तो सर्वत्र अपना ही चैतन्यात्मक परिणमन करता हूँ। जब जो मेरे मे आयगा वह अपनेमे ही अपने द्वारा आयगा। अत्र जो किया वह अपने मे ही किया। हम दूसरोमे कुछ कर सकते हैं क्या ? नहीं।

मेरे जो रागात्मक परिणमन है वे मेरे ही परिणतिमे होते है। किसी दूसरेके द्वारा मेरे रागात्मक परिणमन नही होते, क्योंकि सभी पदार्थ हैं और प्रति समय व अपने-अपने मे परिणमते रहते है, किसीको किसी अन्यके कामको न अवकाश है और न कोई किसीका काम कर सकते है। इन रागात्मक परिणमनोंमे क्या लाभ हैं ? इनकी तो अपेक्षा करना ही उचित है।

रागादिक परिणमन करनेके श्रमका फल—इन रागात्मक परिणमनोंके करने से तो आकुलताएँ ही हो जाती हैं। इन रागात्मक परिणमनोका फल आकुलता मिली वह भी हमको ही मिली। तो इन आकुलताओका फल किसको मिला ? अपने को ही तो मिला। जैसे आप किसी पुत्रपर खूब राग करें और पुत्र आपको कुछ न समझे तो जब उन पुत्रोकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर नही है, तो वे तो अपना मौज कर रहे हैं, तुम चाहे जितने रागादिक करलो, उनका फल तुम्हे ही भोगना पडेगा। लडके तो अपने ही मौजमे मस्त हैं, चाहे आप कितने ही दु खी हो रहे हो। सो मेरे जो भी परिणमन होते हैं उनका फल भी मैं ही हू"। यही सिद्ध हुआ कि मैं करता हूं, मेरा मैं ही कर्म हूँ, और मेरा कारण मैं ही हूँ और कर्म भी मैं ही हूँ। यो अपने आपकी आत्माके एकत्व पर दृष्टि जाय, अपने ही आत्माके एकत्वका निश्चय हो तो उसमे समता आ सकती है, शान्ति आ सकती है, धर्म आ सकता है।

एकत्वदर्शन—भैया,धर्मसाधनाके लिए हम क्या करें ? क्या हाथ पैर चलाते रहे ? धर्मके लिए क्या करें ? अपने आपके एकत्वपर निश्चय करो, अर्थात् मैं ही कर्त्ता हूँ, मैं ही कर्मफल हूँ, मैं ही कर्म हूँ, मैं ही कारण हूँ। मेरेमे मेरेसे बाहरका कुछ तत्त्व नही है, ऐसा एकत्वका निश्चय होनेपर पर पदार्थोकी ओर दृष्टि न रहेगी और पर-पदार्थोंका आलम्बन न रहेगा, उसका विकल्प भी न रहेगा। सो आत्माके एकत्वकी साधना प्रवल होती चली जायगी। भैया, तुम्हारे सुखी होनेके लिए यह दृष्टिही अमृत है। इस अमृतका ही पान करके अपनी ऐसी दृष्टि बनाओ कि मैं अकेला हूँ, अपने का ही करने वाला हूँ और अपने ही द्वारा करता हूँ। तथा मेरे करने से जो भी प्रयोजन बन गया, जो भी फल हो गया, वह मुझसे ही हो गया। सो मेरी दुनियाँ, मेरा वैभव, मेरा वस्तुत्व, मेरा स्वरूप मेरेसे बाहर नही है। मेरा तो मैं ही हूँ, जिसने ऐसा समझ लिया तो समझो कि उसने मोक्षका मार्ग प्राप्त कर लिया। चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण करना मिटा लिया।

जीवनकी सफलता—यह नर जीवन बडा अमूल्य है, इसमे विवेक शक्ति प्रबल है, ऐसा नरजीवन यदि आत्म दृष्टि करनेके अवसरमे काम आ गया तो यह नर जन्म सफल है। यदि हम अपने एकत्वमे दृष्टि लगायें तो कल्याण है, अन्यथा यह भाव ससार तो आपके स्वागतके लिये हाजिर ही है। मैने इनको बहुत कुछ सुख दिया किन्तु ये सब मेरे विरुद्ध हो रहे हैं, इत्यादि विपरीत भाव होते हैं इसीसे क्लेशोका बोझ लदता है। क्लेश भी बाहर नही हैं, अपने ही ख्याल बनानेसे क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं। सो यह ख्याल ही तुम्हारे दु खोका बन्धक हो रहा है। अपने शुद्ध स्वरूपके एकत्वका आलम्बन करलो, यही शान्तिका उपाय है। इस उपायके लिए भगवान जिनेन्द्र देवने वस्तुके स्वरूपको स्पष्ट प्रदर्शित किया है।

अपनेमे नित्य प्रकाशमान अवस्थित तत्त्वके दर्शनका श्रेय—इस प्रकरणमे यह कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्याय रूपसे अनवस्थित हैं। अवस्थितका अर्थ है वही का वही रहना और अनवस्थितका अर्थ है वही का वही न रहना। अभी तक अन्य ये अब अन्य कुछ हो गये इसको कहते हैं अनवस्थित। जब पदार्थोंके अस्तित्वपर दृष्टि देते हैं, उसके स्वभावका लक्ष्य करते हैं तो वह पदार्थ अवस्थित हैं, वहीका वही है। जैसे एक ही भवमे, इस मनुष्य भवमे हो तो जो बचपनमे जीव था वही का वही अब है, यह तो अवस्थित ही है, जो था सो ही है, अन्य कोई नही है, इस प्रकार तो हो गया अवस्थित, किन्तु अनवस्थित भी आप लोग वैसे रहते हैं, रहते हैं ना बहुत-बहुत। बचपनमे और ढगके थे, जवानीमे और ढग बना और बुढापेमे और ढग बन गया। इस तरह रोज-रोज नया नया ढग बनता है। रोज रोजकी बात ही क्या, घंटे घंटेमे नया-नया ढग बनता है। घंटे घंटेकी बात ही क्या मिनट मिनटमे और और ढग बनता है। मिनट मिनटकी क्या बात, सेकेण्ड सेकेन्डमे अन्य अन्य ढग बनता है। सेकेन्ड की बात ही क्या, प्रति समय और और ढग बनता है।

दृष्टि से प्रयोजन—भैया, कहते हैं ना लोग कि तुम एक बातमे कायम ही नहीं रहते हो, क्षण-क्षण मे बदलते ही रहते हो। इसी प्रकार पदार्थ भी सब किसी एक दशामे कायम नही रहते हैं, रह ही नही सकते हैं, क्योंकि वे पदार्थ है, परिणमनशील हैं। पर्यायोंकी दृष्टिमे देखें तो वे अनवस्थित हैं। जैसे घडे और कुण्ड आदिक पर्यायोंमे मिट्टीके अस्तित्वको देखें तो वह तो अवस्थित है, वहीका वही है, कोई दूसरी चीज नही आ गई। मिट्टीकी दृष्टिमे देखें तो वह अवस्थित है और उसकी दशाओंको देखें तो उनमे अनवस्थितता है। तभी तो जिसको दशाओका तो प्रयोजन हो और द्रव्यत्वकी बात सामने रखदें तो उस प्रयोजनवाले को सतोष न होगा तथा जिसको द्रव्यत्वमे प्रयोजन हो और उनके सामने मात्र पर्यायके प्रयोजनकी ही बात रख दी जाय तो उसको भी सतोष नहीं होता। जैसे अब लगी तो प्यास है और घडा फोड कर धर दें तथा कहा जाय यह कि यह मिट्टी तो वही की वही है, मैंने कुछ भी तो नहीं किया, तो बताओ इसमे कैसी विडम्बना बनेगी। अरे, उस मिट्टीमे तो काम नही निकलता, काम तो उस घडेमे था, उसे मिट्टीकी बात कहकर कैसे सतोष कराया जा सकता है। इसी प्रकार जिसका द्रव्यमे तो प्रयोजन है और उसको पर्यायमे हठ करके सामान्यतत्त्वका निषेध किया जाय तो उसका प्रयोजन तो सिद्ध नही होगा फिर उसे भी सतोष कैसे हो।

जैसे कोई आदमी बाजारसे सोना खरीदने चला और बोला दूकानदारसे कि भाई सोना चाहिये। वहाँ कोई झूठ मूठ सतावे कि भाई यह तो कडा है, यह तो कुन्डल है सोना हमारे पास नही है तो क्या यह कहना ठीक है। अरे भैया, कडे और

कुन्डल में ही तो सोना है। पर्यायोकी दृष्टि गौण की, तो वहाँ स्वर्ण नजर आया। सो भैया, उसे तो उस स्वर्णमें प्रयोजन है, दशाओंसे नहीं है।

विभिन्न दृष्टिके विभिन्न परिणाम—अन्य भी एक दृष्टान्त लो-तीन मनुष्य बाजार चले। उनमेंसे एक चाहता था सोनेकी कलसिया, इसलिए कि प्रभुका अभिषेक करेंगे सोनेकी कलसियासे। एक चाहता था मुकुट। इसलिए कि पूजा करेंगे तो मुकुट बाध कर करेंगे और एक चाहता था खाली सोना। ये तीनो एक दूकानमें पहुँचे, जिस दूकानमें सोनेकी कलसियोको तोडकर मुकुट बनाए जा रहे थे। उसने सोचा कि कलसियाँ बहुत दिनो की रखी हैं, बिकती नही हैं सो इन पूजाके दिनोंमें मुकुट बिक जावेंगे। इन तीनोमेंसे जो चाहता था कलसिया वह तो दुःखी होता हुआ विचार रहा है कि हाय मैं आधा घन्टा पहले आ जाता तो बनी बनायी कलसिया मिल जाती। जो मुकुट चाहता था वह बडा प्रसन्न हुआ कि लो अभी १० मिनटमें ही मुकुट तैयार हुआ जाता है। जो खाली सोना चाहता था वह न तो हर्षित था और न दुःखी था। उसको मुकुट रहता तो, कलसिया रहती तो, सबमें शान्ति थी, सबमें उपेक्षाभाव था ये जो तीन प्रकारके भाव हैं वे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी दृष्टि बताते हैं कि एक कल-सियाका व्यय देखकर दुःखी होता, दूसरा पुरुष मुकुटका उत्पाद देखकर सुखी होता और तीसरा सबमे स्वर्णत्व देख रहा, वह न कलसियोंके व्ययसे सुख दुःख करता और न मुकुटके उत्पादसे सुख दुःख करता, उसके तो सर्वत्र उपेक्षा भाव हैं।

पर्यायके लक्ष्यमे मोहका कारणत्व—इसी प्रकार जिनके पर्यायदृष्टिकी मुख्यता रहती है और जो उस पर्यायके लक्ष्यमे सुधार बिगाड तकते रहते हैं, उस पर्यायके लक्ष्यमे इतना बढ जाते हैं कि उपचारसे ही मोह हो जाता है, अर्थात् इस वस्तुके कारण सुधार होगा इसलिए सचय करें ऐसा व्यामोह हो जाता है तो वे परिग्रही व दुःखी बन जाते हैं। वैसे तो जैसे द्रव्यत्वका खण्डन करके पर्याय नही पकडना उचित है, वैसे ही पर्यायका खण्डन करके द्रव्यत्वको नहं मानना चाहिये, क्योंकि द्रव्य और पर्याय दोनो तत्त्व ऐसे हैं कि द्रव्यके बिना पर्याय नही रह सकता और पर्यायके बिना द्रव्य नही रहता है। जैसे बचपन, जवानी, बुढापा इनमे ही तो मनुष्यत्व राजता है। यदि मनुष्यत्व ही न मिला होता तो बचपन, जवानी, बुढापा ये कहा पर बिराजते। इन तीनो दशाओंके बिना मनुष्य कुछ नही है और मनुष्यत्वके बिना तीनो दशाएं कुछ नही हैं।

स्वभावके अपरिचयमे अनेक कल्पनायें—इन पदार्थोंके स्वभावको जाने बिना इस लोककी दृष्टिमे इसके निर्णयकी अनेक कल्पनाएं होने लगती हैं। कोई यह कहते कि ईश्वरने जगतको बनाया है, कोई यह कहते कि इसके लिए तीन देवता नियत हैं। एक दुनियाको बनाता रहे, एक दुनियाको मिटाता रहे और एक दुनियाकी रक्षा करता

रहे। देखो भैया, तीनों देवताओंका काम प्रत्येक अणु अणुमे, प्रत्येक पदार्थमे स्वत सिद्ध हो रहा है। अथवा यों कहलो कि प्रत्येक पदार्थ त्रिदेवतामय है। वे तीन देवता हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। सो यह त्रिदेवत्व प्रत्येक पदार्थोंमे अपने आप बसा होता है।

पदार्थोंमे चलाचलता—अब इस त्रिपुटीमे यह निर्णय किया जा रहा है कि इसमे जो चलपनेका अंश है वह है पर्यायदृष्टिमे पर्यायके द्वारा, और जो अचलपनेका अंश है वह है द्रव्यत्वमे द्रव्यदृष्टिके द्वारा। सो पदार्थ जितने हैं सब चलाचल हैं। कोई पदार्थ ऐसा नही है जो चल ही हो और कोई पदार्थ ऐसा नही है जो मात्र अचल हो। जिसके चलपना रच भी न हो वह असत् है और केवल चल भी असत् है। यदि कुछ है तो वह चलाचल है। पदार्थोंका चलपना जुदे जुदे प्रकारका है। जैसे पुद्गलमे चलपना इस तरह है कि वह खिसक गया, मिट गया, बरबाद हो गया, चला गया, उड गया आदि। और जीवका चलपना यों है कि लो अब क्रोध हुआ, लो अब मान आ गया, लो अभी सुख था, अब दु ख आ गया, अभी तक प्रसन्न था अब अप्रसन्न हो गया, अभी तक कषायमे था, लो अब अकाषायमे पहुंच गया। गुणस्थान, जीव समास ये सब जीवके चलपने हैं। ये ध्रुव चीज नही है। सिद्ध अवस्था भी तो सदृश चल होती है।

सिद्धोंकी शुद्धता—सिद्धोंके गुणस्थान नही हैं, क्योंकि सिद्ध गुणस्थानातीत हैं, वे गुणस्थानसे ऊपर होते हैं। इसी प्रकार सिद्धोमे मार्गणावोंका भेद एक एक रहित वाला चलता है, सिर्फ कुछ ही मार्गणावोंका रहित वाला भेद नही चलता। जैसे कि ज्ञानमार्गणामे सिद्ध भगवानके ज्ञानमार्गणाका कौनसा भेद है? केवल ज्ञान। दर्शनमार्गणामे दर्शनमार्गणाका भेद केवलदर्शन है और सम्यक्त्वमार्गणामे क्षायिक सम्यक्त्व है। अन्य मार्गणावोंके भेदोंमे सिद्धोंके रहितपना है। जैसे गतिमार्गणामे गति रहित, इन्द्रियमार्गणामे इन्द्रिय रहित आदि, यो वह मुक्त आत्मा गुणस्थान और जीव समासोंमे व मार्गणावोंसे परे है सो वह भी पर्याय है, वह द्रव्यपना नही है। द्रव्यपना तो वह है जो कि अनादिकाल से अनन्तकाल तक एक स्वरूप रहता है।

त्रिकाल व्यापक व सर्व दशाओंका स्रोत—अब त्रिकाल व्यापी सर्व पर्यायोंके स्रोतरूप एकस्वरूप आत्मद्रव्यकी खोजमे चले। जिस प्रकार-कि एक जीव है वह निगोदमे था। वहाँ से निकलकर त्रस पर्यायमे आया, उसमे भी उत्कृष्टकाय मनुष्य हुआ, फिर वहाँ मुनि बना, फिर अरहंत अवस्थामे पहुँचा, फिर सिद्ध हुआ। कितनी दशाओंसे यह जीव गुजरा, पर उन सब दशाओंमे जो एक ही रहा, एक ही स्वरूप रहा, वही द्रव्य है। उन दशाओंमे एक रूप क्या रहा ? चैतन्य, चित्स्वभाव। वह

चित्स्वभाव, चैतन्य, ज्ञायकस्वभाव आत्मद्रव्य है इसकी दृष्टिसे जीवको देखो तो सर्वत्र वही है।

द्रव्यदृष्टिका चमत्कार—यह द्रव्य दृष्टि इतनी तीक्ष्ण होती है कि अनेक आवरणोंको भेदकर ठीक अन्तरमें एक्सरे के समान पहुंच जाती है। जैसे किसी हड्डीका फोटो लेनेवाला यन्त्र, एक्सरा फोटो लिए जाने वाले व्यक्तिके वस्त्रादिको भेदकर याने सूई चुभोकर नही, किन्तु फोटोमें न लाकर मात्र उस हड्डीका ही फोटो लेगा। देखो भैया, एक्सरा एक अजीव यान्त्रिक यत्र इतने आवरणोंको भेदकर, उनके कितने अन्दर पहुँच गया। इसी प्रकार द्रव्य दृष्टि एक्सरा लेनेवाले यन्त्र से भी अधिक पैनी है।

यदि द्रव्य दृष्टि होगी तो वह द्रव्य दृष्टि न तो निगोद अवस्थाको ग्रहण करेगी, न इन्द्रिय अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मनुष्य अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मुनि अवस्थाको, न अरहतको, और न सिद्ध प्रभूकी अवस्थाको ग्रहण करेगी, किन्तु इन सब पर्यायोंको भेद करके अर्थात् इन सब पर्यायोंको न ग्रहण करके मात्र एक शुद्ध चैतन्यको ग्रहण करेगी। तो जिस दृष्टिका गुण गुप्त हो गुप्त है, काम ही गुप्त है, गुप्त होकर गुप्तको, अव्यक्तको भी ग्रहण करले, ऐसी दृष्टि आज तक मोही ससारी जीवको नही प्राप्त हुई। इसी कारण जगतके जीव विषयोंमे रति करते हुए अब तक रुलते चले आ रहे हैं। इन विषयोंमें जो मौज है, वैभवका उपयोग है, अच्छा अच्छा रूप देखना है, इन्द्रियविषयोंका भोगना है ये सब इस जीवने अनन्त बार पाये हैं। इन विषयोका सब वृतान्त अनन्तों बार सुना है, परिचयमे आया है, इन्हींमें यह रचा चला आया है किन्तु निज एकत्वकी दृष्टि इसको कठिन हो रही है।

पर्यायदृष्टिका फेर—भैया, जीवलोकको विषयोकी बडी जानकारी है, दौड दौड कर खूटा तोड कर, खूटा तोडनेका मतलब यह है कि जीव चाहे धार्मिक वातावरणमे भी आ गया हो, चाहे ज्ञानकी प्रगतिमे लगा हो, चाहे ज्ञानी विरक्त सत जनोंका सग पाकर कुछ अपने उद्धारका लक्ष्य भी कर चुका हो, पर भीतर ही मोह यदि उठ खडा हो जाता है तो वेदना वढ जाती है। यो मोहके ही कारण जीव अपनेको वन्धनमे करके धार्मिक वातावरणका ध्यान छोडकर विषयोंमे घुसने लगता है, सो धार्मिक खूटोंको तोडकर विषयोंकी ओर प्रवेश करता है। कुछ नियम ही ले लें, प्रतिज्ञा भी ले लें, फिर भी भीतरमे ऐसा मोहका धक्का लगता है कि नियमका, व्रतका ख्याल गौणकर जिस तरहसे मौजमे रह सकें, चलनेको दौडते हैं। तो वह सब बात क्या है? पर्यायोकी दृष्टिका फेर है।

निर्विषयपराङ्मुख दृष्टिकी विषयोन्मुखता—द्रव्य का जिसे परिचय नहीं,

जो द्रव्यको ही पर्याय मानले कि यही सब कुछ है, अपने आपको पर्यायस्वभावरूप माने और अन्य पदार्थोंके पर्यायको भी निजस्वभाव माने तो ऐसी पुरुषोकी दृष्टि चूंकि मोही है, सो विषयोकी ओर ही जायगी क्योंकि उनका उपयोग तो निर्विषय, निश्चल एक स्वरूप ज्योतिर्मय आत्मतत्त्वको देखना ही नहीं है।

शुद्धविकास व स्वाभाविक समानता—जैसे कि निर्मल जलको और जलके स्वभावको अगर जानोगे तो एक लक्षण ही मिलेगा। स्वच्छता, निर्मलता उस जलमे है और इस जलमे भी स्वच्छता स्वभावमे है। तुम्हारा स्वभाव और परमात्माका विकास ये दोनो एक स्वरूप हैं। इसी कारणसे आप हम और भगवानमे द्रव्यत्वमे कोई अन्तर नही है। अन्तर तो यह है कि भगवानमे केवल शुद्ध विकास ही दीखता है और यहाँ अशुद्ध विकास। वहाँ देखो प्रभुका विकास, यहाँ देखो इसका अपना विकास, तो उसके विकासमे अन्तर है ही। उनका विकास है अनन्तानन्दमय और हम लोगो का विकास है क्लेशमय, दुखमय, सुखमय, ससारकी अवस्थाओमय, यह अन्तर है हममें और उस प्रभुके विकासमें। प्रभुके विकासमे और हमारे स्वभावमे मेल करें तो एक है, प्रभुके स्वभावके समान ही हमारा स्वभाव है पर हमारे विकासमे और प्रभूके विकासमे समानता नही है। सो जिस रूपसे अपनेमे हम प्रभूके समान हैं उस स्वभावके लक्ष्यको लेकर चलें तो शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

जीव अवस्थितता व अनवस्थिततामे अनवस्थित—अब तक यहाँ यह कहा गया है कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपसे अनवस्थित है अर्थात् जब द्रव्यत्वपर दृष्टि देते हैं तब यह प्रतीत होता है कि वहीका वही जीव है और जब पर्यायपर दृष्टि देते हैं तब भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। जो सुबह था वह दोपहरको नहीं है और जो दोपहरको था वह सामको नही है। जो इस भवमे हैं वह अगले भवमे नही, जो पहले भवमे था वह अब नही। इस तरहसे इस जीवको अनवस्थित कहते हैं। इसका अनवस्थितपना तो स्पष्ट जाहिर है। कभी पशु हुए, कभी पक्षी हुए तो पशु पक्षी इत्यादि भी बदलते रहते हैं। जीवका अनवस्थितपना बिल्कुल स्पष्ट नजर आ रहा है और अवस्थितपना नजर आ रहा नही। कीडे हो गये, मकोडे हो गये, मर गए, कुछ और हो गए, यह अनवस्थितपना विशद नजर आ रहा है। तो यहाँ जीवनमे अनवस्थितपना क्यों हुआ ? इसकी अनवस्थितताका क्या कारण है ? इस बातको यहाँ प्रकट करते हैं।

तम्हा दु णत्थि कोई सभावसमवट्ठिदोत्ति ससारे।
ससारे पुण किरिया ससरमाणस्स दव्वस्स ॥ १२० ॥

इस ससारमे कोई ऐसा नहीं है जो स्वभावमे अवस्थित हो, अर्थात् जो एक रूप

चल रहा हो ऐसा कुछ भी नही है। वास्तवमे ससार परिभ्रमण करने वालेको याने संसारी जीवकी विभाव क्रियाको कहते हैं।

शुद्ध जीवकी अव्याकृत अनवस्थितता – परमार्थसे देखो तो पर्यायदृष्टिसे शुद्ध जीव भी अनवस्थित है पर उसे अनवस्थित यो नही कहते कि उनका प्रतिक्षण शुद्ध-शुद्ध परिणमन चल रहा है। अनवस्थितपना तो वहाँ कहा जाता है कि जिसके परिणमनमे भेद नजर आता है। उनके परिणमनमे भेद नजर नही आता है फिर भी जो पर्याय पूर्व समयमे है वही पर्याय उत्तर समयमे हो ऐसा तो मुक्त जीवोंके भी नही है। हाँ उनके समान समान ही पर्याय होती है। वह पर्याय दूसरे क्षण हो ऐसा नही है, क्योंकि द्रव्यका स्वभाव ही है कि प्रतिक्षण ऐसा इसका परिणमन होता ही रहता है। सभी द्रव्योंमे अपना-अपना पूर्व पर्याय विलीन होता है और उत्तर पर्यायका उत्पाद होता है। यह तो पदार्थका स्वरूप ही हैं, बस अन्तर्भेद यह हो गया कि उपाधि न होनेसे और अपने आपका शुद्ध विकास होनेसे जो भी परिणमन परमात्मामे चलते हैं वे समान समान परिणमन चलते हैं।

प्रभुके ज्ञानमे कालकृत विकल्पोंका भी अभाव—ज्ञानबलके द्वारा इस समय त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त अर्थ को जानलें तो अगले समयमे भी ज्ञानबलमे इतना ही जान लेंगे, उसके जानने मे भेद नही पडता है। इतना भी तो उसमे घुमाव नही है कि इस समय जिस पदार्थको जानते हैं अगले समय मे उसको भेद रूपसे जानें, इतना भी उसमे घुमाव नही, इनका सीधा परिणमन है। जैसे कि मोटे रूपमे लोग कह देते कि जिस चीजको इस समय वर्तमान रूपमे जान रहे हैं उस चीजको अगले समयमे भूत रूपसे जानेंगे और जिसको अभी भविष्य रूपसे जानते हैं उसे वर्तमान रूपमे जानने लगेंगे यह भेद भगवानके ज्ञानमे नही है। इतना निर्मल निर्विकार ज्ञान हैं, प्रभु का कि वह जानता सब वही है जैसा जो पदार्थ हैं किन्तु किसी भी प्रकार का भेद करके नही जानता।

कालकृत अविकल्पताके लिए क्षेत्रकृत अविकल्पताका एक उदाहरण— भैया एक उदाहरण लेलो। जैसे यहाँ गेहूंके कई दाने रखे हैं उन सारे दानोको तो देखलें और यह ख्याल न लायें कि इस दानेके पहिले यह दाना रखा, इसके पहिले यह रखा। इस तरहसे क्या कोई जान नही सकता है ? जानते हैं। जितने दाने रखे हैं सबको जान लिया और जाननेमे भी वे ठीक ढगसे याने ज्ञेयाकारकी निर्वृत्तिमे क्रम तो आ गया मगर जाननेकी क्रियामे क्रम नही आया कि वह जाननेमे भी विकल्प करता हो कि इसके पहिले यह पर्याय है, इसके बाद यह पर्याय है ऐसा उनके जाननेमे क्रम नही है और जिस तरहके पदार्थ हैं उस तरहका जान लेना हो रहा है।

इसके लिये यह उदाहरण काफी है कि गेहूँके दाने सब एक-एक करके रखे हैं, यह हम सब जान जाते हैं पर उसमें यह क्रम नहीं लगाते हैं कि इसके पहले यह रखा, इसके पहले यह रखा। गेहूँका ढेर बाजारमें रखा हो उसको हम जान लेंगे और जो कुछ जान रहे हैं वह उसके अविरुद्ध जान रहे हैं। रखे है इस बगलमें दाने और जानते हो उस बगलमें, ऐसा तो नहीं है। सब देख जान कर यह भी विकल्प नहीं है कि इस दानेके बाद यह दाना, इस दानेके बाद यह दाना। जैसा है वैसा जान लिया, फिर भी विकल्प नहीं है। यह है ज्ञानकी उदारताका चमत्कार।

इस प्रकरणमें बात यह बताई जा रही है कि पर्यायदृष्टिसे कोई भी पदार्थ अवस्थित नहीं है, अनवस्थित है। परमात्मपदार्थ अनवस्थित यों नहीं कहे जाते कि उनके पूर्वोत्तर पर्यायमें भेद नहीं है, समानता है, वैसी ही वैसी पर्याय बनती है। खैर, इस प्रकरणमें संसारी जीवोंका वर्णन चल रहा है कि इस संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो स्वभावसे अवस्थित हो, इस वाक्यका कितना ही अर्थ लगाते चले जायें इस संसारमें अर्थात् समस्त पदार्थ समूहमें कोई सा भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिसका ऐसा स्वभाव हो कि वह तो परिणमन ही न करेगा, निश्चल ही रहेगा। जिसमें परिणमन नहीं है ऐसा कोई पदार्थ नहीं है सो यह कह रहे हैं कि जीव पदार्थ द्रव्यरूपसे अवस्थित है और फिर भी पर्यायोंके रूपमें अनवस्थित हैं। द्रव्यको यहाँ सामान्य माना और पर्यायको विशेष माना। सो पदार्थोंको भी सबको निरखते जावो, सब पदार्थ सामान्यरूपसे अवस्थित है और विशेषरूपसे अनवस्थित हैं।

अपेक्षावोंका योग्य उपयोग न होनेसे आपत्तियाँ—पदार्थोंमें रहनेवाले इस स्वभावका प्रतिपादन करके जो विस्तृत वर्णन चला उसको सुन कर भगवान जिनेन्द्र देवके शासनकी दृष्टियोंको किसीमें किसीको मिला कर विद्यावतोंने जो धारणा बनाई उससे कितने मार्ग दिखाई देने लगे कि जीव ब्रह्म है, अपरिणामी है, क्षणिक है, ईश्वरकृत है आदि। सो भैया, पदार्थका मूल स्वरूप अवश्य ज्ञान कर लेना चाहिए। जब पहिले रेल गाडी चली थी तो सुनते हैं कि जब रेलगाडी निकले तो हर गाँवोंके लोगोंकी भीड उस रेलगाडीको देखनेके लिये निकले कि कौन सी अजीव चीज है। रेलगाडीके पहिले हिस्सेको देख कर लोग कहते थे कि यह जो काला-काला लगा है इसमें देव हैं और वही देव इसको चलाता है। अच्छा जब भ्रम धीरे-धीरे मिट गया तो अब वे यन्त्रकी ठीक-ठीक बात जान गए। पहिले जानते थे कि कोई देवशक्ति है जिससे यह चलती है, पर अब जानते हैं कि इसमें पानी है, कोयला है और भाप बनती है तब यह चलती है।। कोई देवता चलाता है, अब यह भ्रम नहीं है। जब पदार्थगत परिणमनशीलताकी विशेषता समझमें नहीं आती तब किसी अन्यको कर्त्ता

खोजनेका श्रम किया जाता है। पदार्थ है और परिणमते हैं, ये ये बातें पदार्थमे तन्मय होकर गुम्फित हैं। मैं हूँ और परिणमता हूँ। यदि परिणमन नही तो वह है ही नही। जो है नही वह परिणमेगा क्या। है का और परिणमनका ऐसा परस्परमे अनिवार्य समन्वय है।

है और होने का अविनाभाव—भैया, सस्कृतभाषाके विद्वान जानते हैं कि एक धातु है अस्, "अस् भुवि" जिसके वर्तमान कालके रूप चलते है अस्ति स्त सन्ति, जिसका अर्थ हिन्दी मे होता है, हैं, हैं। पर अस्तिका असली अर्थ क्या है? अस्, भुवि, अस् का अर्थ है भू अर्थात् होना। भू का अर्थ क्या है? भू का अर्थ बताया गया है भू सत्ताया। अब भू का अर्थ है अस् वा अस् का अर्थ है भू। भू के वर्तमान कालमे रूप चलते हैं—भवति, भवत, भवन्ति। इनका अर्थ है—होता है, होते हैं। तो ऐसा परस्पर अर्थ प्रदानका तात्पर्य क्या निकला कि है, होता है विना नही है और होता है, है विना नही है। है का अर्थ ले लो ध्रौव्य और होता है का अर्थ ले लो उत्पाद व्यय। माने जो नही है वह हो और जो पहिले था वह मिटे और नया होने व पुराना मिटने पर भी वही का वही रहे। तो होता है का अर्थ है ध्रौव्य। ध्रौव्य उत्पाद व्ययका वहिष्कार कर दे तो ध्रौव्य का अभाव हो जायगा और उत्पाद व्यय ध्रौव्य का वहिष्कार करदें तो उत्पाद व्ययका हो नाश जाय। यही है भेदवाद व अभेदवाद की बात। अभेदवादने उत्पाद व्ययका वहिष्कार किया और भेदवादने ध्रौव्यका वहिष्कार किया। उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अविनाभाव जाने विना यह अनर्थ हो गया।

जीवलोककी अनवस्थितताका हेतु ससार—यहाँ कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यत्वके रूपमे अवस्थित है और पर्यायके रूपमे अनवस्थित है। सो जिस कारण यह जीव अवस्थित है और अनवस्थित भी हैं सो उस कारण यह मालूम पड़ता है कि ससारका कोई भी जीव ऐसा नही है जो स्वभावमे अवस्थित ही हो। इस ससारमे जीवलोकमे जो अनवस्थितपना आया है उसका हेतु क्या है? ससार। यहाँ ससार का जो अर्थ अभीष्ट है सो आगे कहेंगे।

अवस्थित ही अनवस्थित व अनवस्थित ही अवस्थित—अब यहाँ बतलाते है कि यह अनवस्थितपना जीवमे स्वय ही बना हुआ है, क्योकि यह जीव मनुष्यादिक पर्यायो रूप है। कोई मनुष्य हो गया, कोई तिर्यञ्च हो गया, कोई देव हो गया, कोई नारकी हो गया, कोई सिद्ध हो गया। सो पर्याय तो बदल गयी, किन्तु उस जीव को पर्यायके रूपमे देखो तो जीव स्वरूपमे अनवस्थित है। यह स्पष्ट अनवस्थितपना केवल ससारी जीवोंमे देखा जा रहा है। क्या हुआ कि द्रव्यमे जो परिणति हुई वह तो परिणाम हुआ, सो पूर्व परिणामका त्याग किया और उत्तर परिणामका ग्रहण

किया। यह हुआ एक कार्य, जीवमे भी यह कार्य एक ही समयमे पाया जाता है। (१) पूर्व दशाका त्याग और (२) उत्तर दशाका ग्रहण।

कार्यका स्वरूप—भैया, जो वस्तुकी उत्तर दशा है वह तो है उत्पाद रूप और जो पूर्व दशा है वह है व्यय रूप। पूर्व दशाका त्याग करना और उत्तर दशाका ग्रहण करना ऐसी जो जीवमे बात है उस ही का नाम एक कार्य है। कार्यका आश्रय उत्पाद और व्यय दोनोंसे है। उसको ही परिणाम कहते हैं। और यह परिवर्तन रूप परिणाम ससारका स्वरूप है कि इन विचित्र पूर्व पर्यायोंका त्याग और उत्तर पर्यायोंका ग्रहण होता रहता। ऐसा परिणमन होनेका कारण ससार परिणाम है अर्थात् इस ससाररूप हेतुसे जीव अवस्थित नहीं है। सो भैया, यह जीवद्रव्यके रूपमे अवस्थित है परन्तु पर्यायके रूपसे अनवस्थित है। इस वस्तु स्वरूपकी दृष्टिसे अनेक जिज्ञासावो का समाधान हो जाता है। इस सृष्टिका कारण कौन है। इस उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक एक सत्ताने जो रचा गया है उसही पदार्थमे परिणामनशीलताका स्वभाव पडा है, जिसके कारण सृष्टि होती रहती है।

प्रतिक्षणपरिणमनशीलता—कितने ही पदार्थ ऐसे हैं कि जिनको हम नही जानते मगर वे अपना परिणमन एक क्षण भी नही वन्द करते। सारे जगतको रचने का अधिकार एक को हो, तो इतनी वडी व्यवस्था करते हुए मे यदि चौथाई पदार्थोंका ख्याल न रहे तो वहाँ क्या गजब हो जाय? वस्तु निश्चल हो जाय, अवस्थित हो जाय। निमित्त नैमित्ति भाव व पूर्वोत्तर परिणमन योग तो होता ही रहता है। घडी विल्कुल ठीक चलने वाली हैं, विगडी नही है चाभी लगाकर भरकर धर दो, उस घडीका ख्याल भी न रहे मगर वह घडी अपना ही काम कर रही है।

पदार्थोंकी परिणमनशीलतामें अपने ही द्रव्यत्वका प्रभाव—इस जगतमे जितने भी पदार्थ है वे सब निरन्तर परिणमते रहते है। मेरु पर्वतके नीचे रहने वाली मिट्टी या रत्न इत्यादि भी सत् हैं और वे प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। वहाँ किसी की गति नही है, वे दिखते नही हैं, किन्तु वे स्वय प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। तो सत् होनेके कारण जीवका स्वभाव निरन्तर परिणमते रहनेका है। अशुद्ध उपादान इसमे है तो जैसी—जैसी उपाधिका निमित्त पाता है उस—उस पर्यायमे वदलता रहता है। जीवके यों अनवस्थित होनेमें हेतु क्या है? अन्तरगमे तो स्वयकी योग्यता और वहिरगमे उपाधिका सान्निध्य।

भैया जो मनुष्य है वह यदि मर कर पक्षी हो गया तो कहते है कि हाय, यह तो गजब हो गया। भैया, मैंने क्या किया? अरे! कारण कहाँ ढूढते हो, जो मरकर पक्षी हुए तो अपनी ही करतूतोंसे हुए। जो दु खी होता है वह अपने ही किसी

कारणसे दु खी होता है । अरे दु खोंका देनेवाला किसे बाहर ढूढते हो ? क्या तुम्हे कोई दूसरा दु ख देता है ? तुम खुद अपनेको दु खी कर लेते हो । अपने ही अन्तरग को तको, उसमे ही दृष्टि दो, उसमे ही लगाव रखो, परके लगावको छोडो, तो दुर्गति व दु ख दोनोका अन्त हो जावेगा । दु खोका कारण बाहर कहाँ ढूढते हो ?

दुख की उपादानसे प्रादुर्भूति.—यदि कभी तुम्हे दु ख मिलेगें तो तुम्हारे ही द्वारा तुम्हे दु ख मिलेंगे । ऐसा सत्य निश्चय करलो कि दूसरे पदार्थोसे हमे दु ख नही मिलता है । कभी-कभी यह कहेगे कि अरे मैंने कोई भी गलती नही की, फिर भी इस दुष्टने मुझे दु ख दिया । मैं रच भी अपराधी नही रहा, किन्तु इस दुष्टने मुझे बहुत अधिक दुखित किया । भैया ! किसी दूसरेने मुझे दुखित नही किया किन्तु तुमने स्वय अपने कषाय भावके परिणाम बनाये, इसीसे तू दुखी हुआ । इसने स्वय अपनी अशुद्धिसे, अपनी अज्ञानतामे अपने ख्याल बना करके दु खी अपनेको बना लिया है। इसका कारण वर्तमानका अपराध है और परम्परासे देखो तो पुराना अपराध कारण है । वर्तमान अपराध तो यह है कि तुम स्वभावमे हटकर, अपनी एकत्वदृष्टिसे हटकर बाह्य पदार्थोंमे लग गए हो, यह तो है वर्तमान अपराध, और पूर्व अपराध क्या है कि इसने पूर्व समयमे कोई दुराचार किया जिससे इस प्रकारका कर्मबन्ध हुआ, जिसके उदयकालमे ऐसा ही स्थान मिला, ऐसा ही निमित्त प्रसग हुआ कि जो अब भी दु खी होना पड रहा है ।

चाहे पूर्वकी बातें सोचो, चाहे वर्तमानकी बातें सोचो, दुखी होनेका कारण तो तेरा ही अपराध है । दूसरेके अपराधसे कोई अन्य दु खी नही होता । इसने अपने दु खी अज्ञानके कारण, अपने अपराधके कारण ही अपनेको बरबाद कर लिया है, अपनेको बना लिया है । सो अपनी प्रत्येक बातकी अपनेमे दृष्टि बनाओ तो अपनी सारी समस्याएँ यही हल हो सकती हैं । इस ही प्रकारका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षके मार्गमे ले जाने वाला है ।

अपने आपका ही अपने आपमे प्रत्यक्ष जानन —यह ससार परिणामात्मक है । जीवोंका यह ससार जीवोंके परिणामस्वरूप है । जब आप अपने मनमे प्रसन्न रहते हैं तो बाहर भी सब लोग प्रसन्न प्रतीत होते हैं । जब आप अपनेमे दु खी रहते हैं तो दुनिया भी कुछ दु खमय प्रतीत होती है । कारण यह है कि हम बाहर कुछ नही देखा करते हैं, न बाहर जाना करते हैं । जानते हैं तो वास्तवमे हम हमने आपको ही जाना करते हैं । तो जिस रूपमे हमने अपने आपको जाना उस व्यवस्थासे ही हम बाहरी पदार्थोंका व्याख्यान कर रहे हैं, वैसा ही ज्ञेयाकार होता है । इस कारण जो भी समझमे आता है वह सब जैसा है तैसा समझमे आता है । मतलब यह है कि

हम परको जानते तक भी नहीं तो अब और बातकी चर्चा ही क्या ? जब भी यह जीव अपनेको दु:खी अनुभव करता है तब किसी भी कारणसे कुछ भी निमित्त लेकर संकट अपने ख्यालमें बनाता है। बाहरमें देखो तो वहाँ उसके विरुद्ध कुछ नहीं है। मेरे अनुकूल भी कुछ नहीं होता, तो विरुद्ध भी क्या होगा।

भ्रममें विचित्र प्रदर्शन :—जैसे कोई वहमी आदमी किन्हीं लोगोंपर कुछ वहम कर लेता है अथवा लोगोंको कुछ भी उसके बारेमें पता नहीं है, सबकी दृष्टिमें वह शुद्ध है, सरल है, ठीक है, लेकिन यह वहमी आदमी कुछ वहम कर-कर के संकटोंमें पड़ा हुआ है कि उसे अपना दिल थामना ही कठिन हो रहा है। बाहरमें कुछ बात भी नहीं है पर वहमी अपनेमें स्वयं दु:खी है। यह सब एक मोहका वहम है। हम जिस प्रकारका वहम करते हैं अर्थात् मोह करते हैं, ख्याल बनाते हैं वैसी ही बात कुछ भी बाहर नहीं है। हम मोह करते हैं और उसमें विकल्प भी रखते हैं कि हमारे वे दो चार आदमी कैसे हैं ? ठीक हैं, बड़े प्रिय हैं ये हमने केवल मोहके परिणाम बनाये। वे हैं क्या ऐसे ? नहीं हैं।

ममतासे भी ममत्व होनेका अभाव—भैया ! मैंने सोचा कि ये मेरे हैं तो क्या ये मेरे हैं ? क्या ये मेरे हो गए ? नहीं हुए। वे वे ही है, उनका स्वरूप उनमें है, उनका चतुष्टय उनमें है। अर्थात् वे अपने ही परिणमनसे परिणमते हैं, अपने ही भावमें मग्न हैं, अपने ही प्रदेशमें रहते हैं अपने ही गुण पर्यायके अधिकारी है, उनसे बाहर उनका कुछ नहीं है। वे मेरे जरा भी नहीं है। सच-मच निरखो तो जरा भी गुंजाइश नहीं है कि कुछ भी अन्य मेरा हो जाय। वे कोई भी मेरे नहीं होंगे, कोई भी मेरे नहीं है। वहाँ तो कुछ बात ही नहीं, पर वहमी लोग वहम करके, मोह करके, ख्याल करके महान् दु:ख कमाते चले जा रहे हैं। यदि सोचो कि ये मेरे हैं, बड़े भले हैं तो क्या मेरे सोचनेसे ऐसा हो जायगा ? नहीं। वे भले हो सकते हैं तो अपने खुद में ही भले हो सकते हैं, दूसरोंसे वे भले नहीं हो सकते हैं।

परिणममान पदार्थकी पर्यायमें असरका व्यपदेश :—किसी भी पदार्थका दूसरे पदार्थोंपर कोई असर नहीं पड़ता। यहाँ तो जिनपर असर पड़ा है उन परिणममान पदार्थोंकी ही यह कला है कि वे योग्य पदार्थोंका निमित्त पाकर अपनी कलाके द्वारा अपनी परिणतिसे अपने आपमें अपना असर कर बैठते हैं। केवल उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है इस कारणसे व्यावहारिक भाषामें यह कहा जाता है कि यह असर उसका पड़ा है, पर वास्तवमें परिणमनेवाले पदार्थके स्वरूपने ही अपने आपमें यह असर उत्पन्न किया है।

यद्यपि यह असर स्वभावसे नहीं उठा, स्वरसतः नहीं उठा, उसके अस्तित्व

मात्रके कारण नही हुआ, तथापि हुआ तो उसकी परिणतिसे, याने योग्य निमित्तको सन्निधिमे यह असर खुद ही से बन बैठा। ऐसे निमित्तनैमित्तकसम्बन्धको देखकर यह कहा जाता है कि यह असर उसका है। जो पदार्थ जिस रूप परिणमते हैं उनही परिणमनका नाम असर है और वह असर अर्थात् परिणमन उस पदार्थमे उस ही की परिणतिसे होता है।

भैया, जो कुछ मेरा है वह मेरे ही क्षेत्रमे है। मेरी दुनिया, मेरा ससार, मेरा परिणमन मेरे मे ही है। यह परिणामात्मक ससार है। इस लोकमे नजर ही और क्या आ रहा है ? परिणामात्मक पदार्थ ही यहाँ नजर आ रहे हैं। परिणामात्मक पदार्थके समूहका नाम लोक रखा गया है। इस परिणामात्मक ससारमे पुद्गल कर्मका श्लेश कैसे हो गया, जिससे कि उन पुद्गलोंके विपाकसे मनुष्यादिक पर्यायात्मकता हो गई है, अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि नाना विकाररूपता हो गई है।

पुद्गलोंका श्लेष कैसे हो गया ? इस प्रश्नका उत्तर —द्रव्य कर्मके सम्बन्धका क्या कारण है, इस प्रश्नका उत्तर इस गाथामे गर्भित है। जो भी यह संसारनामक आत्माका विभावात्मक परिणाम है वही पुद्गल कर्मके बंधका हेतु है। अन्योन्य पदार्थमे परस्पर कर्तृकर्मभावका न होना और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्धका होना ये दोनो ही बातें अकाट्य हैं, और इन दोनो बातोके विषय दो प्रकारके हैं—कर्तृकर्मभाव न होनेकी बात अपनी निश्चयदृष्टि बने बिना समझमे नही आ सकती और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध होनेकी बात अपनी व्यवहारदृष्टि बने बिना समझमे नही आ सकती। निश्चय और व्यवहार दोनोका जो विषय है उसे निश्चय दृष्टि जैसा उपयोग बनाकर देखो तो वह समझमे नही बैठता। और उससे लाभ न होकर हानि ही होती है।

निश्चयका अपना स्थान —भैया, बातें दोनों नयोकी सच है। क्या यह सत्य नही है कि जीव केवल अपने परिणामोका ही कर्ता है। अपने परिणामोंके द्वाराही करता है, अपनी ही शक्तिसे करता हैं और उस परिणमनका जो फल है उनको यही अनुभवता है। क्या यह बात सत्य नही है ? खुद ही कर्ता है, खुद ही कर्म है, खुद ही कारण है, खुद ही कर्मफल है। किसी भी जीवको ले लो, निगोदको उदाहरणमे ले लो, मनुष्यको उदाहरणमे ले लो, प्रभुको उदाहरणमे ले लो, सब तरफ यही बात है कि चारोकी चारो बातें सब जीवोमे है। जैसे यह जीव जो मनुष्य पर्यायके रूपमे है, यह क्या करता है ? यह अपने मनुष्य पर्यायके योग्य परिणामको करता है। राग हो, द्वेष हो, विकल्प हो, कुछ भी हो, परिणामी अपने ही परिणामको करता है।

तो कर्ता यह खुद हुआ, अपने ही उन विभावको किया तो वह कर्म हुआ, उसने अपनी ही परिणतिने किया तो यही कारण हुआ। दूसरे पदार्थोंका इसमे कुछ आता ही नहीं, उनका मुझमें अत्यन्ताभाव है। सो दूसरोंके द्वारा तो नही किया, अपने ही द्वारा किया, तथा जो किया उससे गति किसको बनी ? फल किसने पाया ? राग परिणाम किया था इसने, तो उसके फलमें कलेश हुए, आकुलताएँ हुईं, क्षोभ हुए, उनको इसने ही तो भोगा, ये सारी बातें उसपर ही तो बीती, अत. कर्मफल भी यह स्वय हुआ।

सिद्धपरिणतिका अभेददर्शन —अब सिद्धोंमे कर्तृकर्मभाव देखो—वह मुक्त प्रभु क्या करता है ? करनेके माने परिणमन करना। य परिणमति स कर्त्ता, य परिणामो भवेत्तु तत्कर्म। या परिणति क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया। जो परिणमता है वह कर्त्ता है। जो परिणाम है वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है। वास्तवमे ये तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्यमे नही होती है। सिद्ध भगवान किस रूप परिणमता है ? वह प्रभु शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान, दर्शन, आनन्द रूप परिणमता है। जो उनका स्वभाव परिणमन है वह उनका कर्म है और उस कर्मका कर्त्ता वह प्रभु स्वय है। और, यह परिणमन किसके द्वारा किया गया है ? निज शक्तिके द्वारा किया गया है। जो अनन्त चतुष्टयका गुणानुवाद करता है उसके द्वारा सिद्धोका कुछ बनता है क्या ? हम उन्हे जान पावें तो क्या, न जान पावें तो क्या वह जैसा ज्ञानमय, आनन्दमय है सो ऐसा ही उनका परिणमन उनकी ही परिणतिके द्वारा होता है, सो कारण भी वही प्रभु हुआ। जो परिणमन हुआ उस परिणमनका प्रभाव किसपर हुआ ? उस परिणमनका फल किसको मिला ? उन्हीं को मिला जो अनन्त आनन्दमय हैं, उनके ही कर्मका फल आनन्दका अनुभव है, सो कर्मफल भी वही हुआ। क्या यह बात सत्य नही है ? सत्य है। यह निश्चय दृष्टिमे एक ही सत् को निरखकर परिणमनके व्याख्यानका विधान है। किसे कहते हैं सत्य ? सत्मे होने वाली बातको सत्य कहते हैं।

व्यवहारका अपना स्थान—अब दूसरी ओर चलो। व्यवहार दृष्टिसे देखो, यह किलबिलाता हुआ सारा जीवलोक जो यह बन गया है वह क्या केवल अपनी सत्ताके कारण बन गया है ? अर्थात् यह जीव सत् है इसलिए यह रागी भी हो गया, ऐसी बात तो नही है। युक्तिसिद्ध बात यह हैकि जितना भी विभाव होता है, वह चाहे जीव पदार्थोंमे हो चाहे अजीव पदार्थोंमे हो, उसका परिणमन उसके स्वरूपसे है, किन्तु पर उपाधिके सन्निधान बिना विभाव बिल्कुल होता ही नही है। इस उपाधिने कुछ नही किया, बीचमे निश्चयदृष्टिकी बात आती जा रही है, पर प्रसग अब व्यवहार दृष्टिका किया जा रहा है। सो यह विदित होता है कि कर्मोदय बिना किसी जीवका विभाव

हुआ हो ? ऐसा कही नही होता। विभावरूप परिणमते हैं तो उन बाह्य पदार्थोंकी सन्निधि पाकर परिणमते हैं। द्रव्यका स्वभाव परिणमनशील है, उसका काम परिणमनका है। वह परिणमनकी हठ किए है, यह जीव भी परिणमनका हठ किए हुए है, क्योंकि प्रत्येक सत्‌मे परिणमनका स्वभाव पडा हुआ है। सो वह परिणमता है, किन्तु परिणामविशेष पर उपाधि हुए विना नही होते, क्या यह सच नही है ?

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी कर्तृकर्मभावका अभाव—विज्ञानसिद्ध बात यह है कि जैसा उपादान है, जैसी योग्यताका है, निमित्तका सान्निध्य पाकर उपादान उन परिणतियोको बना लेता है, उन परिणतियोंके रूपसे उत्पन्न हो जाता है। ये सब बातें झूठी हैं क्या ? झूठ नही है, फिर भी सब कुछ जान लेनेके बाद अपने हितपथमे हम आगे बढें तो उपयोगरूप कदम कैसा बढना चाहिए ? इसमे भी विवेक करना बहुत जरूरी है। उसका उत्तर एक ही शब्दमे है कि हम अपने आप जैसे स्वभाव रूप हैं वैसी दृष्टिमे अन्तस्तत्त्वमे बढें तो हमे हित मिल सकता है। हम अपने स्वभाव दृष्टिमे जिस प्रकार बढ सकते हैं इसको सिद्ध करनेमे ये नय दृष्टियाँ सहायता किया करती हैं। प्रयोजन और काम तो हमारा स्वभावदृष्टिमे रहनेका है। इस कामके लिए निश्चयका आशय बनाया।

निश्चयनयका प्रयोजन स्वभावोन्मुखता—देखो भैया, अशुद्ध निश्चयनयकी सीमा मे अपनी ही परिणतिसे अपने ही आपमे अपने आपको यह इन-इन परिणामोरूप कर रहा है। मात्र उसके देखने पर, परका ख्याल नही रहता, आश्रयभूत पदार्थोंका आलम्बन न रहे, ऐसी स्थितिमे चूंकि ये रागादिक विकल्प परमे ही दृष्टि करके ऊधम मचापाते थे, सो इस निश्चयकी दृष्टिमे उनको सहारा न मिलनेमे ये शिथिल हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमे अशुद्ध परिणमनकी दृष्टि छोडकर हम स्वभावके स्पर्शमे जा सकते। हाँ अशुद्ध-परिणतिकी दृष्टिद्वारकी अपेक्षा शुद्ध परिणतिकी दृष्टिद्वारमे स्वभावको सुगमतया पहिचान लेते हैं। अशुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावको पहिचानना कुछ कठिन होता है, पर शुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावकी पहिचान सरल होती है। प्रयोजन सब, निश्चयनयोका यह है कि परम शुद्धस्वभावकी ओर झुकाव बने। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदिक जो परिणमन हैं इन परिणमनोको यह ही जीव करता है, अपनी परिणतिसे किया करता है। इस तरह शुद्ध निश्चय दृष्टिका विषय दृष्टिमे लेनेके पश्चात् निश्चय पद्धतिसे स्वभावतक पहुँचना जरा सरल हो जाता है, क्योंकि उसके उपयोगमे अशुद्ध परिणमन नही था, शुद्ध परिणमन है और यह स्वभावके अनुरूप है। यदि सीधे स्वभावसे हम जाना चाहते हैं तो आगे बढकर जब परम शुद्धका आलम्बन किया तो उसका तो साक्षात लक्ष्य स्वभावका है। वह बन सका तो हम स्वभावदृष्टिमे

एकदम साक्षात् आ जाते है। स्वभावदृष्टिमे आनेका प्रयोजन इन निश्चयनयोने सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार उस स्वभावका दृढ अभ्यासी कभी-कभी व्यवहारनयमे तकता है। तो इन नयोंने भी स्वभाव दृष्टिका काम निकालता है। ये रागादिक हैं, ये तो मात्र आत्माके स्वभावमे नही होते। ये आत्मा अपने सत्मे तो टकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभाव है। यह नाटक बना तो उपाधिका निमित्त पाकर बना। आत्मस्वरूपमे यह नाटक है ही नही। ऐसी दृष्टि गडावो तो और अधिक शुद्धताकी पहिचान हो। इस तरह व्यवहार करके कर क्या रहे हैं कि सारे परिणमनोको स्वभावसे हटा रहे हैं और यह ममझमे आरहा है कि यह सब नाच मिथ्या है। यह तो विपाकजन्य है, इसमे ये हुए कैसे ? इस व्यवहारनयका उपयोग अपनी स्वभावदृष्टिकी धुनको लेकर यह ज्ञानी कर रहा है।

अब परिणामात्मक ससारमे आखिर पुद्गलकर्मका यह श्लेष क्यो हो जाता है ? जिससे मनुष्यादिक-पर्यायमयता होती है। इसका कारण क्या है ? उसका कारण बताने के लिये इस गाथामे समाधान किया जायगा।

नोट —(इसके बाद १२१ वी गाथाका नोट न हो सका।)

परमार्थसे देखा जाय तो आत्मा द्रव्य कर्मका कर्त्ता नही है। आत्माके साथ सबसे ज्यादा घनिष्ट चिपका हुआ पदार्थ है द्रव्यकर्म याने ज्ञानावरणादि ८ कर्म हैं। जैसे कहते हैं ना, कि यह घरसे चिपका हुआ है, कुटुम्बसे चिपका हुआ है, सो यह तो दूरकी चीज है, पासमे तो यह कर्म और शरीरमे चिपटा हुआ है। सबसे घनिष्ट सम्बन्ध आत्माका चिपके हुए ज्ञानावरणादिक ८ कर्मोमे है। सो इस गाथामे यह बतला रहे हैं कि यह आत्मा घरको क्या करेगा, शरीरको क्या करेगा। कुटुम्ब परिवार को क्या करेगा। यह आत्मा तो इन कर्मोको भी नही करता है। ये कर्म स्वय ही परिणम जाते है, जबकि आत्मामे विभावो का निमित्त मिलता है।

निमित्त नैमित्तिक भावका लोकदृष्टान्त—जैसे यह चौकी अगुलीकी जैसी छायारूप परिणम गयी, छायारूप परिणम गयी, इसका मतलब यह है कि परिणमी तो यह चौकी ही है किन्तु इसमे यह हाथ निमित्त मात्र है, यह हाथ चौकीको छायारूप नही परिणमा देता, यह चौकी ही स्वयकी परिणतिसे छायारूप परिणम गयी है। इसमे हाथ निमित्त है, हाथने इस चौकीको कुछ नही किया, कुछ ऐसा ही मेल है कि हाथका निमित्त पाया और यह जगह छायारूप परिणम गई। हाथका आकार मुक्का बनाया तो मुक्कारूप परिणम गई, कछुवा बनाया तो कछुवारूप परिणम गई, और बिल्ली बनाया तो बिल्लीरूप परिणम गई। जैसा ही निमित्त होता है वैसा ही यह छायारूप परिणमता जाता है, फिर भी हाथने इस छायाको नही परिणमाया है।

दृष्टान्तमे निमित्त नैमित्तिक भाव—इसी प्रकार द्रव्यकर्मकी भी बात है। आत्मा कार्माणवर्गणावोको ज्ञानावरणादिरूप परिणमाता नही है, परन्तु ऐसा ही यहाँ निमित्त नैमित्तिक सहज मेल है कि जहाँ अशुद्ध भाव आया तहाँ कार्माण स्कन्ध कर्म रूप खुद परिणम गया। यह एटोमेटिक काम चलता है। चेतन या अचेतन कोई भी परको परिणमाता नहीं, इस पदार्थसमूहको करनेवाला किसीको मानो तो उस परिणमानेवालेको किसी चीकका ध्यान न रहे, कोई चीज रह जाय, किसी चीजकी खतौनी ठीक न वैठे तो अव्यवस्था हो जायगी, किन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमे अव्यवस्था नही। जहाँ आत्माने विभाव किया तो आत्मा मदिरमे हो, चाहे जगलमे हो, जैसा परिणमन किया वैसा बन्धन बँध जाता है, कर्म अपने आप परिणम जाता है। परमार्थसे देखो तो आत्मा, द्रव्यकर्मोका कर्त्ता नही है।

परिणामो नयमादा सा पुण किरियत्ति होदि जीवमया।
किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स णदु कत्ता ॥१२२॥

आत्मा स्वय परिणमनस्वरूप है। आत्मा ही क्या, जितने भी पदार्थ हैं वे सब निरन्तर परिणमते रहते हैं। सो वह जो आत्माका परिणमन है वह आत्मा ही तो है। हाथ अगर टेढा मेडा किया गया तो यह टेढा मेढा होना हाथ ही तो है कि और कोई अलग चीज है ? जो भी परिणमन किया वह वही द्रव्य तो है, दूसरा द्रव्य नही है क्योंकि जो परिणमनेवाला है वह अपने स्वयके परिणमनका कर्त्ता होता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनसे अभिन्न है।

दृष्टान्तपूर्वक उत्पाद व्ययका अभिन्नत्व व कर्तृकर्मभाव—भैया, एक दृष्टान्त है कि एक बुढिया थी राटा कातने वाली। राटा कातते-कातते उसका तकुवा टेडा हो गया। सोचा कि किसी लोहारके पास जावें और सीधा करवालें। लुहारके पास पहुँची और कहने लगी कि भाई मेरे तकुवाका टेडापन ठीक पीट कर निकाल दो। तुमको दो टका देंगे। लुहारने टेड़ापन निकाल दिया। तकुवा सीधा हो गया। अब लोहार कहता कि टेडापन निकल गया ना ? लावो दो टका। तो बुढिया कहती है कि जो टेड़ापन तुमने निकाला है वह हमे दे दो। जैसे लाइटमे बैट्री भराने जाते हैं तो नई भरानेपर पुरानी वापिस लेनेका तो अधिकार है ही। बुढियाने कहा—भाई ! जो टेडापन तकुवाका निकाला है वह टेढ हमको दे दो। अब बताओ तकुवाका टेढ दे दिया तो पैसा काहेका। टेढ न दे तो दाम नही देती। वह तो एक अखण्ड पदार्थ है, उसमे पूर्व पदार्थका व्यय होता है और उत्तर पदार्थका उत्पाद होता है। वह पूर्व पर्याय कहीं चली गई क्या ? नहीं, तकुवामे विलीन हो गई। इसमे टेडी अवस्था थी, अब टेडीपनकी अवस्था तकुवामे विलीन हो गई, क्योंकि उसमे पदार्थका नया

विशेप प्रकट हुआ, है सो पुराना विलीन हो गया। होता रहा सब उसीमें, उससे भिन्न कोई चीज नही है। आत्माका परिणमन आत्मामें ही है।

अपना परिणमन ही अपना कार्य—भैया, जो जीवोंका परिणमन है वही जीवोंका कार्य है। और वह कार्य जीवमयी है, अन्य नही है, जीव स्वरुप है। क्योंकि सभी पदार्थ अपने परिणामरूप परिणमते हैं। आत्माका काम क्या है? आत्माका काम भाव करना है। हम आप क्या कर रहे हैं? केवल अपने विचार, केवल अपनी परिणति। वाहरमें जो कुछ होना है वह उन पदार्थोंकी परिणतिसे होता है। होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम। जगतकी परिणति स्वयमेव होती है। मैं उन परिणतियोंका करने वाला नहीं हूँ अर्थात् सवका परिणमन अपने-अपने परिणमनमें होता है। अगर तुम अपने ८-१०-१२ सालके वच्चेको कहो कि पानी ले आवो। यदि वह खेलता होगा तो खेलमें लग जावेगा, पानी नही लावेगा। तो आपका वच्चोंपर भी अधिकार नही हो सकता है, क्योंकि उनकी परिणति उनमेंही है। अभी कोई सोचे कि इन नौकरोंपर मेरा अधिकार है तो ऐसा सोचना सही नही है। नौकरोंको खुदगर्जी लगी है वे अपने परिणामोंमें प्रेरित होकर अपने हितके लिए वे अपना काम करते है, वे मालिकका कुछ काम नही करते हैं। मालिकके कहने से वे काम नही करते। जब नौकरोंके मनमें न रहे तब वे जवाव दे देते हैं कि हिसाव करलो। सो अब समझ गए ना सब, कि अपने ही परिणामोंसे सब परिणमते हैं।

भ्रमकी भ्रामकता—भैया, यह भ्रम ही ससारको रुलाने वाला है, जो यह विश्वास वना है कि पर पदार्थोंमें मेरा अधिकार है। ऐसा झूँठा विश्वास ही दु ख देने वाला है। देखो भैया—दूसरोंका मोह देखकर उनकी वेवकूफी जल्दी समझमें आ जाती है। दूसरोंको देखकर कहते कि यह देखो धनके पीछे परेशान है, पर खुदको नही देखते। यही तो पर्यायवुद्धिकी वात है, जितने खेल हैं वे सव दृष्टिके खेल हैं, तुम्हारी दृष्टि निर्मल हो जाय तो आनन्दमग्नता हो जाय। और, अगर दृष्टि निर्मल नही रहती तो दु खमें डूबे हुए रहना ही पडेगा।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि होनेका नियोग—एक वार राजाने मत्रीसे पूछा कि यह तो वतलावो कि अपने राज्यमें भले लोग कितने हैं और वुरे लोग कितने है ? तो वह मत्री राजासे कहता है कि सभी भले हैं और सभी वुरे हैं। राजाने कहा कि ऐसा कैसे ? जो वुरे है वे भले कैसे ? जो भले हैं वे वुरे कैसे ? मत्रीने कहा कि हम वतलावेंगे। तो मत्रीने दो चित्र एकसे ही स्त्रीके समझो या पुरुपके, वनवा करके जैसे घटाघर होता है ना, वही ले जा कर एक चित्र रख दिया और सूचना लिख दी कि इस चित्रमें जिस भाई को जो चीज वुरी लगती हो उसमें निशान लगादे और

अपने साइन करदे। वहुतसे लोग आए, देखते हैं कि इसमे कान ठीक नही, इनमे नाक ठीक नही, १०-२० आए सब इस फिराकमे रहे कि इसमे बुरी चीज क्या है ? सभीने कुछ न कुछ बुराई वताई और अपने साइन करदिए। बुरी लगी चीज पर निशान लगा दिए। दूसरे दिन उसी प्रकारका दूसरा चित्र रख दिया और लिख दिया कि इस चित्रमे जिस भाईको जो चीज अच्छी लगती हो उसमे निशान लगादें और अपने साइन करदे। दूसरे दिन जो फोटो रखा था उसमे जरा भी अन्तर न था, पर वे ही लोग जो पहिले बुरा वताते थे सोचने लगे कि इसमे अच्छी चीज क्या है सभी ने उस पर निशान लगाया कि इसका कान अच्छा है, इसका नाक अच्छा है और अपने साइन कर दिए।

वे ही लोग जो पहिले वुरा वतलाते थे अव अच्छा वतलाते हैं, ऐसा दिखाकर मत्रीने राजासे कहा कि महाराज देखिए जव हमने वुरी दृष्टिके लिए कहा तो सभी ने वुरी दृष्टिमे देखा और जव अच्छी दृष्टिके लिए कहा तो सभीने अच्छी दृष्टिमे देखा। सो जैसी दृष्टि करो वैसा ही दीखता है। अव इन ससारी जीवोमे देख लो ये भ्रमकी दृष्टि करते हैं तो रुलते फिरते हैं। चाहे जहाँ रहे घरमे या दूकानमे, यह विचार करो कि अनेको दिन हो गए वाहरी पदार्थोकी वाते करते करते, वाहरी पदार्थोको अपना मानते मानते, पर अवतक लाभ क्या रहा ? जीवमे कपायकी भावना न आए और यथार्थ श्रद्धाकी वात न्यायकी वात आवे तो समझो कि अव प्रेरणा जगी है। अगर ऐसी प्रेरणा जगी है तो समझो कि धर्मका फल पाया है।

अन्त शुद्धि विना धर्म कहाँ—भैया, अन्त शुद्ध प्रेरणा विना तो धर्मकी धुन भी एक मोहका कार्य है। मन्दिरमे पहुँचते हैं तो भक्ति भावसे भर जाते हैं, पर जव मन्दिरसे निकलते हैं तो भिखारीको भीख भी नही देते और कहते, जा, जा, हट, हट। सत्य लक्ष्य विना अनेक प्रकारके कपाय जागृत हो जाते हैं। जव मन्दिरके अन्दर रहते है तो केवल मन्दिरमे पार्ट अदा करते है और जव सस्थामे आते हैं तव सस्थामे झगडे किया करते हैं, सस्थाका, समाजका पार्ट अदा करते है। तो यह मनुष्य जहाँ रहता है वही अपना पार्ट अदा करता है। गाँठमे कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव उतरा है क्या ? मालूम होता है कि कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव नही उतरा है।

कल्याणका कारण मौलिक दर्शन—हे आत्मन् ! मूलमे ख्याल होना चाहिए कि हमारा काम तो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका है। सो हम इस प्रकारके काम करते रहे जो कि आत्माके अनुकूल पडें। कितने ही पार्ट ऐसे अदा किए जाते हैं कि स्वाध्याय भी कर रहे होगे जाप भी कर रहे होगे, , ऐसे भी पार्ट अदा करते हैं, विना स्नान किए खाना भी नही खाते, सव कुछ श्रम करें किन्तु पार-

मार्थिक कल्याणमय वह एक बात तो नहीं रही। एक सस्कार ही ऐसा पड गया है कि बिना स्नान किए खाना नही खाते, अन्य भी बाह्य पवित्र वृत्ति करते। भैया, मन्दिरमे इस प्रकारके भाव लेकर जावो कि भगवान मेरेमे जो राग आ गए हो वे मुझसे दूर हो। मै २३-२३॥ घटे परिवार व ममताके पीछे ही परेशान रहता हूँ, हे प्रभो! इन परेशानियोंसे दूर होने का मुझमे बल प्रकट हो। यदि इस प्रकारका ख्याल करो तो शान्ति मिल सकती है।

दुर्लभ नर जन्मको सफल करने वाली एक दृष्टि—भैया, सबसे मुख्य तो यह दृष्टि बनाओ कि मै आत्मा सबसे निराला केवल स्वरूपमय हूँ और जो कुछ मैं करता हूँ मात्र अपनी ही भावनाओंमे करता हूँ। अपने भावोंके अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है। यदि ऐसी दृष्टि हो गा बाहरी पदार्थोंमे आसक्ति नही हो सकती है। मैं सबसे न्यारा हू, केवल अपने ही भावोंका करने वाला हूँ, मैं ही अपने भावोंका भोगने वाला हूँ, एक चेतन मन हूँ। इन भावोंमेही धर्मका पालन है। इतनी बात जब देखने मे आ जाय तो समझो कि मैंने धर्म किया।

धर्मकी निजमे उपलब्धि—धर्म आत्माका काम है, धर्म आत्मासे प्रकट होना है और आत्मामे ही धर्म मिलता है। धर्म हमारा कही बाहर नही है। व्यवहार धर्म तो हम अपने ज्ञानको विशुद्ध बनानेके लिए करते हैं, विषय कषायोंको, आपदाओंको हटानेके लिए करते हैं। सदा इतनी बात ध्यानमे रहे कि मैं सबसे न्यारा हूँ, मैं ही अपने भावोंका कर्ता हूँ और मैं ही भोगने वाला हूँ। ऐसा विश्वास होना ही धर्मका प्रारम्भिक पालन है।

आत्माकी परिणतिक्रियाके प्रयोगका स्थान—यहाँ यह कहा जा रहा है कि आत्माका कर्म क्या है? याने आत्मा काम करता क्या है? आत्मा तो एक ज्ञानानन्दभावका पिण्ड है। उसमे रूप, रस, गध, स्पर्श आदिक कोई मूर्तिपना नही है, केवल भावात्मक पदार्थ है। जानना होगा, निराकुलताका अनुभव होगा या विकृत अवस्था भी हो तो सुख दुखका अनुभव होगा, वे सब भावात्मक चीजें रही। यह आत्मा केवल भाव बनाता है, भावके अलावा और कुछ नही कर सकता। वैभव, भोगसाधन बिल्कुल भिन्न चीज है, उसमे आत्माका कोई स्पर्श नही है। परिवारके लोग बिल्कुल भिन्न हैं उनका करेगा क्या? पर वस्तुवोंमे जो श्रम किया जाता है, स्नेह किया जाता है, उसके कारण विपदा अपनेको उठानी पडती है।

अचेतनकी अपेक्षा चेतन परिवारसे हानिकी अधिकता—भैया, इस हानिके मामलेमे पूछो तो जड पदार्थ अपनेको उतना नुकसान नहीं पहुचाते जितना कि कुटुम्ब मित्र ये चेतन पदार्थ नुकसान पहुँचाते हैं। घर है, सुन्दर बना है, अथवा

और चीज है—जैसे घडी है, रेडियो है, सुन्दर है तो हम अपनी तरफसे, राग बढता हो तो बढाते हैं, घरकी तरफसे, घडीकी तरफसे, रेडियोकी तरफसे कोई अनुक्रिया नही होती। किन्तु कुटुम्ब आदि चेतन पदार्थ अपनी ही खुदगर्जीके कारण ऐसी चेष्टा करते हैं कि उसको विषय बना कर हमे राग उत्पन्न हो जाये। मित्र हो, पुत्र हो, स्त्री हो, ये लोग ऐसी मोहक बातें करते हैं कि यदि कुछ ज्ञान आना चाहता हो, वैराग्य आना चाहता तो ज्ञान और वैराग्यमे बाधा पहुँच जाय। खैर यहाँ किसी अन्यपर क्या एहसान देना। आत्माके जो कार्य होते हैं वे कार्य अन्य सबसे भिन्न रूप हैं, उस भावके कार्यको और दूसरे करेंगे क्या? यह जीव स्वयं ही स्वतन्त्र वस्तु होकर खुद कार्यको करता है। तो आत्मा ही स्वतन्त्र होकर अपने परिणामोंको करता है। और, वह कार्य आत्माका कर्म है।

शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान —आत्माका कर्म ज्ञानावरणादिक नही है, वह तो पौद्गलिक है, भिन्न चीज है। *अन्यमे यह आत्मा करेगा क्या? उनका यह करने* वाला नही है। भले ही द्रव्यकर्म आत्माके साथ है फिर भी वह पर द्रव्य है परकी परिणतिको पर पदार्थ नही कर सकते। आत्मा तो केवल परिणामको करता है। चाहे अच्छा परिणाम करले, चाहे गदा परिणाम करले। यही आत्माकी करतूत है। इसके आगे आत्माका कोई कर्तव्य नही है। परमार्थमे देखा जाय तो आत्मा अपने ही परिणमनको करता है, दूसरेके परिणमनका कर्त्ता नही है। ये जितने जीव हैं, कोई हल्ला कर रहा है, कोई डोल रहा है, सब अपने भीतरमे अपनी कम्पनी चला रहे हैं। बडे हो, छोटे हो, जिसका जैसा परिणमन है वे अपने परिणमनसे अपने भावोंकी कम्पनी चला रहे हैं, भावोके अलावा और कुछ नही कर रहे हैं। यही बात जब समझमे आवे तो इसमे ज्ञानका उदय होता है। और जब ज्ञान उजेलेका उदय हो तो इसको शान्ति मिलती है। तो जीवकी शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान हुआ।

भैया, मेरा जगतमे कही कुछ नही है। मैं निर्लेप हूँ निराला हूँ, अपने स्वरूप रूप हूँ, जो कुछ करता हूँ अपनेमे करता हूँ। अपनेसे आगे मेरा कोई कर्म नही है। इतनी बात समझमे आवे तो यह जीव निष्काम बन सकता है, निष्काम हो सकता है। तो यहाँ यह सिद्ध हो गया कि मैं मकानका तो करने वाला क्या, कुटुम्बका करने वाला क्या, मे तो द्रव्यकर्मका भी कर्ता नही हूँ। तब फिर यह शका होती है कि द्रव्यकर्मका करने वाला कौन हुआ? मैंने तो केवल भाव किया, कर्म फिर बन कैसे गए जो आत्माके साथ चिपटे हुए है, जिनका निमित्त नैमित्तिकसम्बन्ध चल रहा है।

द्रव्यकर्मका करने वाला कौन? —भैया, ये द्रव्य कर्म जो बनते हैं वे पुद्गलोके ही परिणमन है। पुद्गलोका जो परिणमन है वह स्वय पुद्गल ही है।

आत्माका जो परिणमन है वह आत्मा ही है। इसी तरह पुद्गलोंके जो और और परिणमन हैं वे भी पुद्गल ही है,। जितने भी पदार्थ होते हैं, परिणमनतत्त्व होते हैं, वे अपने परिणमनस्वरूपके ही कर्ता होते हैं, तो पुद्गल एक अपने परिणमनस्वरूपका कर्ता है। तो हम अपने परिणमनसे अनन्य हैं, अभिन्न हैं, पुद्गलका जो पर्याय होता है वह पुद्गलसे अभिन्न है। कार्माण वर्गणावोंमे जो कर्मरूप पर्याय होते हैं वे उन कार्माणवर्गणावोंसे अभिन्न हैं। तो कर्मोंने कर्मका काम किया और आत्माने आत्माका काम किया। कर्म न आत्माका परिणमन करते है और न आत्मा कर्मोंका परिणमन करता है, सबका अपने आपमे परिणमन अपने आप होता रहता है।

परस्पर कर्तृत्वका अभाव —जैसे कोई दो बालक मित्र बन गए तो उन बालकोंका एक दूसरे बालकने कोई काम नही किया, न एकने दूसरेका कुछ किया और न दूसरेने उसका कुछ किया, सब कोई अपने आप अपना काम करता है। किसी पदार्थका कभी कोई दूसरा कर्ता नहीं होता है। अगर कर्ता हो जाता तो आज दुनिया साफ हो जाती। यदि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका करने वाला हो तो उसके करनेमे व्यभिचार क्यों आये कि जो करना चाहते हैं वह होता नही, सोचते कुछ और हैं, हो कुछ और ही जाता है। करना चाहते हैं दूसरोंके लिए खराब, पर उनके लिए हो जाता है अच्छा। कभी करना चाहते हैं दूसरोंका भला और हो जाता है उस भलेके बावजूद भी बुरा। तुम बालककी आंखमें अजन सलाईसे लगाते हो उसके फायदेके लिए, पर कहो हाथ डिग जाय और आंख फूट जाय तो ? तो करना तो चाहते थे भला, पर बुरा हो गया। जैसे किसीके सिरमे किसी प्रकारका रक्त विकार होगया है, बडा भारी दर्द है, और कोई ढेला मारे उसके सिरपर उसको सतानेके लिए, पर यदि उस ढेलेके लगनेसे उसके सिरमे विकारवाला खून निकल जाय और वह ठीक हो जाय तो यह हो गया उसके फायदेके लिए। तो कोई किसीका कर्ता नही है, सभी जीव अपना-अपना पुण्य पाप लिए हुए है, उनका काम अपने आप चलता रहता है। हम तो केवल अपना परिणमन करते है, और कुछ नही।

दूसरेको दु खी करनेके भावमे खुदको ही क्लेश होता निश्चित —देखो दूसरेको दु खी करनेका परिणाम किया, तो परिणाम ही तो किया, दूसरेको दु खी तो नही किया, और दु खी करनेका जो परिणमन है वह परिणमन मलिन है कि विशुद्ध है। अपना परिणमन मलिन करेगा तो उसका फल उसको मिलेगा कि नही ? मिलेगा। दूसरेको दु खी करनेका भाव करेगा तो खुदको तो नियमसे दु खी होना ही पड़ेगा, दूसरा कोई दु खी हो या न हो। इसमें रच भी सन्देह नही है दूसरा दु खी भी

होगा तो उनके दु खी करनेके भावके कारण दु खी न होगा, उसका उदय ही ऐसा होगा, उसका परिणाम ही ऐसा होगा कि वह दु खी होता रहेगा। यदि किसीको दु खी करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम्हारा दु खी होजाना बिलकुल निश्चित ही है।

दूसरोंके प्रति सुखकी भावनामे सुख निश्चित .—इसी तरह जो दूसरोंके सुखी करनेका भाव बनाए तो यद्यपि वह दूसरा चाहे सुखी न हो क्योंकि उसका उदय उसके साथ है तुमने जो दूसरोंके सुखी होनेका परिणाम बनाया सो वह तुम्हारा परिणाम विशुद्ध है कि नही ? विशुद्ध परिणाम करोगे तो उसका फल विशुद्ध होगा। दूसरोको सुखी करनेके भावमे खुद निश्चित सुखी होगा, वहाँ दु ख न होगा , क्योंकि उसका परिणाम इतना सावधान है कि दूसरे जीवोंकी उसे खबर है और दूसरोको सुखी करनेका उसका परिणाम बना हुआ है। वह सावधान है, निर्मल है, इस कारण उस जीवको सुख होगा, दु ख न होगा। तब यही सिद्ध हुआ कि अपने ही परिणामके कारण अपना सुख होता है और अपने ही परिणामके कारण अपना दु ख होता है।

दु खपूर्वक दुःख देनेकी भावना संभव .— भैया ! सुखी होनेका ही अपना काम करो, दु खी होनेका काम क्यो करते हो। और भी अनुभव करके देखलो। अगर तुम बुरे परिणाम करके दूसरोंके विरूद्ध कुछ करना चाहते हो तो कहनेमे पहिले दिल काँपने लगेगा। अगर तुम दूसरेको दु खी करनेके लिए भाव बनाते हो तो पहिले तुम्हे दु खी होना पडेगा। जब तक खुदको दु खी नही कर लोगे, खुदको नहीं तडफा लोगे तब तक तुम दूसरोको नही तडफा सकते। याने दूसरोके तड़फानेके बुद्धिपूर्वक निमित्त नही हो सकते। तो पहिले अपनेको दु खी कर पाया तो दूसरोको दु खी करनेकी बात कह सके। और जब दूसरोको दु खी होनेकी बात कह सके तो दूसरे भी जवाब देने लगे, दु खी करने लगे। इससे उसका दु ख और बढ जायगा। तो दूसरी आपत्ति यह आई। तीसरी आपत्ति यह आती है कि उस जातिके बुरे कर्म बनेंगे। तो उन बुरे कर्मोका जब उदय आयगा तो आगे और दु ख भुगतना पडेगा। तो दूसरोको दु खी करनेके भावमे तो दु ख ही दु ख आयगा। उसमे सुखकी आशा न करो।

सुखी रहनेका उपाय—यदि सुखी रहना चाहते हो तो दूसरे जीवोंके सुखी रहनेकी भावना अपने मनमे बनाओ। पहिली बात तो यह है। सब जीवोको अपने से भिन्न जानकर किसीमे मोह मत लावो, यह दूसरी बात है। ये दो काम यदि करोगे तो अपनेमे शान्ति बढती जायगी। एक तो किसी जीवको दु खी होनेकी भावना न करो, सुखी होनेकी भावना करो कि सब जीव सुखी हो, कोई भी प्राणी दु खी न हो। कोई वैरी हैं, कोई विरोधी है, उसके प्रति भी यह भाव लावो कि वह सुखी रहे तो तुम सुखी हो जावोगे। एक काम तो यह करके देखलो और दूसरा काम यह करो

कि घरमें रहते हो, वहाँ स्त्री हैं, पुत्र है, उनके मध्य रहना होता है फिर भी सही बात तो मनमें लावो कि ये मेरे कुछ नही है, ये भिन्न-भिन्न सत्तावाले हैं, इनकी सत्ता इनके साथ है, अन्य किसीसे रंच भी सम्बन्ध नही है। व्यावहारिक सम्बन्ध तो इनका यो बनाया गया कि वैराग्यहीनताके कारण साधु तो बन नही सकते थे, महाव्रत तो पाल नही सकते थे, और यहाँ विषयकषायोकी वेदना सह नही सके, सो ऐसा बन जाना आवश्यक था कि चलो अब देशव्रतमे ही महापाप तो छूटे, इसलिए अब रहना ही पड रहा है परन्तु यहाँ किसी का है कुछ नही।

आत्माकी यथार्थ भावना आनन्दप्रदायिनी —मैं तो सबसे निराला शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ। मैं अपने ही परिणामोकी करता हूँ। तो मेरा कार्य मेरेसे बाहर है नहीं। मेरा दुनियामे है क्या ? केवल आत्मा ही मेरा है, परिणाम करता हूँ, उन परिणामोंका निमित्त पाकर ये ज्ञानावरणादिक कर्म, कर्मरूप परिणाम जाते हैं। वे अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं, हम अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं। किसी एकका दूसरेके साथ करनेका सम्बन्ध नही है। पुद्गलमें जितने परिणमन हो रहे वे पुद्गल ही हैं। पुद्गलका परिणाम पुद्गलसे अभिन्न है। उस पुद्गलमें जो परिणमन हो रहा है बस यही उस पुद्गलका कार्य है। इसके आगे पुद्गलका कार्य नही है। पुद्गलके कार्य पुद्गलमय हैं और जीवोंके कार्य जीवमय हैं। तुम केवल भावोंके कर्ता हो, अन्यके नही। ऐसा बिल्कुल पूर्ण नियम है कि सभी द्रव्य केवल अपने अपने परिणमन करते हैं और अपने अपने परिणमनरूप जो कार्य हैं वे उन उन रूप ही होते हैं, कोई कार्य किसी दूसरे रूप नही हो सकता है। हम हाथ हिलाते हैं तो हाथका जो हिलना है वह हाथमय है कि कमण्डलमय है ? हाथमय है। हाथसे अभिन्न है। इसी तरह जितने भी पदार्थ हैं, उन पदार्थोंके जितने कार्य हैं वे उन पदार्थोंमय हैं, अन्यरूप नही हैं।

भैया, जीवोकी जो क्रिया है वह जीवमय है, जीव केवल अपने भावोका करने वाला है, किन्ही अन्य पदार्थोंका करनेवाला नही है। इसलिए हम अपने आपमे विश्वास जमाये रहें और सब द्रव्योको स्वतन्त्र स्वतन्त्र निरखते रहें। किसीके आधीन कोई दूसरा पदार्थ नही है, किसी दूसरेके आधीन कोई दूसरा जीव नही है। प्रत्येक जीव केवल अपने परिणामरूप परिणमते हैं, इस तरहकी दृष्टि बन जाय तो मोक्षका मार्ग मिलेगा। छूटना है ना पर पदार्थोंसे तो-पर पदार्थोंसे छूटनेका काम तभी बनेगा जब यह मानलें कि हम पर पदार्थोंसे अलग ही है। और पर पदार्थोंमे हम मिले हुए हैं ऐसा परिणाम रखो और चाहो कि हम पर पदार्थोंसे छूट जाए तो क्या यह हो सकता है ?

मुक्ति के लिए पृथक्त्वभावनाकी समर्थता —यदि संसारसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम संसारसे न्यारे हैं। कर्मोंसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम कर्मोंसे न्यारे हैं, शरीरसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम रागादिक भावोंसे न्यारे हैं। न्यारेपनकी भावनाका परिणाम न्यारा हो जाना है। यदि न्यारापनका विश्वास नहीं है और छूटना चाहते हो तो यह श्रेर त्रिकाल भी नहीहो सकता है। सत्य ज्ञान किए बिना, सबसे न्यारा अपने को समझे बिना मुक्तिमार्गका लाभ हो ही नही सकता। भैया, आनन्द तो न्यारा रहनेमें है। अनन्तताने न्यारा रहनेका उपाय यह है कि पर पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप समझलो। सारे पदार्थ स्वय ही भिन्न हैं, ऐसी केवल अपनी दृष्टि जगाओ, सारे पदार्थोंसे मोह हटावो तो सबसे छूटनेका उपाय बन सकता है। सबसे छूटे बिना चैन न मिलेगी। जब पर पदार्थोंसे हटोगे तभी चैन मिलेगी। अपने ज्ञानको जगावो और अपने आप स्वय ज्ञान परिणतिके कारण सुखी होओ।

प्रत्येक परिणमनोंकी परिणमनोके आधारसे अभिन्नता —भैया आज यह प्रवचनसारकी १२२ वी गाथा आरही है जिसमे यह बताया है कि आत्मा कर्म द्रव्यका कर्ता नही है क्योंकि जो भी परिणमन होता है वह परिणमन परिणामोंसे अभिन्न होता है, अन्य द्रव्यसे भिन्न होता है और वह परिणामी परिणामस्वरूप अपने भावोंका कर्ता होता है। यह वस्तुमे होने वाली बात वस्तुमे ही कही गई है। जीवका जितना भी काम है जितना भी परिणमन है वह जीवमयी है। जीवका काम पुद्गलमयी हो जाय सो ऐसा नही होता। पुद्गलका काम जीवमयी हो जाय सो नही होता। जगतमे पदार्थ अनन्ते है और सभी अपनी अपनी गाठमे परिणमनशीलता रखते हैं और इस परिणमनशीलताके कारण परिणमते चले जाते हैं। पर उनके परिणमनेमे एक खास विशेषता यह है कि वे यदि विभाव रूप परिणमें तो किसी पर द्रव्यका निमित्त पाकर ही वे परिणमते हैं। और इसी कारण जितने भी विभाव परिणमन है वे स्वभाव नही कहला पाते। परभावकी स्थितिमे भी परकी सन्निद्धि मात्र निमित्त है, वहाँ उपादान अपनी ही परिणतिसे परिणमता है। विभाव रूप परिणमनका यह ढग है।

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भो निज अस्तित्वकी दृढता—इतना होनेपर भी वस्तुके चतुष्टयको देखो। प्रत्येक वस्तु अपने ही प्रदेशोंमे हैं, अपने ही गुणो मे है, और अपने ही गुणोंके परिणाम रखते हैं। यह व्यवस्था ६ साधारण गुणोंमे अपने आप हैं। इस बातको बतानेके लिए आचार्योंने ६ साधारण गुणोका वर्णन किया है। पदार्थ है, न तो नही कहेंगे। "है" दिखते हैं और लगते हैं कि हैं, कुछ भी न हो और मात्र मायाजाल हो, ऐसा तो नही है। है, यह अस्तित्व गुण कहता है।

वस्तुत्व गुणकी समर्थता—भैया! अस्तित्वने तो यह ही बात बतायीकि "है"। और है का नाम सुनकर वे पदार्थ उद्दण्ड हो चलें कि तुमको अस्तित्व गुण ने "है", दे दिया, आजादी दे दिया कि तुम हो। अब वे पदार्थ कहें कि हम किसी रूप हो। पर रूप हो जांय, हम हैं ना? किसी रूप हो जायें, हो जायें। जैसे कि यह घडी है। हम नाम लेकर न कहे, तो सब रूपकी "है" लगायेंगे हम तो। यह वस्तु चौकी है, घडी है, दरी है, अन्य अन्य है, ऐसी उद्दण्डता करने लगे, तो कर नहीं सकता, क्योंकि उस उद्दण्डताको मिटानेके लिए दूसरा गुण है वस्तुत्व, जो यह समझाता है कि यह अपने रूपमे तो है और परके रूपमे नहीं है। इस अस्तित्व गुणके नाजायज फायदे को रोकनेके लिए वस्तुत्व गुणने एक कन्ट्रोल कर दिया कि वह अपने स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपमे नहीं है।

द्रव्यत्व गुणकी समर्थता—दो बातें हो जानेपर भी अभी काम नहीं चला। अर्थक्रियाकी बात नही हुई जिसमे "है" मे खतरा हो गया। अर्थक्रिया नही है तो "है" का रूप क्या है। वह सद्भूत वस्तु किस रूपमे समझमे आए। यदि उसमे परिणमन नही हैं, उत्पाद नही है, उसका पर्याय नही बनता तो पर्यायरहित तो कोई होता ही नही है। अस्तित्व और वस्तुत्वमे तो अभी पर्यायकी बात नहीं हुई थी, वह तो है की बात कह रहा था। अस्तित्वसे है, वस्तुत्वमे अपने रूपसे है, परके रूपमे नहीं है। पर अभी पर्यायकी बात नही आयी जो कि अवश्यम्भावी है, क्योंकि पर्याय यदि नही हो तो "हैं" का भी अभाव हो जाता है। सो वे दोनोकी दोनो मिटनेको थीं तो द्रव्यत्व गुणने उन दोनो गुणोंको नष्ट होनेसे बचाया। है, अपने रूपमे हैं, पर रूपमे नही है और प्रति समय परिणमता रहता है। यह द्रव्यत्व गुणकी बात बताई।

अगुरुलघुत्व गुणकी समर्थता—प्रतिसमय परिणमता रहता है इतना हुकुम मिल जानेके बाद द्रव्यत्व गुण भी उद्दण्डता मचा सकता है हमको तो यह सहूलियत मिली है कि हम परिणमते रहे। किसी रूप परिणमते रहे परद्रव्यरूप परिणम जायें। किसीभी रूप परिणमे, हम तो परिणमेंगे। परको परिणमा देना और पररूप परिणम जाना इन दोनो बातोंका अर्थ एक है। भैया, चाहे यह कहो कि पररूप परिणम जाय, चाहे कहो कि परको परिणमा दे, मतलब एक है। हां, तो यों द्रव्यत्वगुण उद्दण्डता मचाने लगे तो उसकी रोकथाम अगुरुलघुत्व गुणने की कि हम न लघु रहेंगे और न वजनदार। पदार्थ वजनदार कब बनते? विवक्षित पदार्थकी पर्याय तो है ही और उसमें अन्य द्रव्यके गुण भी ठूस दिए जायें तब वजनदार बन जांयगे। तथा पदार्थ लघु कब होंगे, जब इसकी पर्याय दूसरोंको दे दी जाय। मेरे मे अन्य द्रव्यकी पर्याय भी ठूस दी जाय तो हम वजनदार हुए, और मेरे जो गुण हैं वे निकल कर दूसरेमे

पहुँच जायें, मेरे मे जो परिणतियाँ हैं वे निकल कर दूसरोंके पास जायें तो हम लघु बन जायेंगे। किन्तु पदार्थ गुरु लघु नही हैं। पदार्थ अगुरुलघु है। यह परमार्थके लिए कल्याणके लिये आध्यात्मिक कहिए, वस्तुका स्वरूप कहिए, उसकी बात चल रही हैं। अगुरुलघुने क्या निर्णय किया है—स्पष्ट शब्दोमे यह कह लिया जाय कि हम परिणमेंगे तो जरूर प्रतिक्षण, मगर न परके द्रव्य रूप बनेंगे, न परके पर्याय रूप बनेंगे।

और भी सूक्ष्मतासे उस वस्तुके ही एक अत स्थितिमे पहुँच कर देखें तो यह यह भी नही हो सकता कि उसी वस्तुका एक गुण उसी वस्तुके दूसरे गुणरूप बन जाय। उस वस्तुके एक गृहविभागकी बात कह रहे हैं। वह द्रव्य परके गुणरूप न परिणमे परके पर्यायरूप न परिणमे, यह तो एक वैदेशिक नीति है। मेरी खुद की घरकी नीति क्या है कि एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे। एक गुणकी पर्याय दूसरे गुणकी पर्यायरूप न बन जाय। ऐसी ही बात है। कोई कानून नही बनाया जा रहा है। नियम नही बनाया जा रहा, चीज कैसी है, उसके समझनेके लिए यही उपाय है। वैसे तो व्यवहारमे देखा जाय तो कानून बनाए नही जाते हैं। कानून बनाए और चलाए भी अपने नही होते हैं। व्यवस्थामे अपने आप होने लायक बात क्या है? इस बातको कानूनके शब्दोमे जडा जाता है। इसके विरुद्ध यदि कानून बनाए जाते हैं तो फेल हो जाते हैं। यहाँ पर भी यह नियम नहीं बनाया। ऐसा नहीं है कि कोई नियम बना दिया फिर उसके मुताबिक वस्तुस्वरूप बना दिया। वस्तु जो है जैसा है, स्वय है, उसका ज्ञान कराया जा रहा है।

प्रदेशवत्व गुणकी शरणता—यहा तक तो ये सब बातें चली। वस्तुके गुण सब कुछ हो पर जबतक हमे उस वस्तुका आकार समझमे न आये, आकारका मतलब पौद्गलिकमे नही, वस्तु स्वक्षेत्रमे कितनी फैली है, यह बात समझमे जबतक न आये तबतक वस्तु समझमे न आयगा। इसका आधार क्या है। पहिलेके दो गुणसे तो "है" को सम्भाला और बादके दो गुणोंसे "परिणमता है" को सम्भाला। भैया, ये दो खास चीजें हैं कि है और परिणमते हैं। प्रत्येक पदार्थ हैं और परिणमते हैं। परन्तु जब तक इनका आधार नही मालूम पडता और हम जबरदस्ती कह रहे हैं कि भैया दो बातें देखो, तो कहनेसे क्या, तब तक अन्य बातें भी नही समझमे आ सकती हैं। सो इन चारोको ठीक करने का श्रेय है—प्रदेशवत्वगुणका। इसने बताया कि पदार्थ अपने अपने प्रदेशोको लिए हुए हैं।

प्रमेयत्व गुणकी व्यवस्था—इस प्रकार वस्तुके ५ साधारण गुण हुए। लो, वस्तुकी वस्तुगत व्यवस्था बन गई, किन्तु वह जब अपने ज्ञानमे ही नही, समझमे ही

नही तो समझने वाला तो जीव है उस जीवके ज्ञानमे वह कुछ नही है। वह सब कुछ है तब जब वह जीवके ज्ञानमे है। अभी इस सम्बन्धमे दो ढगसे बातें कही जावेंगी। पहिले तो यो ही ले लिया जाय कि मानो सब कुछ है पर उनका जानने वाला कोई नहीं है अर्थात् अगर प्रमाता नहीं है तो क्या है। तो वे सब जब प्रमेय हो तब हैं। किन्तु इस ढगमे एक प्रश्न यह हो सकता है कि भाई तुम जानो या न जानो, वह तो है ही है। वह प्रमेय हो या न हो, ५ साधारण गुण तो हैं ही। अभी एक ढगसे बात कहते हैं, दूसरे ढगमे फिर कहेंगे। अभी तो यह बात आई कि कोई भी पदार्थ ज्ञानमे है तो है अन्यथा "है" बताने वाला कौन है?

इसको दूसरी तरहसे देखो कि आत्मा भी तो ६ साधारण गुण वाला है, उसमे यह है आत्मा, इसे कैसे जानोगे। तो असाधारण गुणसे यह जान लो कि जो चैतन्यात्मक है वह है आत्मा। यह जानन देखनहार है, ज्ञाता द्रष्टा है, ज्ञानस्वभावी है, याने इसका काम जानना है और परिणमना है, जाननरूप परिणमना है। बस यही जाननरूप परिणमता है। जो सत् है उनका जितना रूप है वह सब जाना जाता है। क्यों जी! उस सत्मे एक चौथाई जानें तो क्या ऐसा हो सकता है? नही हो सकता है। यह तो जाननरूप परिणाम रहा है। इसका यह मतलब नही है कि कुछके जानन रूप परिणमे और कुछके जानन रूप न परिणमे। यह तो जितना सत् है सबके जाननरूप परिणमता है। फल यह निकला कि यह जाननरूप परिणमता है तो वह समस्त अर्थ जितना है उतनेके जानन रूप परिणता है। तब फिर सब ज्ञेय बन गए, और यह ज्ञाता बन गया। लो, यो सबमे ज्ञेयत्व सिद्ध हुआ और आत्मामें ज्ञातृत्व सिद्ध हुआ। रही विकारस्थितिकी बात सो इस स्थितिमे तो हम सबके ज्ञानरूप नही परिणमते, मगर यहाँ तो स्वभावकी बात कही जा रही है। आवरण खतम होनेपर वही विकास यहाँ आ जायगा। स्वभावकी बात है, स्वभावका वर्णन और पूर्ण विकासका वर्णन एक समान होता है।

स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानताका दृष्टान्त—जैसे निर्मल जलका वर्णन और जलके स्वभावका वर्णन कीजिए। निर्मल जलका क्या स्वरूप है? समझमें आ रहा है, क्योंकि निर्मल जल निर्मल पर्यायरूपमे स्थित है जो बिल्कुल स्वच्छ है जल ही जल है, और जो कुछ भी समझे, शब्दोंसे क्या कहे समझमे आ गया। अब देखिए—जलका स्वभाव कैसा होता है? वही बात, इतनी ही बात यहाँ कहनी पडेगी तब जलके स्वभावको समझ पायेंगे। एक कीचडवाला जल रख दें और पूछा जाय कि जलका स्वभाव क्या है? तो यह इतना ही दृष्टिमे आना चाहिए

जितना कि निर्मल जलके वर्णन करनेमे शुद्ध तत्त्व आया था। हम जलके स्वभावमें दृष्टि करते हैं तो उतनी बात यहां भी आ जायगी।

दार्ष्टान्तमें स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानता—भैया, इसी प्रकार यह आत्मा भी ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है इसको स्पष्ट सुगमतामें जानना है तो देखो पूर्णविकासी ज्ञानी आत्माको अर्थात् परमात्माको। परमात्मा ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है। कितना विशाल ज्ञान है प्रभुका ? जितना सब कुछ सत् हैं उन सबके अर्थग्रहण रूप ज्ञान है प्रभुका। ऐसा ही इस आत्माका स्वभाव है जाननेका स्वभाव है, सब जाननेका स्वभाव है। सब ज्ञेय बनेगा, प्रमेय बनेगा और यह प्रमाता है। अविवेकके कारण हम आप सबको नही जान सकते हैं, न जानें, पर दुनियामे ऐसा कोई सत् नही है जो किसीके ज्ञानका विषय न हो, और हो। अत: यह प्रमेयता भी पदार्थोंमे अवश्य आ पड़ती है।

साधारण गुणोंसे निष्कर्ष—इस तरह पदार्थों के, ६ साधारण गुण होते है। और उनको देखकर यह व्यवस्था स्पष्ट पदार्थोंमे जचती है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणामात्मकतामे परिणमता है। यह आत्मा अपने भावकर्मरूप परिणमता है। विकार अवस्थामे देख रहे हैं, निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध भी है, पर आत्मा द्रव्यकमका कर्त्ता नही है। द्रव्यकर्मका फिर कर्त्ता कौन ? द्रव्यकर्मका कर्ता वही पुद्गल है, वह ही परिणमन है, और वह द्रव्य उस परिणमनमें अनन्य हैं। मगर यह निमित्त नैमित्तिक भाव स्पष्ट है कि इसमे जब इस प्रकार विषयकषायरूप परिणमन होता है तो ये कर्माण वर्गणायें जो हैं वे खुदकी परिणतिसे कर्मरूप परिणम जाती हैं। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध है। भैया निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो परका परमें है, किन्तु कर्ताकर्मभाव नही है। दुनियाको तो यथासम्भव पूरी-पूरी जान लो और फिर आत्मकल्याणके मार्गमे अधिक लगो, तब सब बातें भूल कर केवल एक भावात्मक अपना स्वरूप लक्ष्यमे और दृष्टिमे रखोगे। इस तरह इस गाथामे यहाँ पूज्य अमृतचन्द्र जी सूरि यह स्पष्ट कररहे हैं कि परमार्थमे आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता नही है। आत्मविभावमे और द्रव्यकर्ममे मात्र निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, उनको लेकर आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है, ऐसा कहना व्यवहारमे ठीक है।

पदार्थ और परिणमन—भैया, पदार्थ है और परिणमना है, इन दोनों बातो मे ही सब तत्त्व आ गए। यह जीव है और परिणमता है। जीवका परिणमन जीवमय है अर्थात् वह जीव अपने ही स्वरूपमे परिणता है। परिणमना, यह प्रत्येक जीवका स्वभाव है। वह उत्पाद व्यय रूप परिणमन जीवमे जीवके तंत्र होकर ही होता है। यद्यपि जीवमे स्वभावविरुद्ध परिणमन उपाधिका निमित्त पाकर ही होता

है, निमित्त पाये विना नही होना, तथापि जीवके अस्तित्वकी दृष्टिसे देखनेपर देखो तो जीवमे ही कुछ वदल गया। उसकी सीमामे ही अव वह विरुद्धरूप परिणम गया। इस प्रकारके परिणमनमे जीव स्वतन्त्र होकर परिणमता चला जाता है। इस प्रकार जीवमे जो विभाव होते हैं वे जीवके तत्र होते हुए प्राप्य है।

परिणमन की स्वतन्त्रता—इस प्रकारके विकार रूप परिणमनका ढग परको निमित्त पाकर ही होनेका है, किन्तु इस वस्तुस्थितिमे तो परमार्थमे आत्मा, आत्मपरिणामात्मक क्रियाको करता है, और पुद्गल पुद्गलात्मक अपने परिणाम क्रियाको करता है। कार्माण पुद्गल आत्माके परिणमनरूप भावकर्मका कर्त्ता नही है और आत्मा भी पुद्गलके परिणमनरूप पुद्गलकर्मका कर्ता परमार्थसे नही है।

व्यवस्थित अस्तित्व—आज तक यह दुनिया क्यो टिकी है ? सारे पदार्थ आज तक यहाँ क्यो है ? इसी कारण है कि वे सव पदार्थ मात्र अपने अस्तित्वमे ही वनते हैं और अस्तित्वमे ही व्ययको प्राप्त होते है। यदि कोई द्रव्य किसी पर द्रव्यमे अस्तित्व वनाए, परिणमन करे, किसी दूसरे रूप वने, अर्थात् अन्यरूप वनें तव तो यह उस रूप वन गया, अव वतलावो कि वह निज रूप रहा कि पर रूप रहा ? कोई दूसरे रूप वन गया तो सव अन्धेर नगरी हो जाय, और अतमे सव गडवड़ होकर, संकर होकर कुछ भी न रहेगा। ये सारे पदार्थ ही इस वातके प्रमाण हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने अस्तित्वमे ही रहते हैं।

ज्ञानभूत दृष्टिकी महत्ता —यह चीज ज्ञानभूत क्यो है ? ऐसी दृष्टि अमृत क्यो है ? इसलिए कि इस दृष्टिके प्रतापसे मोह नष्ट होता है। लोकमे दु ख केवल मोहमे है और मोहका विनाश सम्यग्ज्ञानसे ही होता है। उसका उपाय दूसरा नही है। यदि एक निगाहसे देखो तो जो ये तीन कुतत्त्व हैं मोह, राग और द्वेष, इन तीनोंमे से मोहका नाश कर देना कितना सुगम है, कितना अपने आधीन है, यह वात समझमे आती है। मोहका विनाश कर लेना वडा सुगम है। राग और द्वेषका विनाश कर लेना कठिन है। राग द्वेषके विजय करनेमे तो सुगम अपना वश नही है, पर मोहका नाश करनेमें अपना वश है, क्योकि मोहका नाश होता है यथार्थ ज्ञान कर लेनेसे।

मोह, राग, द्वेषरूप परिणतिके सम्वन्धमे ज्ञानीकी दृष्टि —मोह कहते इसको ही हैं कि एकको दूसरेका अधिकारी समझना, एकको दूसरेका कर्ता भोक्ता समझना। ऐसी दृष्टि होनेका नाम मोह है, और जहाँ वस्तुस्वातन्त्र्य समझमे आया वहाँ यह दृष्टि नहीं टिक सकती कि मेरा कुछ है, इसने कुछ कर दिया है, इसका अमुक पर भोक्ता है ऐसी दृष्टि नही ठहर सकती है। ऐसी दृष्टिका न रहना ही मोहका नाश है। दृष्टिसे मोहका नाश हो जानेपर भी ज्ञानीको राग द्वेष सताते हैं।

कुछ काल तक राग-द्वेष सताते हैं, और ज्ञानी हैरान होता है । यह हैरानी ज्ञानीकी यद्यपि खतम नही होती है, उसे विकल्पोमे रहना पडता है फिर भी चूँकि रागादिक भाव द्रव्यकर्मोके विपाकसे उत्पन्न होते हैं ज्ञानके स्वभावमे नही हैं सो उनसे ज्ञानी विरक्त रहता है, उनसे हटकर अपनी ओर झुकनेका यत्न करता है । ज्ञानीके पुरुषार्थ करनेपर भी कुछ समय तक राग द्वेष रहते हैं, राग द्वेष सताते है सो समझो कि राग द्वेषोंका मिटाना मोहके मिटानेसे कठिन है । जैसे एक वृक्ष खडा है, सोचा कि इसको जडसे उखाड देना चाहिए, तो दो एक आदमी मिले और कुल्हाडी आदिसे काटना शुरु किया तो दो तीन घंटेमे गिरा देते है, और सव लोग सोचें कि इसके पत्तोंको सुखा दें, इसका हरापन खतम कर दें, जला देनेकी वात नही कहते । तो उसके हरेपनको मिटाने के लिए आप क्या करेंगे, हरापन कैसे मिटेगा ? वह दस पद्रह दिनोंमे स्वय मिटेगा, परन्तु जडसे उखाड देनेका काम इतने ही प्रोग्रामसे, इतनी ही तैयारी से दो तीन घटेमे खतम हो गया ।

मोहको हटानेमे दृष्टिवल—मोहको हटानेके लिए यथार्थ वस्तुस्वरूपको ध्यानमे लाना होगा । वस्तुस्वातन्त्र्यको ध्यानमे लानेसे मोह मिटेगा । मोह मिटाकर ही रागद्वेष मिटते हैं । ज्ञानी वार-वार ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वकी भावनाके अभ्याससे मोहको मिटाता है । मोहको मिटानेमे विलम्व नही लगता है । जैसे राग धीरे-धीरे मिटते मिटते अन्तमे कुछ सयम वाद मिटता है उसी तरह मोह धीरे धीरे मिटाते मिटाते मिटता नही है, वह तो जव मिटता है, प्राय शीघ्र मिटता है । वह यदि है तो ढगसे है और मिटता है तो मूलसे मिटता है । मोहके मिटानेमे धीरे धीरेका काम नही हैं, धीरे धीरेका मिटना तो राग और द्वेषमें चलता है । सव विषोका मूल तो मोह है जिसके नशेसे जगतके जीव अधिक परेशान हैं ।

मोहका स्तर—यह मोह है व्यर्थ का, दूसरेके मोहकी वात-जरा जल्दी समझमे आ जाती है—ये भैया इतने तो वडे आदमी हैं, इतने तो पढे लिखे हैं और इनमे इस तरहका मोह कर रहे हैं । घरमे इस तरहका मोह है, धनमे इस तरहका मोह है । देखो भाई ! दूसरेकी भूल कितनी जल्दी समझमे आ जाती है, और अपने आपमे मोहका होनेवाला नाच अपने आपकी वुद्धिमे जरा देरमे समझमे आता है । यह वात एक मोटे रूपमे व्यवहारागतके नाते कही जा रही है कि दूसरेकी भूल कितनी जल्दी ग्रहणमे आती है पर अपने आपकी वडी मूर्खता वुद्धिमत्ताके रूपमे समझी जाती है । कोई किसी काममे गुस्सा करता हो, धार्मिक काममे या किसी वातमे तो दूसरेकी गुस्सा अपनेको कैसी लगती है; हम झट कहते हैं कि देखो यह मूर्खताकी वात कररहा है । कैसा गुस्सेमे तना खडा है, कैसी पीली आँखें खोलता है, अपने आपको भूल रहा है और

खुदको गुस्सा आती है तो यह लगता है कि मैं उचित कर रहा हूँ, इसने बिल्कुल अपराध किया है। मेरा पक्ष सुधारका है, वहाँ सब गलतियाँ समझमें आती है।

ज्ञानाभ्यासका बल—कोई अपने आपमें ज्ञानका अभ्यास कर रहा है, तो जैसे दूसरेकी वेवकूफी समझमें आती है वैसी अपनी वेवकूफी झट समझमें आ जाय, इतना जब अभ्यास हो जाता है तब उस ज्ञानीके लिए ये सब विषय सुगम हो जाते हैं कि मेरा मैं ही हूँ मेरा काम मुझमें ही है। क्या काम है ? परिणमना। उसके आगे और कोई काम नहीं है। परमार्थसे देखा जाय तो परिणमन होना ही आपका काम है, इतना बोलते हुए भी संगीत आदि गाते हुए भी वहाँ देखो कि आत्मा कर क्या रहा है ? आत्मा ज्ञान और इच्छा ही कर रहा है। जैसी इच्छा की, उसके अनुकूल इस आत्मामें योग हुआ, उस प्रसगमें जहाँ कि बहुत बोला जा रहा है, गाया जा रहा है, कुछ संगीत बजाया जा रहा है आत्माने ध्यान किया, इच्छा की, और योग किया। ये परिणतियाँ आत्माके अस्तित्वको ज्ञेय करके, विचार करके देखा जाय तो ज्ञान इच्छा और योगके ढग, जाननरूप कार्यकी ये तीन परिणतियाँ, जिन्हे भेद करके कह रहे हैं, उसमें हो रही है। पर वस्तुत उसमें जो हो रहा है सो हो रहा है। उसमें एक काम हो रहा है। उस होनेवाले एक कामको हम कैसे बतायें, उन्हें गुणभेद करके कहा जा रहा है कि वह ज्ञान कर रहा, इच्छा कर रहा और योग कर रहा।

ज्ञान, इच्छा, और योगकी निमित्तनैमित्तिकपरम्परा—इस जीवमयी क्रियाके निमित्तसे याने ऐसी आत्मपरिणतिका निमित्त पाकर इस देहमें जो एक वात दोष है, वायु है जिसका शब्द कभी कभी आपके शरीरमें हरकत करता है, ऐसा जो तत्त्व है वह वायु उस योगके अनुकूल चलती है जैसा कि इसने इच्छा और योग किया, क्योंकि इस अपनी प्रवृत्तिमें और इच्छा व योगमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो वह वायु चलती है, वायुका निमित्त पाकर ये ओंठ जीभ आदि हिले और जैसे हारमोनियम सितार आदिमें अगुली धरनेपर हवा आनेपर रगड होनेपर अनुकूल शब्द निकलते हैं वैसे ही यह मुख भी एक अनोखा बाजा बजता है। जिस तरह जीभ हिले, ओंठ हिले उस तरह कठके माध्यमसे मुखसे शब्द निकलते हैं जैसे क, ख, ग, घ, ङ, विसर्ग आदि कठके माध्यमसे है, च, छ, ज, झ, आदि शब्द तालुके स्पर्शसे निकलते हैं, त, थ, द, आदि निकलते हैं दन्तस्थानमें। मूर्धामें जीभ लगानेसे ट, ठ, ड, ढ, आदि शब्द निकलते हैं, व ओंठसे ओठ मिलनेसे प, फ, व, आदि शब्द बनते हैं। भैया, एक नया बाजा रेडियोमें अक्सर बोलता है जिसको सुनकर ऐसा भ्रम हो जाता है कि इसमें कोई एक और सुरका बाजा बज रहा है। इसमें पेंच मरोडनेसे मिश्रित आवाज होती है, विचित्र ढगसे बोलता है, हारमोनियमकी तरहका होता है, बिजलीसे चलता है, इसी तरह कुछ और और हरकतें नहीं रहती हैं जिनसे भिन्न भिन्न शब्द निकलते हैं। वे निमित्तोंसे

निमित्तोकी परम्पराके द्योतक हैं। इन निमित्तोकी परम्पराकी दृष्टिसे देखा जाय तो सारे सगीत, सारे भाषणमे मूलमे मूल आत्माका परिणाम ही उस निमित्तपरम्परा मे होता है। किन्तु बहुत दूर होनेवाले परिणाममे निर्णय किया जाता है कि आत्मा ने यह शब्द बोला। देखो सब शब्दोंके बोले जानेका निमित्त है मुहके अगोका चलना। मुखके अगोके चलनेका निमित्त है वायुका चलना, वायुके चलनेका निमित्त है आत्म-प्रदेशोंमे परिस्पदका होना, आत्मप्रदेशमे इस प्रकार परिस्पद होनेका निमित्त है, आत्मामे एक प्रकारकी इच्छाका होना, इस प्रकारसे यह सब भाषावर्गणावोकी परिणतियाँ व्यक्त हुई है। इनका विश्लेषण करके जो आत्मा अनात्माका भेद प्रतिभास होता है उस भेदविज्ञानको अपने ज्ञानमे उतारना है।

भेदविज्ञान सकटनाशक—यह सब प्रताप ज्ञानका है। ज्ञान न हो तो सब व्यामोह हो जायगा। इसलिए सबसे बडा सकट जीवपर मोहका है, ऐसे प्रचण्ड मोह का सकट ज्ञानसे ही मिट सकता है। इसलिए सारे सकटोको मिटा देनेमे समर्थ वस्तुस्वरूपका ज्ञान है। वस्तुस्वरूपके ज्ञानके बलसे मोह मिटा कि नि शक समझ लीजिये कि अब सारे सकट खतम हो गए।

अज्ञानदृष्टिका-परिणाम—जैसे किसीके घर कोई इष्ट पुरुष गुजर गया और घरवाले बडी वेदनामे पडे हुए हैं तो मित्र, रिश्तेदार आदि आते हैं और समझाते हैं। यदि वे अपनी ऐसी सहानुभूति दिखायें कि बेचारा कितना अच्छा था, गुजर गया है, कितना प्यारा था, कितना मीठा बोलता था, घरमे कैसी मुहब्बत रखता था, ऐसा समझाते हैं तो बताओ, वे दु:खको बढ़ाते हैं कि काम करते हैं? बढाते हैं। उसके पास तो गये थे दु ख मिटानेके लिए पर दु ख और बढा दिया।

ज्ञानदृष्टिके परिणमनका उदाहरण:—अगर कोई उस वियोगीको ऐसा समझावे कि जगतमे अनेक जीव हैं, कोई किसी गतिसे आया है, कोई किसी गतिसे। ये सब अपने अपने कर्मोंसे जन्मते और अपने अपने कर्मोंसे मरते हैं। अकेले ही तो वे पैदा हुए हैं आयु पूरी हो गयी, मरकर चला गया, उससे किसीका सम्बन्ध नही है। वह तुम्हारा तो है नही। यदि तुम्हारा होता तो तुम्हारे पास सदा रहता। वह तो तुम्हारा दूसरे जन्मका इस कारण वैरी था जो थोडे समयके लिए आया और विकल्पका कारण बनकर चला गया। तुम्हे दु खी कर गया। यहाँ भेद विज्ञानकी बात कही जाती है। अगर ध्यानमे बैठे कि सच तो यही है कि किसीका यहाँ क्या है। थोडे से भ्रमते फिरते जीव यहाँ इकट्ठे हो गए, मिल गये पर वे हमारे नही हैं। उपरोक्त प्रकारसे जब ज्ञान होता है तो वेदना शान्त होती है।

वेदना मिटनेके कारण—वेदनाको मिटानेका प्रताप पदार्थोंके स्वरूपास्तित्व

के अवगममे ही है। उसके प्रतापमे मोहके हटनेका प्रताप होना है। मोह टला तो सारे सकट दूर हो गए। उसके भीतर आकुलता थी, बाहरके अनेको सकट छाए हुए थे, पर जब मोह चला गया तो सकट चले गए। दुकानकी फिरसे व्यवस्था कर ली, लोगोंसे ठीक ठीक बोलने लगा, आगे भी साफ साफ देखने लगा, सब ठीकसे काम होने लगा। यह किसका प्रताप है ? यह है मोह मिट जानेका प्रताप, और मोहके हटनेमे कारण स्वरूपास्तित्वके अवगमका प्रताप है।

बच्चे लोग एक छोटी कहानी बोला करते है एक स्याल था उसकी स्यालिनी भी थी, स्यालिनीके गर्भ था। स्यालसे स्यालिनीने पूछा कि बच्चे कहाँ पैदा करें ? तो स्यालने बताया कि शेरके खोहमे। शेरकी खोहमे स्यालिनीके बच्चे पैदा हुए। स्यालने स्यालिनीको कुछ समझा भी दिया। तब स्याल स्वय भीटके ऊपर चढ गया। स्यालिनी जब कोई शेर देखे तो बच्चोको रुला दे। स्याल पूछे कि बच्चे क्यो रोते है ? तो स्यालिनी कहती कि बच्चे शेरका मास खाना चाहते हैं। इस तरहसे एक, दो, चार जो भी शेर आते सब डर कर भग जाते थे, यह समझकर कि हमसे भी बढ कर यहां कोई है। तब सब शेरोंने मिलकर यह सोचा कि यह जो स्याल ऊपर बैठा है उसकी सब धूर्तता मालूम होती है, चलो अपन सब मिलकर उसके पास चलें। उसे पकड कर मार डालें। बडे बडे शेर मिल कर आए सोचा कि एक पर एक ऊपर चढ कर, पास पहुँच कर पकड कर गिरा देंगे। सबने कहा बहुत ठीक। फिर चर्चा चली कि नीचे कौन रहे ? उन सबमे एक लगडा शेर था, उसका एक पैर बहुत कमजोर था। सब शेरोंने सोचा कि यही लगडा शेर नीचे रहे, क्योकि यह दूसरेके ऊपर नही चढ सकता। सबसे नीचे लगडा शेर खडा हुआ। उसके ऊपर दूसरा, फिर तीसरा फिर चौथा आदि खडे हुए। कुछ देर तक एकके ऊपर एक चढते रहे, थोडी देरमे स्यालिनीने अपने बच्चोंको रुला दिया। स्याल पूछता है कि बच्चे क्यो रोते हैं ? तो स्यालिनी कहती कि बच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते हैं। यह सुनते ही लगडा खिसका और सब शेर भद भद गिरे। भद भद गिरने और भागनेसे सब शेरोपर ऐसा भ्रम हुआ कि वे सब फिरसे उस तरफ झाँके भी नही। देखो भैया, एकके खिसकने मे सारे खिसक खिसक कर भद भद करके गिर पडे उसी प्रकार मोहरूपी शेरके खिसकनेमे सारे सकट खिसक खिसककर व एकदम समाप्त हो जाते है।

सकटोंका पालक —अरे भाई ! सब सकटो कोपाल रखा है तो मोहने पाल रखा है। जब जीव वस्तुके स्वरूपके उन्मुख नही होता तब मोहके अधेरेमे सारे सकट पनपते रहते हैं। समस्त सकट मोहराजाकी प्रजा है।

वस्तुस्वरूपके चिरन्तन अभ्यासकी प्रेरणा :—सब प्रकारके उपाय द्वारा

वस्तुस्वरूप अपनेको ज्ञानमे लाना चाहिए, ध्यानमे लाना चाहिए, काममे लाना चाहिए जिससे कि मोह सता न सके। वस्तु स्वरूपको पूज्यपाद उमास्वामीजीने तत्त्वार्थ सूत्रमे कहा—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है, उत्पादके माने वनना, व्ययके माने विगडना, और ध्रौव्यके माने वना रहना। ये पदार्थके स्वत सिद्ध तत्त्व हैं कि पदार्थ वने रहे, विगडते रहें और वनते रहें। यदि पदार्थ वनता नही तो विगडना व वना रहना ये तत्त्व भी नहीं हो सकते। यदि पदार्थ विगडते नही तो वनना व वना रहना नही हो सकता। यदि वने नही रहते तो वनना विगडना नही हो सकता। वे अपने ही तत्त्वमे हैं और अपने ही स्वरूपमे रहकर अपनेमे ही उत्पाद व्यय करते हैं। ऐसा वस्तुगत स्वतत्र स्वरूप दृष्टिमे रहे तो हम मोहसे दूर रहकर सुखी हो सकते है।

आत्मस्वरूप —आत्मा अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है। इसका वर्णन होनेके वाद यह प्रश्न किया जा रहा है कि वह स्वरूप क्या है जिस स्वरूप से आत्मा परिणमता है ? समाधानमे पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं कि—

परिणमइ चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा॥ १२३॥

यह आत्मा चेतनास्वरूपसे परिणमता है और वह चेतना तीन प्रकारसे अभिमत है, इष्ट है, माना गया है अथवा उस चेतनारूपके परिणमनेको तीन रूपमे देखा जाता है। प्रथम ज्ञानचेतना, द्वितीय कर्मचेतना और तृतीय कर्मफलचेतना है। चेतनाके ये साधारण परिणमन ससारी और मुक्त दोनो ही प्रकारके जीवोंमे तथा मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टिमे भी घटित होते हैं। इस प्रकार साधारण परिणमनका अर्थ लगानेके लिए इसकी व्याख्या की जायगी कि आत्मा किस प्रकार चेतनामे परिणमता है जिससे ज्ञान, कर्म व कर्मफल विदित होते है।

ज्ञान चेतना —ज्ञानचेतनाकी वात विल्कुल स्पष्ट है। जीव ज्ञानमे चेतते हैं, यह साधारण अर्थको लेकर कहा जा रहा है। कोई विशेष अर्थ नही लगाना है। यहाँ यह देखना है कि जीव जानते है, वे जानते क्या हैं, पहिले यह वताओ ? चाहे ससारी हो, चाहे मुक्त हो, सव अपने स्वरूपकी ही वृत्ति करते हैं, ज्ञान एक गुण है और वह गुण आत्मप्रदेशोंमे ही है। आत्मप्रदेशसे वाहर ज्ञान गुण है क्या किसी जीवका ? जीवका ज्ञानगुण अपने प्रदेशोंमें ही है। वह ज्ञानशक्ति चाहे किसी रूप परिणमन करे वह अपने आत्मप्रदेशीय क्षेत्रमे ही वृत्ति करेगा या आत्मप्रदेशोंके वाहर? ज्ञानशक्तिका परिणमन आत्मप्रदेशोमे ही जाननरूप होता है तो जानन क्रिया आत्मप्रदेशमें हुई। जहाँ ज्ञानकी क्रिया हुई वहीं ही तो जाननवृत्ति और जाननका

प्रयोग हुआ। इस जाननने जाननको ही जाना, परखा। हां यह बात जरूर है कि जो ज्ञान अपनेको अन्य रूपोंमे चेतता है वह तो होता है मिथ्याज्ञान और जो ज्ञान चेतनको ज्ञानरूपमे चेतता है वह होता है सम्यग्ज्ञान। ऐसा ज्ञानका परिणमन परमार्थमे ज्ञानको ही चेतता है। अर्थात् सब जीव अपनेको ही जानते है किन्तु जाननमे अन्तर यह होता है कि कोई जीव अपनेको शरीरवाला, कोई जीव अपनेको परिवारवाला और कोई जानता है कि मैं बच्चोंवाला हूँ, तो कोई अपनेको ज्ञानमात्र जानता है। ये जाननरूप परिणतियोंके नाना रूप है। मैं परिवार वाला हू ऐसा जानकर भी उसने हूँ शब्दसे अपनेको ही जाना, अन्यको नही जाना, क्योंकि परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्वारा प्राप्य है, अपनेमे ही अपना प्रयोग करते है, अपने आपमे ही उनका वर्तन रहता है। इस दृष्टिसे यह ज्ञानचेतना सब जीवोंमे है। सिद्ध भगवान अपने ढगसे, अपने ज्ञानसे चेतते है और ससारी जीव अपने ढगमे अपने ज्ञानसे चेतते है। इस प्रकार प्रथम ज्ञानचेतना बताई गयी है कि यह जीव ज्ञान चेतनासे किस प्रकार परिणमता है।

कर्मचेतना —दूसरी चेतना है कर्मचेतना, कर्म शब्दसे यह जानना है कि आत्माका कर्म क्या है इस प्रश्नका भाव है, क आत्माकी क्रिया क्या है? आत्माका जो परिणमन है वह आत्माका कर्म है। वह क्या है? जो अपने आपमे पर्याय होती है, परिणति होती है, वह कर्म है, ऐसा वह कर्म सब जीवोमे पाया जाता है। मुक्तमे, ससारीमे, मिथ्यादृष्टिमे सबमे कर्म अर्थात् परिणमन होता है। परिणमन अपने अपने रूपसे होता है। कर्म बिना कौन पदार्थ है? मुक्त जीवोका कर्म क्या है? विश्वको जानना। सर्वज्ञताका जो काम हो रहा है वह मुक्त जीवोका कर्म है। अब जब कर्म है तो उस कर्मका कोई फल है। तो कर्मका फल तो वस्तुकी सत्ता बनी रहे यही मुख्य है जोकि सब पदार्थोंमे है। यदि कर्म न हो तो वस्तुकी सत्ता नही हो सकती, उत्पादव्ययध्रौव्य न होसकता।

कर्मफलचेतना :—सो कर्म फल क्या है? उस पदार्थका अस्तित्व बना रहना सबसे बडा भारी फल है और जीव तो चेतना रूप है। सो जीवका चेतना भी फल है। मुक्त जीवोका फल क्या है? अनन्त आनन्दरूप परिणमना। कर्म शब्दकी रूढि ज्ञानावरणादिक कर्म शब्दसे है। किन्तु अभी कर्मको सुनकर ज्ञानावरणादिक कर्मका अर्थ नही लगाना, किन्तु क्रिया लगाते जाना, तो यह आत्मा तीन रूपोमे परिणमता है और एक साथ परिणमता है। यह नही कि जिस समय ज्ञानरूपमे परिणति हो उस समय कर्मरूपमे न परिणमे। फलत एक साथ प्रत्येक जीव तीन रूपोमे परिणत होता है। क्योंकि, क्रियाशून्य वस्तु कभी नही रहती है और क्रियाफलशून्य भी कभी नही रहती है। कर्म का व कर्मफलका मुख्य अर्थ यह लगाओ।

विभिन्न जीवोंकी विभिन्न चेतन परिणतियां —कुछ सकुचित अर्थ लगावो तो यह यह अर्थ लगावो कि कोई जीव ज्ञानचेतना से परिणमता है, कोई कर्मचेतनासे, और कोई कर्मफलचेतनासे परिणमता है। जिनके सम्बन्धमे वताया गया है कि कर्मफलचेतनाकी परिणति स्थावरजीवोमे है, क्योंकि वे चल नही सकते, उनके अगोप ग नहीं हैं, सो व्यवहारमे दिखने वाली क्रिया स्थावरोंके हो ही नही सकती सो कर्मफलचेतनामे स्थावर आते हैं और ज्ञानचेतनामें सम्यग्दृष्टी जीव आते है और कर्मचेतनामे सव त्रस जीव आते हैं। किसी दृष्टिमे केवल अरहत और सिद्ध भगवान ज्ञानचेतनामे आते हैं, यह भिन्न भिन्न चेतनाका परिणमन है।

जीवकी स्वस्वरूपपरिणति —अव इस प्रश्नका निर्णय करो कि जीव किस स्वरूपसे परिणमता है। समाधान यह है कि जीव चेतनास्वरूपसे परिणमता है। मैं चैतन्य हूँ और परिणमता रहता हूँ, अन्य रूपोमे नही परिणमता हूँ। मिथ्यादृष्टि भी अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है, किसी परके स्वरूपसे नहीं परिणमता है। मैं परको करता हूँ इस प्रकारके विकल्परूपमे यद्यपि अज्ञानी परिणमा, किन्तु परिणमा पर रूपसे नही। अज्ञानी भी परका कर्त्ता नही होता। मात्र परका कर्ता हूँ इस प्रकारके विकल्पोकाही वह कर्ता होता है। यह तो वस्तुस्वरूपकी सीमा है। अगर अज्ञानी परका कुछ करदे तो अनन्त शक्तिमान परमात्मासे भी अधिक शक्तिमान उसे कहना चाहिए। भगवान या परमात्मा तो परका कुछ कर्त्ता नही है मगर यह अज्ञानी मोही परका कर्ता वन गया। अगर यह परका कर्त्ता हो जाय तो भगवानकी भी किसी दिन यह खवर ले डालेगा। जैसे मानलो कि एक देश आजकल आक्रमणका कर्ता है और विस्तारवादमे चल रहा है। यदि विस्तारवादमे सफलता मिलती चली जावे तो न जाने वह दुनिया का क्या क्या कर डाले।

अज्ञानके विस्तारवादकी कल्पना—अज्ञानका विस्तारवाद पता नही जीवका क्या क्या कर डालेगा। अगर परका कर्ता वन जाय तो सवको मिटायेगा। किसी दिन यह भगवानकी भी खवर ले डालेगा। भगवान भी पर पदार्थ है, उसको भी यह मिटा डालेगा। यदि इससे वढ कर कोई अज्ञानी मिल गया तो वह इसको भी नष्ट कर देगा, किन्तु यह अन्धेर नही हो सकता। वस्तुस्वरूपकी सीमा है। हाँ, विज्ञानसिद्ध यह वात अवश्य है कि जो विकाररूपसे परिणम रहा है वह किसी परका निमित्त पाए विना नही परिणम रहा है, निमित्तको पाकर परिणम रहा है। यह निमित्त नैमित्ति क सवध अटल वात है। नही तो, कभी चूल्हेपर रोटी वनावे तो कभी पानी पर भी वना लेंगे। यह अव्यवस्था हो जायगी।

निमित्तनैमित्तिक स्वरूपका अवलोकन—तो यह निमित्त नैमित्तिक वात तो

है, पर उनको इस ढंगसे देखना चाहिए कि वर्तमानमे वस्तुमे क्या गुजर रहा है। उनको देखकर यह सोचना चाहिए कि देखो यह पदार्थ कैसी योग्यता रखता है कि अमुक प्रकारका निमित्त पाये, तो यो परिणम जाय इस प्रकारकी योग्यता रखता है और निमित्त सन्निधिमे इस प्रकार अपनी योग्यतासे अपनी कलासे अपना खेल करता है। यह दृष्टि किसी सिद्धान्तका लोप नही करती। प्रत्युत वस्तुस्वरूपको देखकर जो वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि बनती है वह मोहका विनाश करती है। मोहका नाश वस्तु-स्वातन्त्र्यके दर्शन बिना नहीं हो सकता है, क्योंकि मोह कहते ही इसको हैं कि परमे परका सम्बन्ध, कर्तृत्व, अधिकार लगाव आदि-आदि मिलाए रहना, देखते रहना और स्वरूप अस्तित्व समझमे न आना इसका ही नाम मोह है। जैसे घर कुटुम्ब परिवारमे जहाँ मोहकी बात रहती है वहाँ क्या होता है कि वह अपनेको नगण्य समझता है। और घरके पुत्रोंको समझता है कि ये ही मेरी जिन्दगी है, इन्हींमे मुझे सुख मिलता है। कोई-कोई तो साफ-साफ कह भी देते हैं भैया, ये पुरुष व महिलाएँ कि मेरा आधार यही है, इन्ही पर मेरे प्राण टिके हैं, जो होनी थी वह तो हो गई, घरका मालिक गुजर गया पर मेरे प्राण अब इन बच्चोंके ऊपर टिके हैं। मोहके माने यही है कि अपनेको नगण्य माने और अपनी रक्षा, अपना सत् परके ही सहारे हैं, पर ही मेरा कर्ता है, ऐसा माने यही मोहका भयानक रूप है। मोहको ही अज्ञान कहते हैं मूढता कहते हैं। अब किसीको कहा जाय कि भैया तुम बडे मूढ हो तो बुरा मान जायगा और यह कहा जाय कि तुम बडे मोही हो तो बहुत बुरा न मानेगा। पर मोही या मूढ कुछ भी कहो अर्थ दोनो का एक ही लगता है।

मोही परिणमन व उससे पृथक्ताकी प्रेरणा—मुह धातुमे घञ् प्रत्यय करके संज्ञा बनाकर मोह बना दिया और मूढमे मुह धातुमे क्त प्रत्यय लगाकर मूढ बना दिया। मूढ परफेक्ट का रूप है। मूढ कहो, मोही कहो एक ही मतलब है। जो मोही है वही मूढ है। जहाँ मोह है उस जगह आपदा है। आपदा पर वस्तुमे नही है। आपदा तो मोहके अभावमे है, कैसी भी स्थितिया हो चाहे धनी हो, चाहे गरीब हो चाहे नेता हो चाहे विद्वान हो पर जहाँ मोह है वही आपदा है मोही प्राणी उपरोक्त प्रकारसे तथ्यकी बात नहीं देखता।

एक दम्पती था याने पुरुष था और उसकी स्त्री थी। पुरुषका नाम था बेवकूफ और स्त्रीका नाम था फजीहत। कभी-कभी इनमे लडाई भी हो जाती थी और फिर शान्ति हो जाती थी। एक दिन उनमे लडाई हुई, तो फजीहत अपना घर छोडकर कहीं भग गई। वह बेवकूफ अपने पडोसियोंमे जाकर पूछता है कि मेरी फजीहत को तुमने कहीं देखा है? तो पूछते हैं कि क्या लडाई हो गई थी? अनेक परिचित लोगो

से पूछा। सबने फजीहतका अर्थ लगा लिया कि इसकी स्त्री है। एक अपरिचित व्यक्तिसे पूछा कि कही तुमने मेरी फजीहत देखी है ? सो वह अर्थ नही समझ सका। सो वह सोचता है कि फजीहत क्या चीज है ? वह फजीहतका मतलब न समझ सका। सो पहिले यही पूछता है वह अपरिचित कि तुम्हारा नाम क्या है ? वह बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। तो अपरिचित व्यक्ति बोला कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम फजीहत ढूढते हो। जहाँ बेवकूफ चला जाय, अटपट बोल दे वही हर जगह जूतें लाठी तैयार हैं। सो जब मोह है तो इस मोहवाले को विपत्तिकी कमी कहाँ है ? भैया ! असलमे यह बात नही है कि कुछ चीज मिली और कुछ न मिली इससे दुःख है। उसके साथ जो अज्ञान लगा हुआ है, जो मोह लगा हुआ है, उसीके कारण उसको आपत्ति है, सकट है। यह आपत्तिका प्रस्फोट रूप है जो लोग परका नाम लेकर कहते है कि देखो मुझपर दो लाखका टोटा पड गया है; बडी आपत्ति है तो जहाँ मोह है वहाँ आपत्ति है। टोटेवाली-विकल्पना मोहका विकसित अर्थ है। विपत्ति परकी परिणतिसे नही है। विपत्ति तो भीतरमे मोह विकल्पकी है। सो विपत्ति, मोह, विकल्प ज्ञानसे ही नष्ट होता है। यथार्थ ज्ञान वही है जहाँ आत्माका स्पर्श हो।

तप क्या है ? —विद्या तो तप है। तो जो भी विद्यायें पढी जाती हैं, अणुकी विद्या, बमकी विद्या, सगीतकी विद्या, पी० एच० डी की विद्या, और भी अनेको जो विद्याएँ हैं वे तो सब तपस्यायें कहलाती होगी। ऐसी चर्चा आज प्रात पर्यटनमे श्री प्रो० लक्ष्मीचद जी एम, एस सी, की चल रही थी। तो उस समय बात करनेमे यह सूझी कि भैया, जिसमे आत्माका स्पर्श सम्भव है वह स्वाध्याय तप है, मगर जो लौकिक विद्यायें है उनका मूल्य ऐसा है जैसा कि कोई कजूस धनी है, लखपती है तो उसके धनका वर्तमानमे कोई फल नही है पर धन तो है ही। किसी भी समय उसका भाव मोड खा जाय तो चीज तो गाँठमे है, उसका उपयोग कर सकता है। इसी तरह जिसकी ऐसी विद्यायें हैं जिन विद्याओसे आत्माका स्पर्श नही है, आत्मकल्याणकी दृष्टि नही है तो वह विद्या कजूसके धनकी तरह है। पर वह विद्या तो है, किसी भी समय उसका मन मोड खा सकता है। कभी भी अपने आत्मस्वरूपकी ओर मोड आ सकता है तब वही विद्या आत्मस्पर्शमे सहायक हो जाती है। तप वह है जिसमे आत्मस्पर्श हो, अपने ज्ञानका अनुभव हो, ज्ञानानुभवकी कोशिश हो, ऐसी वृत्तियाँ हो तो वह तप है। और इन वृत्तियोमे, इन तपस्याओमे वह महत्त्व है जिनको कि पडित दौलतराम जी ने लिखा है कि "कोटि जन्म तपे तपै ज्ञान विन कर्म झरैं जे ज्ञानीके छिन माँहि त्रिगुप्ति ते सहज टरैं ते। ऐसा ही प्रकरण एक जगह प्रवचनसारमे आया है कि अज्ञानीके जितने कर्म कोटि जन्ममे खिरते हैं, अज्ञानीके कर्म तो खिरते ही नही है, याने खिरते है और कर्म बधते है सो अज्ञानीके तो निर्जरा कहना नही है,

नही तो कुछ न कुछ निर्जराका अधिकारी अज्ञानी भी बन गया चाहे करोडवाँ हिस्सा भी निर्जरा हो, उसके सम्बन्धमे आचार्य देवने यह बता दिया है कि अज्ञानीका कर्मनिर्जरण आरोपितमतान हो जाता है। जैसे कोई मनुष्य कर्जसे लदा है वह अब दूसरी जगहसे कर्ज लेकर पहिलेका कर्ज चुकाता है, तो यद्यपि वह प्रथम व्यक्तिके कर्जसे दूर हुआ है, किन्तु वास्तवमे तो वह कर्जमे ज्योका त्यो पूरा लदा हुआ है। वहाँ यहाँका और कर्जा जो लिया है उसपर दृष्टि न दो और यो हिसाब लगा लो कि इतने चुकाये इसी प्रकार अज्ञानीके उदय उदीरणामे कर्म तो खिर गये, किन्तु नवीन कर्मोके भारसे तो और ज्यादह लद गया। सो नवीन कर्मबधनपर तो दृष्टि न दो और केवल झडेको देखकर हिसाब लगा दो कि अज्ञानीके करोडो जन्मोमे जो कर्म खिर जाते है उतने कर्म ज्ञानीके क्षणमे नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दृष्टि लेकर बात बन जाती है, पर अज्ञानीके कर्म खिरते नही हैं। तो हम आपका हित इसीमे है कि हम अपनेको भीतरमे गुपचुप, कोई दिखानेकी बात नहीं। वस्तु दिख जाय कि यह मैं जाननस्वरूप हूँ। जानन आत्मप्रदेशोमे है, ऐसा निर्णय करो और स्वरूपस्वातन्त्र्यकी बात मान कर रहो तो मोह गल जायगा। अगर मोह गल गया तो अपना काम बन गया।

आत्माका असाधारण गुण चैतन्य—आत्माका स्वरूप चैतन्य ही है, क्योंकि वह चैतन्य आत्माके निजके सारे धर्मोमे व्यापक है। आत्माका चैतन्यस्वरूप अनादिसे अनन्त काल तक निरतर बना रहने वाला सर्वस्व है। आत्माके विषयमे यदि कोई जानना चाहे कि यह किमात्मक है, किस स्वरूप वाला हैं? तो इसके ज्ञानके लिए जबतक आत्मप्रतिभासकी दृष्टि न आवेगी, तब तक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयगी और जबतक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयेगी तब तक आत्मस्वरूप समझमे नही आवेगा। चैतन्य आत्माका असाधारण गुण है। आत्मामे अन्य जितने सामान्य और विशेष धर्म माने गए हैं, अस्तित्व, वस्तुत्व, चरित्र, आनन्द आदि ये सब मानो चैतन्यस्वरूपकी रक्षाके लिए, अस्तित्वके लिए, रहनेके लिए, या सेवाके लिए हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि चैतन्यगुण आत्मामे न माना जाय किन्तु और सब धर्म माने जावें आनन्द चरित्र आदि, तो इन सबका क्या मूल्य है। चैतन्य ही आत्माका एक ऐसा असाधारण गुण है, स्वरूप है, जिसके द्वारा यह आत्मा परिणमता रहता है। जो कुछ भी इसमें गुणोका परिणमन होता है वह चैतन्यात्मक परिणमन होता है। जो कोई भी आत्माका परिणमन हो वह चेतनाका उल्लघन नही करता। जैसे एक जगह समयसारमें लिखा है कि जहाँ आत्माको ज्ञानस्वरूपके द्वारा लक्ष्यमे लेनेका यत्न कराया है वहाँ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र क्या है ? यह बताया है। जीव आदिक तत्त्वोंके श्रद्धान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा जीवादिक तत्त्वोंके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेको ज्ञान कहते हैं। और रागादिकके

त्यागस्वभावसे ज्ञानके बननेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। याने तीनों ही बातें ज्ञानके परिणमनमे घटाई हैं अर्थात् आत्माके समस्त गुणोका परिणमन चेतना गुणोका उल्लघन न करते हुए चैतन्यस्वरूप ही होता है।

चेतनाके प्रकार व स्वरूप—चेतना तीन प्रकारकी कही गयी है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञानपरिणतिका नाम ज्ञानचेतना है, कर्म परिणतिका नाम कर्मचेतना है और कर्मफल परिणतिका नाम कर्मफलचेतना है। वह ज्ञान क्या है, कर्म क्या है और कर्मफल क्या है ? इन तीनोंके स्वरूपको भगवान कुन्दकुन्दाचार्यजी कहते हैं कि,

णाणं अट्ठवियप्पो कम्म जीवेण ज समारद्ध ।
तमणेगविध भणिय फलत्ति सोक्ख व दुक्ख वा ।। १२४ ।।

ज्ञान क्या चीज है ? अर्थका विकल्प। अर्थग्रहण अर्थात् पदार्थका जानना ज्ञान है। और कर्म क्याचीज है ? जीवने जो किया सो कर्म है। कर्मके करनेका जो फल हुआ वह कर्मफल है। यह कर्मफल कारणभेदोंसे नाना प्रकारके हैं। जो अर्थका ग्रहण है वह ज्ञान है अर्थात् स्व और परके विभागसे अवस्थित जो सारा विश्व है वह अर्थ है। उस अर्थके ग्रहणका नाम ज्ञान है, उस अर्थको प्रयोजनवश, "स्वपर विभागसे अवस्थित विश्व" इन शब्दोंमे कहा है।

स्वपर विभागसे विश्वके कथनका आशय—सारा विश्व स्व और परमे आ गया। स्वमे निज चेतना आई परमे अन्य अनन्त सब चेतन व अनन्तानन्त समस्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश और असख्यात काल द्रव्य ; ये सब परमे आगये। तथा विकल्पका अर्थ, अर्थके आकारका अवभासन हुआ। आकारके माने सब कुछ, द्रव्य, गुण, पर्याय है इनका अवभासन हुआ सोई अर्थविकल्प है। इस समस्त विश्वको इस प्रकारके विशेषणसे बतानेका प्रयोजन व अध्यात्मिकशिक्षा यह है कि पदार्थ तो सब अनन्त हैं किन्तु उनमे स्व केवल एक मात्र मै हूँ यह और समस्त पदार्थ सजातीय तथा विजातीय पर हैं, मुझसे अत्यन्त भिन्न है।

दृष्टान्तमे द्रव्यसग्रहमे जीवमजीव दव्व कहनेका प्रयोजन—द्रव्यसग्रह के मगलाचरणमे भी लिखा है कि जीवमजीव दव्व जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं। जीव और अजीव द्रव्यको जिसे जिनवरवृषभने निर्दिष्ट किया है। पहिले तो यह जो विशेषण दिया गया है, वह क्या प्रयोजन रखता है ? इसपर विचार करो। पहिली बात तो यह है कि द्रव्यसग्रहका वर्णन करना है सो द्रव्योको छूता हुआ विशेषण बनाया गया है। दूसरे जिन द्रव्योका वर्णन करना है उन द्रव्योंके वर्णनमे प्रामाणिकता आवे कि जिनवरवृषभ भगवानने जीव अजीवका व्याख्यान किया इसमे इस ग्रथमे प्रामाणिकता आयी कि उनकी परम्पराका यह वर्णन है। तीसरी बात यह देखो कि

जीवमजीवं क्यों कहा ? मुत्तममुत्तं क्यों नहीं कहा ? जहाँ मूर्त और अमूर्तका वर्णन किया है वहाँ मूर्त अमूर्तमें कुछ छूटता है क्या ? उसमेंभी सब आजाता,कोई द्रव्य छूटता नहीं है। तब अन्य कुछ शब्द न रखकर यही वचन रखा कि जीवमजीवं। ऐसा क्यों ? वह इसलिए रखा कि हित करना है जीवको, और जीवका हित है अजीवसे अलग रहनेमें। तो यह दृष्टि भी जल्दी आ जाय इसके लिए जीवमजीवं शब्द दिया है। कोई कहे कि मूर्तामूर्तमें भी यह बात आ जाती है अमूर्त है आत्मा, और उसका हित करना है तो मूर्तसे अपनेको न्यारा समझे। पर यह अमूर्त आत्मा मूर्तसे तो न्यारा है, किन्तु अमूर्तमें तो धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य भी हैं, उनसे जीव न्यारा कैसे सिद्ध होगा और जीवाजीव कहनेपर यह जीव सब अजीवोंसे न्यारा है, ऐसा विभक्तपना हो जाता है। इसी कारण वहाँ प्रयोजनवश जीवमजीवं कहा गया है।

प्रकृतमें विश्वकी स्वपरविभागावस्थितता कहनेका प्रयोजन—'जीवमजीवं" की भाँति यहाँ भी प्रयोजनवश स्वपरविभागेन अवस्थितं विश्वं कहा है। यहाँ अर्थका अर्थ करते हुए पूज्यश्री अमृतचंद्रजी सूरि कहते हैं कि अर्थ क्या है। स्वपरविभागेन अवस्थितं सर्वं विश्वं। भावार्थ-स्व में आया यह मैं आत्मा और परमें आए अन्य समस्त अनन्तानन्त जीव तथा उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल और धर्म, अधर्म, आकाश, एक-एक तथा असंख्यातकाल द्रव्य। जीवोंमें कौन किससे अधिक है ? सबसे अधिक संसारी जीव हैं। मुक्त जीव तो अनन्त है, किन्तु उनसे अनन्त गुणे संसारी जीव हैं। संसारी जीव ४ गतियोंमें हैं, उनमें सबसे कम जीव मनुष्यगतिमें हैं; उनसे ज्यादह नरकगतिमें हैं, उनसे ज्यादह देवगतिमें हैं, उनसे अधिक तिर्यञ्चगतिमें हैं। तिर्यञ्चगति में भी अधिक जीव एकेन्द्रिय हैं और एकेन्द्रियमें भी सबसे अधिक जीव वनस्पति कायमें हैं और वनस्पतिकायमें भी सबसे अधिक जीव साधारण वनस्पतिकायमें हैं। साधारण वनस्पतिकायिक जीव अनन्तानन्त हैं।

जीवका पौद्गलिक परिवार—इन संसारी जीवोंके साथ एक क्षेत्रावगाह रूपमें कितने पुद्गल द्रव्य एकत्रित हैं ? सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म शरीर निगोदका है। वह शरीर भी अनेक पुद्गल परमाणुओंका पिंड है। हम आपका तो यह स्थूल शरीर है जो कि बड़ा दीखता है, पर उनका वह शरीर जो अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है वह शरीर भी अनन्त पुद्गलपरमाणुवोंका पिंड है। शरीरमें जितने अनन्त पुद्गलपरमाणु हैं उनसे भी अनन्त गुणे कर्मपरमाणु इस आत्माके साथ लगे हैं। देखो भैया, एक जीवके ही कितना पुद्गलपरिवार-प्रपंच लगा है, फिर जो जीवत्यक्त स्कन्ध हैं, जिसे सब देख रहे है, भींट हैं, किवाड़ हैं, दरी हैं, ये सब भी अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुवोंके पिंड हैं। इस प्रकार कितने पर पदार्थ हैं जगतके अन्दर, उनमें स्व केवल एक निज जीव है और परमें आया अन्य समस्त यह विश्व।

निजकी उपेक्षा—देखो भैया, जब स्वकी व्यवस्था तो हम न कर सके और परकी व्यवस्थामे रहे तो फिर बतलावो अपनेलिए शान्ति और सन्तोषका उपाय क्या किया ? वास्तवमे परकी व्यवस्थामे कोई नही रहता, परकी व्यवस्था करनेके ही विकल्पमे ये रहते हैं। पर, पर हैं, कदाचित अपने विकल्पोके अनुकूल किन्हीं पर पदार्थोका परिणमन भी हो गया तो भी वह परका परिणमन उसके विकल्पोके कारण नही हुआ, उसकी इच्छाके कारण नही हुआ। हाँ, वहाँ जो यत्न होगा, उद्यम होगा, कुछ भी होगा उसमे निमित्त कारण विकल्प और इच्छा है।

परिणामकी स्वतन्त्रता—विकल्प और इच्छाने पर पदार्थोका परिणमन यो कर दिया यह बात नही है, वहाँ वह अपने परिणमनमे परिणत हुआ, निमित्तनैमित्तक योग सहज हैं ही। सो तुम्हारे अनुकूल भी कुछ परिणाम गया तो भी वह तुम्हारी इच्छा के कारण नही परिणमा। इच्छा करते-करते भी प्रतिकूल परिणमन परन होता है अर्थात् पर जैसा परिणमता है, परिणमता है, उसको हम प्रतिकूल समझ लेते हैं। प्रतिकूल और अनुकूल परिणमन कुछ है नही। परिणमन तो परिणमन है, उसे जब हम इष्ट समझते हैं तब हम अपनेमे यह भाव रखते हैं कि मेरे अनुकूल परिणाम गया है और जब हम अनिष्ट समझते हैं तो हम यह भाव करते है कि यह मेरे प्रतिकूल परिणाम गया है।

पराश्रयकी पृथक्तासे ही अलौकिक आनन्द—अनुकूल परिणमनकी स्थितियाँ कम हैं और प्रतिकूल परिणमनकी स्थितियाँ बहुत अधिक है, जितना जो कुछ हो रहा है उनमे करीब-करीब सभी के ९५ प्रतिशत।प्रतिकूल परिणमन होता है। २, ४, ५, प्रतिशत अनुकूल परिणमन होता हैं। यदि हम ५ प्रतिशत परिणमनमे भी इच्छा और भावना जो कि पराश्रयता व पराधीनताके कारण हैं, नही करें तो भाई ! ९५ प्रतिशत के समान आपका लगाव इन ५ प्रतिशतोंमे भी न रहनेसे आपके आत्मीय अलौकिक क्षेत्रमे स्वभावकी वृद्धि होनेसे आपको अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा।

अलौकिक आनन्दके भोक्ता—इतना साहस प्रत्येक आत्महितैषी महान साधु योगी, सन्यासी जिन्होने चिरन्तन अभ्याससे अपने इन्द्रिय और मनको साध लिया है, करते हैं। और, वे प्रत्येक स्थितिमे अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं। पर हम और आप यह विश्वास ही निरन्तर बनाए रहें कि पर पदार्थ चाहे अनुकूल परिणमे चाहे प्रतिकूल परिणमे, उनके स्वतन्त्र परिणमनसे आत्मामे कोई सुधार बिगाड नही होगा। आत्मसुधार तो आत्मस्थितिसे और आत्मबिगाड अनात्मस्थितिसे ही होगा। यह सारा विश्व जो कि स्व और परके रूपमे अवस्थित हैं उनका जो जानन है उसे कहते है ज्ञान, और इस ही क्रियाको कहते है कर्म और इस क्रियाके फलमे जो

जो आनन्दका परिणमन भोगमे आता है उसे कहते हैं कर्मफल। ज्ञान, कर्म, और कर्मफल इन तीनोका स्वरूप इस १२४वी गाथामे लिखा है। इसी का स्पष्टीकरण टीकामे किया जा रहा है।

ज्ञान परिणमन—जैसे दर्पणके हृदयमे, उसके प्रदेशोंमे, पदार्थोकी झलक होती है, आकारका अवभासन होता है, उसी प्रकार एक साथ प्रतिभासमे आने वाले स्व और परके आकाररूपमे अवस्थित पदार्थोंका प्रतिभास हो, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानकी वृत्ति जाननेके लिए दर्पणका उदाहरण दिया जाता है। पर उसका प्रयोजन, अवभासनमात्रसे है। ऐसा नही है कि जैसे दर्पणमे पदार्थ प्रतिभासित होता है तो तिखूटी चौखूटी वस्तुका जो कुछ आकार है उस रूपसे दर्पणका परिणमन हो जाता है। इस तरहमे जो ये पदार्थ अवस्थित हैं और इनका जो आकार है उन-उन आकाररूपोंमे ज्ञान परिणम जाता है, ऐसी बात नही है, क्योकि पदार्थोके अवभासन होनेका नाम ही आकारग्रहण है। आकारग्रहणके माने यह नही है कि इन आत्म-प्रदेशमे कुछ स्थानोंमें इन लम्बी चौडी चीजोंके आकार ज्ञानमे आ गये या झलक गये, क्योकि पदार्थोंका आकार भी यदि ज्ञानमे झलके तो ज्ञान तो आत्माके असख्यात प्रदेशोमे है और यह आकार कितनी जगहमे आया सो बतलावो। उन असख्यात प्रदेशोंमे यदि सभीमे वे आकार आये तो आकार खतम है। जैसे कि यही चश्माघर है और उसका आकार इतना लम्बा चौडा है। यदि आत्माके सब प्रदेशोंमे आए तो इसका आकार वहाँ यह रहा नही, क्योंकि वह तो आत्माके सबप्रदेशो मे आया। जब सब प्रदेशोंमे आया तो सब प्रदेशोका जो आकार है उस रूप ग्रहण होगा। यह अर्थका आकार आ जाय यह बात तो नही रही। और कहे कि आत्माके प्रदेशोंमे पदार्थोंका सर्वत्र आकारका ग्रहण नही है, किन्तु कुछ प्रदेशोमे है, तो कितने प्रदेशोंमे है और कितने प्रदेश जाननवृत्तिसे छूट गये ? सो बतलावो। इसका विचार करनेमे ज्ञानकी सत्य व्यवस्था होती नही इसलिए अर्थग्रहणका नाम ज्ञान है। अर्थका जानना है, पदार्थप्रतिभास है, इसको कहते हैं ज्ञान। अब कर्म क्या है और कर्मफल क्या है ? आगे बतलावेंगे, और इसमे उसी दृष्टिका वर्णन है कि जैसा कि कल दो बातोंम पहिली बात को कहा था कि सब अपनेमे घटित होती है, ज्ञान, कम और कर्मफल। सभी जीवोमे तीन चेतना पाई जाती है, आज उन्ही तीनो चेतनाओंके स्वरूपका वर्णन किया जा रहा है।

ज्ञान, कर्म और कर्मफल चेतना—चेतना तीन प्रकारसे परिणमती है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञान हुआ एक साथ प्रकट होने वाला निज और पर पदार्थोंके आकारका अर्थात् स्वरूपका ग्रहण (विकल्प), जितने भी जीव हैं सभी जीवोमे यह ज्ञानवृत्ति चलती हैं। कर्म हुआ वह भाव जो आत्माके द्वारा किया जारहा है। आत्माके

द्वारा किया जाने वाला जो भाव है वह आत्मामे ही है, आत्माने पृथक् नही है प्रत्येक क्षण उस-उस भावने होते हुये आत्माके द्वारा जो भाव होते हैं वे आत्माके द्वारा ही प्राप्य है। अत कर्म- जो आत्माका परिणमन है वही आत्माका कर्म है।

कर्मके प्रकार व परिणमनका दृष्टान्त—कर्म एक प्रकारका है परिणमन। वह मूलमे तो उठा हुआ एक तरहका है, पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निधान होनेसे और द्रव्यकर्मकी उपाधि न होनेसे वह कर्म भी अनेक प्रकारका बन गया है। जैसे एक मोटी मिसाल ले लें कि इञ्जनका कोई बडा चक्र खूब तेजीसे चल रहा है उसका काम एक ही है निरन्तर चलते रहना, पर चलते हुए उस चक्रमे कोई कपडा आदि आ जाय, कोई चीज फस जाय तो वह चक्र तो चलता ही रहता है। उस चक्रके साथ वह कपडा अथवा मैल भी भ्रमण कर रहा है। मूलमें तो बात वहाँ भ्रमणकी है। उस भ्रमणमे जो उपाधि साथ लग गयी तो उस प्रकारका भी भ्रमण साथ चल रहा है। और भ्रमणका भी जो मूल भ्रमण है वह भी बराबर चल रहा है। फर्क प्रकृतमे इतना ही है कि वह मूल परिवर्तन जुदा नही है।

कर्म और कर्मफल—पदार्थमे ६ साधारण गुण होते है उनमे द्रव्यत्व नामके गुणके प्रतापसे पदार्थ प्रतिक्षण अपने भावमे परिणमते रहते हैं। जीव और पुद्गल दो प्रकारके पदार्थोंमे विभावशक्ति है, वहाँ जीवको उपाधिकी सन्निद्धि हो तो वह अनेकरूप परिणम जाता है। और जीवके विभिन्नरूप परिणमनने कर्म अनेक प्रकारके बन जाते हैं। अभी साधारण दृष्टिसे एक चीज चल रही थी कि आत्माके द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। आत्माके द्वारा आत्मात्मक परिणति होती है पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निद्धिसे और असन्निधिसे अनेकविधतासे वे कर्म नानाप्रकारके हो जाते हैं फिर उस कर्मका जो निष्पाद्य फल है सुख और दु ख, वह कर्मफल कहलाता है। आनन्द नामक गुणका जो परिणमन है उसे फल कहा गया है। मुक्त जीव है तो उनमे शुद्ध आनन्दरूप, ससारी जीव हैं तो उनमे आनन्दका विकार रूप फल है। वह फल है सुख अथवा दु ख इस तरह जीवमे ज्ञान, कर्म और कर्मफल चलता है। मुक्त जीवोंमे ज्ञान है शुद्ध ज्ञान, कर्म है शुद्ध कर्म याने शुद्ध परिणमन। कर्मफल है शुद्ध कर्मफल। सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन, यही उनकी ज्ञान, कर्म और कर्मफल की चेतनारूप परिणति है।

दृष्टिमे अमृत व विष—यह जीव ससारमे जिस-जिस रूप अपनेको जाने उस-उस रूपमें उसकी चेतना है। मिथ्यादर्शनमे अपनेको किसी अन्यरूप जाने, उसकी अन्यरूप चेतना है जिसे अज्ञानचेतना कहते हैं, क्योकि उसने अपनेको यथार्थ रूपमे चेता नही। जैसा कि यथार्थ रूप है उस रूपमे नहीं चेता, मगर वह ज्ञानको ही उस रूपमे चेतरहा है, किसी अन्यको नही चेतरहा है। मिथ्यादृष्टि जीव भी किसी

वाह्य पदार्थको जानता है, चेतता है, वह भी वाह्य पदार्थोंको नहीं चेतता, किन्तु वाह्य पदार्थोंका जो अवभासन हो, विकल्प हो, उस रूप परिणमता है याने अपने आप की आत्माको चेतरहा है ।

व्यवहार—व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक होता है । परमार्थसे मर्मवाली वात क्या है उसको वतानेवाला व्यवहार है । सो व्यवहारको परमार्थका प्रतिपादक कहा गया है । इस विषयका समयसारमें जहाँ यह प्रश्न किया है कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक कैसे हैं ? तो वहाँ श्रुतकेवलीका दृष्टान्त दिया है ।

निश्चयश्रुतकेवली, व्यवहारश्रुतकेवली—निश्चयश्रुतकेवली वह है जो शुद्ध आत्माको जानता है और व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगको जानता है । इतनी वात सुनकर कुछ लोग यह भी अर्थ लगाने लगे कि एक शुद्ध चैतन्य स्वभावको जानलो तो निश्चयश्रुतकेवली हो गये और जो द्वादशांगको जाने वह व्यवहार श्रुतकेवली है । इस व्याख्यामें निश्चयश्रुतकेवली सरल और व्यवहार श्रुतकेवली अधिक कठिन हो गया, क्योंकि निश्चयश्रुतकेवली होनेमें थोड़ा सा भी वल न लगाना पड़ा । मात्र कल्पनाकी उड़ानसे ही वातकी वातमें वन गया, और व्यवहारश्रुत-केवलीमें ज्ञानावरणके क्षयोपशमका पूर्ण वल लगाना पड़ा । अतः भैया, ऐसी व्याख्या निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवलीकी नहीं, उसे समझनेके लिए एक दृष्टान्त लीजिए । कोई मनुष्य घड़ेको जानता है, उसका नाम क्या रखा ? घट-ज्ञानी । जो घटको जाने वही घटज्ञानी है । घटज्ञानी पुरुष परमार्थसे करता क्या है अब इस वातको वताना है, तो यह कहा जाता है कि यह घटको जानता है । पर क्या पुरुष दूर पड़े हुए दस पाँच हाथ दूर रखे हुये उस घटपर ज्ञानक्रियाका प्रयोग कररहा है । इस प्रयोगमें ज्ञानको परिणति क्या घटपर लगी रहती है ? नहीं, किन्तु ज्ञानकी परिणति तो आत्म-प्रदेशोंमें ही लगी रहती है । अतः परमार्थसे घटज्ञानीने क्या किया ? यही तो किया कि जिस प्रकारका घट अवस्थित है उस प्रकारका उसे जानन हुआ जिसे घटाकार-अवभासन नामसे कहा जाता है । और, घटाकारके अवभासनकी परिणतिने अपने आपको जाना, इस वृत्तिमें रहनेवाले पुरुषोंको कहते हैं घटज्ञानी । निश्चयसे घटज्ञानके प्रसंगमें उसने किसको जाना ? उसने एक मात्र घटाकारपरिणत उन-उन विकल्पोंसे परिणत आत्माको जाना । सभी ऐसा कहते है कि मात्र आत्माको जानें, इस मात्र शब्दका अर्थ है शुद्ध । शुद्धको जाना याने दूसर पदार्थोंपर प्रयुक्त न हुई, मात्र अपनेपर प्रयुक्त हुई परिणतिसे ऐसे परिणत केवल आत्माको जाना, घटाकारपरिणतिकी वातको हम आप लोगोंको जल्दीमें कैसे वतलावें ? उसके लिए ये शब्द है कि यह घटको जानता है, तो निश्चयसे घट-ज्ञानी क्या और व्यवहारसे घटज्ञानी क्या ? निश्चयसे घटज्ञानी वह है जो केवल

आत्माको जानता है। कैसे आत्माको जानता है? यह मनमे सोचनो, घटाकार परिणत याने घटज्ञान वृत्तिसे परिणत जो आत्मा है उसको जानता है और व्यवहारमें वह थोडी दूर पडे हुए उस घट पदार्थको जानता है।

निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना एक ही जीवमें—इसी तरह से यह निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना ये दोनों बातें एक ही जीवमे घटाई गई हैं, भिन्न-भिन्न दो जीवोंमें नही घटाई गई हैं कि निश्चयश्रुत केवली वह है जो मात्र आत्माको अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूपको जानता है, किन्तु व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगोंको जानता है। द्वादशांगमें जो लिखा है, जो शब्द है, जो उनको जानता है उस एक पूर्णश्रुतज्ञानीके बारेमे पूछा गया है कि वह निश्चयसे किसको जानता है? उसका उत्तर है कि द्वादशांग वचनके आकाररूप परिणत इस तरहकी ज्ञेयाकार परिणतिसे परिणत अपने आत्माको जानता है अर्थात् जो इस शुद्ध अपने आत्माको जानता है वह निश्चयश्रुतकेवली है। उसने क्या जाना? उसने निश्चयकलाको जाना।

परमार्थसे सबके निजचेतकत्व—भैया, जगतके सभी जीव अपनेको ही चेतते हैं, अपनेको ही जानते हैं। पर कोई इस तरह जानता है कि—"मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥" मैं धनवाला हूँ, बच्चोंवाला हूँ, परिवार वाला हूँ जाननेवाला हूँ, इस तरह अपनेको नानारूप जानते हैं पर जानते हैं अपनेको ही। और ज्ञानी पुरुष उसी एक शुद्ध सहज चैतन्य रूपसे अपनेको जानता है। वह ज्ञानी जानता है कि मैं केवल अपने स्वरूपसत्तामात्र हूँ। इस तरह कोई अपनेको यथार्थरूपमे और कोई अयथार्थरूपमे जानता है, पर जानते सभी अपने आपके ज्ञानको हैं। इस कारण ज्ञान चेतना सब जीवोमे है, और उसकी जो क्रिया है, वृत्ति है वह भी सबमे है, और उस वृत्तिका जो फल होता है वह भी सबमे है। उस कर्मफलमे द्रव्यकर्मकी उपाधिकी सन्निद्धि न होनेसे जो कर्म जीवके होते हैं उनका अर्थात् आत्मपरिणतियोंका फल अनाकुलतारूप सुख है। और द्रव्यकर्मकी सन्निद्धि होनेसे जो कर्म होते हैं, क्रिया होती है, जीवोंमे उसका फल अनाकुलता तो है नही, विकृतिभूत दुःख है। इस प्रकार ज्ञानका स्वरूप, कर्मका स्वरूप और कर्मफलके स्वरूपका निश्चय किया गया है।

ज्ञानचेतनासे प्रेरणा—इस प्रकरणसे हमे क्या शिक्षा मिलती है? यह शिक्षा मिलती है कि जो कुछ हम करते हैं वह अपने आपको करते हैं, और उस अपने आपको करनेका जो फल है वह उसी समय तुरत हमे मिलता रहता है। अच्छा परिणाम किया तो अच्छा फल, बुरा परिणाम किया तो बुरा फल अर्थात् जिस प्रकारकी भी

आकुलता या अनाकुलता जो कुछ भी होती है वह मिलेगा। बुरा परिणाम करनेपर उस ही समय जो विह्वलता, आकुलता हो सो फल मिलेगा।

वर्तमान और भावी कर्मफल—यह तो आगेकी वात है कि अशुभ भाव हुआ तो कर्मवंध हुआ और आगे उसका फल मिलेगा, यहां यह नहीं कहा जा रहा है। यहाँ तो यह वताया जा रहा है कि जिस समय जो कुछ किया उसी समय उसका फल 'मिलता है। फलसे लगी हुई ही क्रिया होती है। यह किस फलकी वात कही जा रही है ? उस फलकी कि भाव हुआ और भावके समय जो इसपर गुजरा। गुजरता तो है ही, तुरंत आकुलता गुजरी, निराकुलता गुजरी, यह उसकी वृत्तिका फल है। यह उसका वर्णन परमार्थदृष्टिसे चलरहा है, वाह्यदृष्टिसे नहीं, जैसे कभी कोई पुरुष कसाईका काम किए हुए है, खोटा कामकर रहा है, उसे लोग देखते हैं कि यह मौजमें है, खूब धनी भी है, किन्तु उसपर क्या गुजर रही है कि वह अपने ज्ञानको अज्ञानके रूपमें चेतरहा हे, अपनेको नाना रूपोंमें चेतरहा है और वहां जो उसकी क्रिया होरही है वह विकट रागरूप होरही है। उस समयका फल तो उसे भ्रम व क्षोभ है ही, उस क्रियाके फलमें उसके भीतर विह्वलता, आकुलता, मार्ग भूलना, वेहोशी है, ऐसा फल मिलरहा है। उस भावका फल धनादि नहीं है या वैभव नहीं हे, या मौज नहीं है जैसे कि लोग देखते हैं। उसने अशुभ भाव किया और उस अशुभ भावसे ही उसपर अज्ञानता गुजर रही है, अंधेरा छाया है, मार्ग भूला हुआ है आदि जो स्थिति उसपर गुजर रही हैं वह विकट है। उसपर इतने संकट हैं कि उसको खवर नहीं रहती कि। हमपर खोटी स्थिति गुजर रही हैं, यह उसका फल है, पर लोग समझते हें कि वह मौजमें हैं।

परिणमनका फल, अस्तित्वकी निरन्तरता—हर एक जगह पदार्थ हैं, वे परिणमते हैं और परिणामनका फल पाते हैं। पुद्गलपरिणमनका फल क्या कहा जाय, यह कि उसका सत्त्व रहता है। उनके परिणमनका फल उनका अस्तित्व वना रहना है। उसकी परिणति हो तो अस्तित्व वना रहता है। उनके फलकी विविधता नहीं हो सकती है। यह जीव है, ज्ञानस्वरूप है। उसका जो परिणमन है वह तो है ही यही कि अस्तित्व वना रहता है। परिणमन न किया करे तो वह रहेगा नहीं। सो वह तो फल है ही और इसके साथ चूंकि उसमें ज्ञान है, अनुभव है सो विचित्र रूपसे अपनेको अनुभवता रहता है, सुखरूप, दुःखरूप आनन्दरूप अनुभवता रहता है। इस समय भी यह मैं जीव अपने आपको समझता रहता हूँ कि मैं किस रूप हूं। जानन वृत्तिके फलमें कुछ दुःखी हूँ, ज्यादा दुःखी हूँ, सुखी हूं। जो भी अनुभूति हैं, नाना प्रकारकी वातें हमपर हो रही हैं।

वस्तुस्वातन्त्र्यदृष्टिका फल—आत्मा किन्ही भी बाह्य पदार्थोंका कर्ता नही है, केवल अपने स्वरूपके परिणमनका करनेवाला है। उस परिणमनकी विविधतासे ये नानारूप कर्म बन गए और न नारूप कर्मफल बन गया। परन्तु "पर पदार्थ है व जैसा परिणमते हैं। उनका परिणमन, जीव पुद्गलका परिणमन जैसा योग्यतार्का हैं और परका सन्निधान है वह अपनी परिणतिमे उपादानमें इस प्रकार परिणम जाता है, ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रता देखनेवाले ज्ञानी पुरुष मोहको नही प्राप्त होगे। तथा किसी प्रकारकी उनमे आकुलता नही होती।

अब आगेकी गाथामे यह बात बतलाई जावेगी कि आखिर वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल क्या न्यारी-न्यारी बात है ? नही, वह सब आत्मरूपमे ही हैं। वह ज्ञान भी आत्मा है, वह कर्म भी आत्मा है और वह कर्मफल भी आत्मा है, इस प्रकारका निश्चय करना है, समझना है। इस ही बातका निश्चय करनेके लिए पूज्य श्री प्रभु कुन्दकुन्ददेव अगली गाथाको अवतरित करते हैं। इसमे युक्तिपूर्वक यह बता रहे हैं कि ज्ञान, कर्म तथा कर्मफल ये तीनो आत्मभावरूपमे ही हैं।

> अप्पा परिणामप्पा, परिणामो णाणकम्मफलभावी।
> तम्हा णाण कम्म फल च आदा मुणेयव्वो ॥ १२५ ॥

ज्ञान, कर्म और कर्मफलकी आत्मपरिणामात्मकता—इस गाथामे यह बतलाया जा रह है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल यह आत्मा ही है। आत्मा तो वह है जो यहाँ परिणामात्मक होरहा है, और आत्माका जो परिणमन है वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल इन तीनो रूपोमे होता है। तभी तो कर्मफलमे आनन्द गुणकी पर्यायें आई, कममे अन्य सब परिणमन आए। अन्य सब परिणमन ज्ञानात्मक है, इसलिए ज्ञान परिणमन हुआ। अथवा कर्मोंमे आया ज्ञानपरिणमन और कर्मफलमे आया आनन्दपरिणमन। और, ये दोनो प्रकारके परिणमन आत्मामे हैं इस कारण परिणामात्मक जो आत्मा है वह है ज्ञान रूप। इस कथनसे ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही जानना चाहिए। आत्मा परिणामात्मक ही है क्योकि आत्मा परिणामस्वरूप है, ऐसा पहिले कहा गया है। अर्थात् आत्माका जो परिणमन है वह अनात्मा नही है। जैसे यह अगुली है उसे टेढी सीधी कैसी भी की जाय तो वह अगुली ही तो है। अगुलीसे अन्य किसीरूप तो नही है। इसी प्रकार जितने भी परिणाम हैं वे सब परिणाम आत्मा ही तो हैं, ऐसा पहिले बताया है और आत्माका जो परिणमन है वह चैतन्यात्मक है, क्योकि वह चैतन्य तत्त्व है। तो उसका जो परिणमन होगा वह चैतन्यात्मक होगा। सो चैतन्यात्मक होनेके कारण एक परिणाम तो हुआ ज्ञान, और

एक परिणामस्वरूप कर्म है तथा परिणामका कर्मफल भी है, वह सब चैतन्यात्मक ही होता है। इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है।

शुद्ध द्रव्य—शुद्ध शब्दका अर्थ है केवल एक द्रव्य। द्रव्यदृष्टिमे शुद्ध शब्दसे प्रयोजन केवल एक वस्तुमात्रसे है। वस्तुमात्रमे वस्तुका परिणमन दृष्ट नही है, आत्माका परिणमन चाहे रागरूप हो, चाहे विरागरूप हो, चाहे निर्मल हो, चाहे मलीन हो, वहाँ तो शुद्ध दृष्टिमे वस्तुमात्रका अवलोकन है। इसमे अन्य वस्तुका तिलतुष मात्र सम्पर्क नही है। शुद्ध दृष्टिका मतलब वीतराग या निर्मल पर्यायसे नही है, वरन् मात्र एक केवल वस्तुसे है। शुद्ध द्रव्यके निरूपण करनेमे पर द्रव्यका सम्पर्क तो देखा ही नहीं जाता है, केवल एक द्रव्यर देखनेतक शुद्ध द्रव्यका देखना कहा जाता है। इस देखनेमे चाहे वह आत्मा रागात्मक दृष्ट हो, चाहे विरागात्मक दृष्ट हो, किन्तु उस दृष्टिमे भिन्न द्रव्यका सम्पर्क न आवे ऐसी दृष्टि शुद्ध दृष्टि कहलाती है और उच्च शुद्ध दृष्टि वह दृष्टि है जिसमे अवलोकित शुद्ध द्रव्यमे उसकी पर्यायकी दृष्टि न हो अर्थात् पर्याय भी अस्त प्रलीन हो जाय।

शुद्धदृष्टि व परम शुद्ध दृष्टि—आगे एक शुद्ध दृष्टि वह है जिसे हम दो शब्दो मे कह सकते हैं, शुद्धदृष्टि और परमशुद्धदृष्टि। शुद्धदृष्टिके दो भेद हैं, (१) शुद्ध निश्चयनयदृष्टि और (२) अशुद्धनिश्चयनयदृष्टि। शुद्ध निश्चयनयदृष्टिमे तो शुद्धपर्याय परिणत वस्तु ज्ञात होती है। और अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे अशुद्धपर्यायपरिणत वस्तु ज्ञात होती है इस दृष्टिके आगे यत्न होनेपर परमशुद्ध निश्चयनय दृष्टिका प्रारम्भ होता है तब यहाँ पर्याय विलीन हो चुकती है, वहाँ तो अनादि अनन्त एक स्वभाव अवगत होता है। इस प्रकार शुद्ध द्रव्यके निरूपणमे आत्मा शुद्धद्रव्यमय आत्मा ठहराता है। यहाँ शुद्ध दृष्टि एक द्रव्यमे उसी एक द्रव्यको दिखाती है और दूसरे द्रव्यको व समस्त परिणतियोको भुला देती है।

शुद्ध दृष्टिका प्रताप—शुद्ध दृष्टिके प्रतापसे परस्परके सम्बन्धका उपयोग नहीं रहता। निमित्तनैमित्तिक भावोका भी उपयोग नही रहता, परदृष्टि नही रहती। ऐसी स्थितिमे, जब परदृष्टि न रहे तो रागादिककी वृत्ति तो परका आश्रय बना कर ही हुआ करती है। इस शुद्ध द्रव्यदृष्टिमे परका आश्रय नही बनाया और परका आश्रय न बनानेमे रागादिक भावोकी हीनता होने लगती है। इस तरह शुद्धद्रव्यके निरूपणमे, उपयोगमे शुद्ध द्रव्य आत्मा ही ठहरनेसे कल्याणकी प्रगति होती है।

अशुद्ध द्रव्यदृष्टि या व्यवहारदृष्टि—अब अशुद्ध द्रव्यका निरूपण कर रहे हैं। अशुद्ध दृष्टिके माने व्यवहार दृष्टि है और शुद्ध दृष्टिके माने निश्चय दृष्टि है। जैसे शुद्ध दृष्टिका अर्थ दो तरहसे होता है, वैसे ही अशुद्ध दृष्टिका भी अर्थ दो तरहसे

होता है। एक तो यह है कि अशुद्ध परका सम्बन्ध देखना, अमुकका निमित्त पाकर इसमे यह हुआ अथवा अमुकका सयोग है, इन सब बातोका देखना अशुद्ध दृष्टि है। यहाँ अशुद्धका अर्थ है अकेवल अर्थात् केवल एक न देखना किन्तु दो वस्तुकी बातोको देखना। परस्परमे निमित्तनैमित्तिक भाव गलत नही है। हैं, पर दो द्रव्योका सम्बन्ध बताना ही अशुद्ध दृष्टि है। वह केवलका निरूपण नही हैं, केवलका निरूपण शुद्ध निरूपण है और दो और दो के सम्बन्धका निरूपण अशुद्ध निरूपण है। व्यवहारमे व्यवहारका विषय गलत नही है किन्तु आत्माके कल्याणके लिए जो विशेष प्रगति होती है, विशेष तैयारी चलती है इसमे व्यवहारदृष्टि, व्यावहारिकता दो से सम्बन्ध-होनेके कारण बाधक बनती है। इस कारण अध्यात्मभावनामे निश्चयदृष्टिमे परमार्थका अवलम्बन करना बताया गया है। विज्ञानसिद्ध बात यह सब कैसी है ऐसा बतानेमे व्यवहारदृष्टि समर्थ है।

व्यवहारमे निश्चय दृष्टि—यह कैसे होता यह विवरण करना व्यवहार है। इस दृष्टिमे भी परको पर और निज को निज देखना अर्थात् वस्तु जैसी है वैसी ही है और उसका परिणमन जैसा है वैसा ही है, याने पर वस्तु अपने ही स्वरूपमे है और अपने ही स्वरूपमे परिणमती है। "है" और परिणमना यह सब पदार्थोमे दृष्ट आ रहा है। कोई किसीको अपना द्रव्य गुण, पर्याय नही देता, न कोई अपने अगुरुलघुत्व गुणका उल्लघन करता ऐसी स्थिति समझना वही निश्चय दृष्टिकी बात है।

निश्चयकी शाब्दिक व्याख्या—निश्चय शब्दका अर्थ है, निश्क्रान्त चय यस्मात् स निश्चय जिसका सचय नही है अर्थात् केवल एक पदार्थकी दृष्टि है। उसको निश्चय कहते है। व्यवहार दो प्रकारसे होता है—एक जोडसे और दूसरा तोडसे। केवल अपने-अपने स्वरूपमे अपने-अपने सत्त्वको लिए हुए पदार्थोमे किसी पर तत्त्वका जोड करना सो व्यवहार है। और पदार्थका स्वरूप समझानेके लिए गुणभेद करके अखण्ड वस्तुको तोडना, भेद करना, खण्ड करना, सो भी व्यवहार है। जैसे आत्मा कर्मबद्ध है, यह जोड चल रहा है। कर्ममे बँधा है, रागादिक परभावोसे मलीन है, यह सब जोड है। किन्तु आत्मा ज्ञानगुणवाला है आत्मा दर्शनगुणवाला है, चरित्रगुणवाला है, उसमे आनन्दकी शक्ति है। ऐसी उन शक्तियोको बताना, अन्य शब्दोमे उस अखड पदार्थको पृथक्-पृथक् कर देना याने तोड देना सो व्यवहार है। इस प्रकार त्रुटित रूपमे वह सत् हुआ क्या ? भैया, ऐसा नही है। लेकिन समझनेके लिए जो जो उनमे बात देखी गई है उनको बताना यह तोड रूप व्यवहार हुआ। व्यवहार तोडरूप और जोडरूप दो प्रकारसे होता है। जिस आत्मामे राग नही है, कर्म नही है, शरीर नही है, यह बताना जोडरूप व्यवहारका निषेध है और

आत्मामें दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं, चरित्र नहीं, इस प्रकारका निषेध करना सो इस रूप व्यवहारका निषेध है। और स्वयं जैसा है तैसा ही देखना सो निश्चय है।

समयसारमें शुद्ध आत्माकी विवेचनागर्भित कथनशैली-सदृष्टान्त—जैसा कि समयसारमें एक गाथामें आया है कि शुद्ध आत्मा क्या है? तो वहां बतलाया है कि णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव। आत्मा न प्रमत्त है न अप्रमत्त। अप्रमत्त बताना तो अच्छी बात थी। उसका भी क्यों निषेध किया? आत्मा न कषायसहित है और न कषायरहित है। कषायरहित बताना तो अच्छी बात थी, उसका निषेध क्यों किया? समाधान-वहां निश्चयसे आत्मा कैसा है? यह बताना है। आत्मा कषायसहित तो है नहीं। कषाय तो जीवका स्वरूप नहीं और कषायरहित यह भी जीवका स्वरूप नहीं। जीवका स्वरूप तो चित्स्वात्मक है, ज्ञाता, ज्ञानमय, ज्ञानमात्र, है। कषायरहित कहने में पहले कषायकी स्वीकारता होगी, पीछे उसका रहित बना विषय, सो कषायरहित यह बात आ गई पर निश्चयसे आत्माका स्वरूप कैसा है? अनादिसे अनन्त कालतक वह शुद्ध ज्ञानमात्र है। अपनी चेतन ज्ञानवृत्तिको लिए आत्मतत्त्व है, वह न कषायसहित है, और न कषायरहित है। जैसे कि एक पुरुषको कहा जाय कि भैया, १० बजे रात्रिको तुम अमुक गावको चले जावो। बोला अच्छी बात है। "देखो, जावो और यहांसे तीन मीलकी दूरीपर एक वटका पेड़ मिलता है तो लोग अफवाह ऐसी कहते हैं कि उस पेड़पर भूत रहता है, मगर भूत वूत नहीं है' निडर होकर चले जाना। अरे निडर होकर भेजना था तो यह चर्चा क्यों सुनादी? वह पेड़के पास पहुंचता है सो स्मरण करता है कि वहां भूत नहीं है। तो भैया, जबानपर व मनमें भूत तो ला ही लिया। कहता जा रहा है कि यहां भूत तो नहीं है, उसको शका हो गई, डर हो गया। कदाचित् इतना ही कह देते कि तुम चले जावो, और कुछ न कहते तो ठीक था, पर यह कह दिया कि तीन मीलपर वृक्ष है उसमें भूत नहीं है। सो भूतका स्मरण करके वह डर गया, नहीं तो वह निःशक होकर चला जाता।

गर्भित कथनका द्वितीय दृष्टान्त—अभी किसीको कहा जाय कि तुम्हारे पिता तो जेलसे मुक्त हैं, तो तुम्ही यह बतलाओ कि गाली हुई कि नहीं हुई? गाली हो गई। भाई! जेलसे छूटा ही तो कहा, वह गाली कैसे बन गयी? अरे उसका अर्थ तो यह हो गया कि वह जेलमें था और वहाँ से छूट गया। अरे वह जेल में था ही कहाँ? इसी प्रकार कषायरहित कहनेमें भी आत्माका सहजस्वरूप नहीं आया। किसी भी तरह जोड़ तोड़में रहना व्यवहार है। केवल पदार्थ तो असाधारण गुणमय है, मात्र असाधारण गुणकी निगाहसे देखें सो उसमें निश्चयदृष्टि है। इस निश्चय-दृष्टिके प्रतापसे आत्मामें मोह नहीं रहता।

यथार्थ ज्ञानकी महिमा—जब ज्ञान ठीक बनाएं, प्रमाणात्मक निश्चय व्यवहारका यथावत् ज्ञान करें और ज्ञान करके फिर निश्चय दृष्टिका अवलोकन लें, अर्थात् केवल द्रव्यका अवलम्बन लें तो वह उसकी सिद्धि होती है अर्थात् निर्मोहता प्रकट होती है। मोहके विनाशके लिये यह शुद्ध तत्त्व दृष्टि प्रबल साधन है। अहो, कितने व्यवहारमे यह जीव आज तक फसा रहा? जिस फसावमे है यह, वह काल्पनिक है। कल्पनाजन्य तो है पर काल्पनिक नही है। अभी यह कहा जाय कि आपका निमत्रण है और देखो हमारी सामर्थ्य अधिक नही है, सिर्फ आपका ही निमत्रण है, १० बजे आजाना। वह १० बजे पहुँच जाता है। निमन्त्रणकर्ता बोलाकि हमने तो केवल आपका निमन्त्रण किया था आप अकेले क्यो नही आए। वह कहे कि वाह अकेले ही तो आए। तो वह कह सकता कि कहा आये? अकेले? यहा यह पिंडोला साथमे क्यो लाए? अर्थात् यह शरीर साथमे क्यो लाए? अब क्या करे, शरीर कहाँ छोड दे, कैसे छोड दे। बँधा है यह शरीरसे, फिरभी स्वरूप देखो तो यह जुदा ही हैं।

दृष्टिमे बन्धन मुक्ति—क्या यह आत्मा शरीरसे बँधा नही? क्या अलग है? बँधा हुआ है, छुवा हुआ है तिसपर भी आत्मद्रव्यका अस्तित्व तो देखो। क्या? कि आत्माका इस पुद्गलमे अस्तित्व मिल गया, एक हो गया? अगर एक है तो फिर अलग कभी हो ही नही सकता है। अलग वही हुआ करता है जो पहिलेसे भी अलग सत्त्व रखता हो, किन्ही स्थितियोंसे मिला भी हो पर परमार्थसे अलग हो, वही अलग हो सकता है। तो जब निश्चयदृष्टिकी स्थिति हो तो वहा द्रव्य न बँधा है, न छुवा है, और न यह नानारूप है, न यहाँ घटबढ होता है, न इसमे कोई प्रकारका परभाव है, न विभाव है। उस वृत्तिमे तो केवल असाधारण गुणका विधान है। कभी आत्मतत्त्वको लक्ष्यमे लेनेके लिए यह कहा जाता है कि जो सब पर्यायोमे गत है, व्यापक है, अपने सब पर्यायोमे व्यापक है वह आत्मा है यह दृष्टि अब भी विस्तारवादी है, व्यवहारको लिए हुए है याने जिसे कहते हैं सामान्यस्वरूप आत्मा वह सामान्यस्वरूप कहनेमे सामान्य है मगर विस्तारवादको लिए हुए है। उसको यदि यो कहे कि आत्मा चैतन्यात्मक है, चित्स्वरूप है, 'असाधारणज्ञानात्मक है सो यद्यपि अन्य सब पदार्थोंसे भेद कर देनेके कारण विशेषात्मक है फिर भी विस्तारको लिए हुए नही है। यह केवल विध्यात्मक दृष्टि कराता है तो विध्यात्मक दृष्टि करानेवाला यह निश्चयनय है। जो है स्वय है, स्वरूपरूप है निज प्राणस्वरूप है, जिसके अतिरिक्त वह द्रव्य कुछ नही है, ऐसे असाधारण गुणमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि हो सो परमशुद्धनिश्चयकी दृष्टि है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ-कुछ कहना, जोडकी बात, तोडकी बात कहना, वह सब व्यवहार है। शुद्ध दृष्टिके निरूपणमे पर द्रव्यका सम्पर्क असम्भव है। यही शुद्धदृष्टिका चमत्कार है कि इसकी दृष्टिमें वह केवल एक है, द्वैत नही है। पदार्थके पास

न्या कुछ नही है, पर इस दृष्टिने केवल उसको ही ग्रहण किया। जैसे हड्डीकी फोटो लेनेवाला यन्त्र है। तख्तपर उस व्यक्तिको लिटा देते हैं, जिस व्यक्तिकी हड्डीकी फोटो ली जाती है वह व्यक्ति कपडे भी पहिने है, उसके नीचे चमडा है, उसके नीचे मास है, चर्बी है, पर वह यन्त्र उन सबको पार करके उनको न छूकर, उनको न ग्रहण कर केवल हड्डीकी फोटो ले लेता है। इसी तरह यह शुद्धनयकी दृष्टि शरीरको पार कर, कर्मोंको पार कर रागात्मक विभावोंको पार कर और इनकी जो परिणतिया होती है, उनको भी पारकर एक अनादि अनन्त अहेतुक असाधारणस्वभावको ग्रहण करती है। ऐसी एकत्वकी दृष्टिकी जिनके दृष्टि होती है ऐसे पुरुष धन्य हैं, वे मोक्षके मार्गको शीघ्र पा लेते हैं। इस गाथामे यह मर्म एकत्वकी दृष्टिमे देखा कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल ये आत्मामे ही हैं। इसलिए इनका इसमे निश्चय किया गया है।

आत्माको शुद्ध दृष्टिमे देखकर यह कहा गया था कि आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही कर्म है, और आत्मा ही कर्मफल है। इस प्रकार इस ज्ञेय तत्त्वमे आत्मामे स्वतत्र दृष्टिमे उसे उसके ही स्वभावरूप स्वीकार किया है इस तरहकी शुद्धताके निश्चय होनेपर ज्ञानतत्त्वकी सिद्धि होती है। उसका स्तवन करते हुए अब द्रव्यके सामान्य वर्णनका उपसहार करते हैं।

कत्ता करण कम्म फल च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो।
परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाण लहदि सुद्ध ॥१२६॥

आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका अधिकारी—कर्ता, कर्म, करण और कर्मफल यह सब आत्मा ही है, ऐसा जो निश्चय करता है और अन्य द्रव्यरूप नही परिणमता है सो पर द्रव्यके सम्बन्धकी दृष्टि शान्त होजानेके कारण वह ऐसी शुद्ध आत्माको पा लेता है जिस आत्मामे पर्याय भी प्रलीन हो गई है अर्थात् पर्याय-नरगकी जिसकी दृष्टि नही है, केवल एक ध्रुव स्वभाव आत्मा ही दिखती है ऐसे आत्मतत्त्वको वही प्राप्त कर सकता है जो शुद्धदृष्टिसे आत्माओको देखता है।

चारित्र क्या है ?—यह सब ज्ञान चारित्रकी जड है। कषाय न करना यही चारित्र है क्रोध, मान, माया, लोभ इन कषायोको त्यागो क्रोध मत करो, घमड न करो, मायाचार न करो और लोभ न करो। जिसे कहते हैं व्यवहार चारित्र, खानपानकी शुद्धता आदि सभी लोभ न करनेमे शामिल हो गयी। खानेका लोभ न करना, जैसा मिले जो मिले उसमे ही सतोष माने। चाहे पर जीवोकी हिंसा हो पर अपनेको स्वाद आवे और आसक्तिसे खावे, जो चाहे वह वस्तु खावे, ऐसा न करो। ऐसा करना महान् लोभ है। चारित्रके लिए लोभको त्यागना पडता है। ये पद्धतिया अपनी हैं, रात्रिमे न खाना, मर्यादित भोजन करना, यह सब अलोभको सिद्ध करता है। सो

लोभक न करो, यह असली रूपमे कब बन पाता है ? जब कि लोभजन्य प्रवृत्तियोंमे उमग न रहे। जब कषायके करनेको उमग न रहे तो कषायोंका छोडना बन जायगा।

सहज स्वरूपके ज्ञानकी प्रेरणा—कषायोंके करनेकी उत्सुकता न रहे, इसका उपाय है वस्तुत्वका सम्यग्ज्ञान। जब यह पता पडेगा कि क्या रखा है कषायमे ; क्रोध, मान आदिक करनेमे कोई हित नही है, इस तरहकी लोभकी प्रवृत्ति मे अपना अहित मालूम पडेगा तो उनसे हटाव हो जायगा। विषय कषाय असार है, यह मालूम पडे तब सारभूत चीज मालूम पडे। यह जगत असार है, यहाँ असार-असार सभी कहते हैं पर कुछ सार भी है क्या ? सार जो है वह अपने आपमे अपना सहज स्वरूप ही है। जबतक इस सारका पता न पडे तबतक इसकी असारता का ज्ञान पक्का न समझो, ऊपरी या रूढिवश ज्ञान समझो।

असारके साथ सारके तथा अनित्यके साथ नित्यके ज्ञानकी आवश्यकता—असार-असार तो कहते जायें पर टिकनेकी चीज जबतक न मिले तबतक इसमे हटें कैसे ? जैसे पदार्थोंको अनित्य कहते हैं, सब अनित्य है, विनाशीक है, नष्ट हो जाने वाले हैं, किन्तु, जबतक नित्यका पता न पडे कि 'आखिर नित्य क्या है तबतक तक अनित्यताको कहना केवल कहना ही कहना हुआ। अनित्यका पूरा प्रमाण नही होता। ये सब दिखनेवाले अनित्य हैं पर नित्य क्या है ? वही आत्मद्रव्य, पुद्गल द्रव्य, परमाणु आदि। अब पता पडा कि यह तो परिणमन है, जो अवस्था है,जो नाना प्रकारके रूपोंमे आता है, यह सब अनित्य है, जब नित्यका पता पडता है तब अनित्यका सही पता होता है। ये सब अशरण हैं, धन, वैभव, पुत्र, मित्र सब अशरण हैं, कोई शरण नही हैं,ऐसा सब कहते हैं पर इस अशरणताका पक्का पता उन्हें है जिन्हे अपना शरण भी मालूम है। अपना शरण कौन है ? अपने आपमे अपने स्वरूपका प्रत्यय, उसकी दृष्टि, उसका आलम्बन, ये सारभूत है। इन शरणका पता होनेपर अब साफ-साफ समझमे आया कि पुत्र, मित्र, परिवार ये सब समागम अपने अशरण हैं। तो जब तक सारका पता न पडे तब तक असारका त्याग होना कठिन है।

गुस्साका त्याग कब ?—जैसे मुझे कभी-कभी कोई यह कहने लगते हैं कि यह हमारा लडका गुस्सैल बहुत है, आप इसको गुस्साका त्यागका नियम दिलवादें कि यह कभी गुस्सा न करे तो हम क्या कहे कि भाई ! तू गुस्साके त्यागका नियम ले ले। तू गुस्सा न किया कर। ठीक है, दिला दिया नियम। निभ जायगा क्या ? अरे ! यह नियम नही बन सकता है। गुस्सा एक भावात्मक चीज है, वह भावात्मक रूपमे जब होना होता है तब होता है। गुस्सा ऐसी चीज है कि इसको कहे कि बाहर रख दो, तो क्या बाहर रख दिया जायगा। गुस्सेके त्यागका नियम कैसे निभ

सकता है? हाँ और बात थोडी बहुत निभ सकतीहैकि भैया तुम्हे गुस्सा आए तो मुँहमे पानी भरकर बैठ जावो आदि, पर आप नियम ले लें कि गुस्सा न किया करें तो यह नहीं निभ सकता है। गुस्सेके त्यागका नियम यह है कि जो क्षमाशील है, ऐसा जो अपने आपका परमात्मतत्त्व है इसका आलम्बन करे, सोई गुस्सा त्याग करनेका नियम है। तो जितना भी अचारित्र है उसका उपाय क्या है? चरित्रका मूल उपाय है सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानके प्रसंगमे यहाँ चरित्रका स्वरूप कह रहे हैं।

स्वमे कर्त्ता कर्मके दृष्टान्त—ज्ञानी पुरुष अपने आपको ही कर्त्ता, कर्म, करण और कर्मफल मानता है। जैसे यह एक अगुली है, इसको मरोड दो, यो टेढी करलो तो अगुलीको किसने टेढी किया? अगुलीने। और इस अगुलीने किसको टेढी किया? अगुलीको। और उस अगुलीने किसके द्वारा अगुलीको टेढी किया? अगुलीके द्वारा। और फल किसको मिला? अगुलीको। जिससे यह यो प्रदेश बन गया।

साप गुडेरी सा कर बैठ जाता है,ऐसी जो कुण्डली रूपमे जो होगया है वह कौन हो गया? साप! सापने कुण्डलीरूप किसको किया? अपनेको। किसके द्वारा किया? अपने द्वारा किया। फल किसको मिला! अपनेको, खुदको। उसकी कुछ भी चीज परिणमती है तो उसीमे परिणमेगी। जो भी पुस्तक चौकी वगैरह कुछ परिणमे, बदले, वह उससे ही बदलेगी। और किसके द्वारा बदलेगी? उसके ही द्वारा बदलेगी। दूसरेको परिणतिके साधनके द्वारा अन्य दूसरा नही बदलता। साधकतम दूसरा बना हो, सो नही। विभाव परिणतिमे पर पदार्थ निमित्त मात्र हैं पर साधकतम नही है। परमार्थदृष्टिसे वस्तुस्वरूपको देखनेकी बात कही जा रही है। जैसा बदल गया, जैसा रह गया जिस रूपमें सत है उस रूपमे उसे विचारें।

अशुद्धताके परिणमनका स्वरूप—यह आत्मा अशुद्धावस्थामे कैसा हो रहा है? आत्मवृत्ति रजित हो रही है, रगीली हो रही है। कषाय आदिक परिणामोंसे म्लान हो रही है। सो वह किस प्रकार हो रही है? वैज्ञानिकता क्या है कि अनादिकालसे चला आ रहा जो पौद्गलिक कर्मका बन्धन वह तो उपाधि है। उस उपाधिकी सन्निद्धिमे उस विषयको निमित्तमात्र पाकर रागादिक भाव आत्मामे दौड रहे हैं, प्रधावित हैं। प्रधावित शब्द यहाँ बहुत उपयुक्त दिया गया है। जैसे एक ऐना है, दर्पण है, उस दर्पणके सामने जो वस्तु आ गयी उस आकारमे दर्पणमे छाया प्रधावित हो गई, एकदम दौड गई। कहा से आ गई? और फिर कहाँ विलीन हो गई। कहा से निकल गई? सान्निध्यमे उपाधि हुई और तुरन्त आ गई छाया। वहाँ समय भेद नही है। इस प्रकार आत्मामे कषाय भाव, विभाव, उपराग प्रधावित हो जाते हैं, आ जाते हैं, उससे आत्मा मलिन हो रही है। जैसे स्फटिकके सामने जो भी चीज रख दी जाय, सन्निद्धिमे हो तो उस स्फटिकमे रग, छाया वगैरह प्रभावित

हो जाते हैं। इसी प्रकार पर पदार्थोंका निमित्त पाकर उसमे विकार आया है, ऐसी विकृत अवस्थामे भी जब मैं सरागी था, मोही था उस समय भी मेरा कर्ता कोई दूसरा नही था। जो उस तरह का रगीन बना, म्लान बना, इस वृत्तिमे आया उस समय भी मेरा कोई दूसरा नही था। मैं ही केवल अपनी खुदकी परिणतिसे अपने उपरक्त चित्स्वभावका मैं ही स्वय कर्ता था।

जीव प्रत्येक दशामे स्वय परिणतिका कर्ता—यद्यपि वैज्ञानिकतासे ये सब बातें युक्तिसिद्ध हैं कि उपाधिकी सन्निधि बिना विकार नहीं हो सकता है। विकार उपाधि का निमित्त पाकर ही होता है। तब भी विकारयुक्त आत्माको देखो कि वह केवल अपने अस्तित्वमे ही विकार कर पाया या अन्यमे या अन्य के आत्मा मे ? उस उपाधि के समय अपने ही चतुष्टयसे अपनेमें वह विकार कर पाया। परमे कुछ न कर सका। कैसा सहज निमित्तनैमित्तिकयोग है कि निमित्तनैमित्तिक भाव होकर भी परस्परमे कर्ता कर्म भाव रच भी नही है। तो ऐसा परारोपित, विकारवान मैं था, उस समय भी मेरा कोई नही था। मैं एक अकेला ही उस समय उस परिणतिका कर्ता था और इस तरहकी परिणति क्रियाका परिणाम आ गया, ऐसी स्थितिमे यह परिणति क्रिया भी मेरी ही थी, दूसरेकी क्रिया नही थी। साधकतम करण सो मैं ही था दूसरा अन्य कोई पदार्थ नही था।

विकल्प ही दु ख—एक बहुत ही मोटा दृष्टान्त ले लो। दो लडके बहुत दूर-दूर खडे हैं, बीस-बीस हाथके फासले पर। एक लडका अपनी जीभ मटकाता है तो दूसरा लडका झट, जिसे कहते हैं चिढ जाता, बीस हाथ दूर खडा हुआ चिढ जाता है, दु खी होता है। तो यहाँ बतलाओ कि बीस हाथ दूर खडे लडकेने जो अपनेमे दु ख पैदा किया उस दु खको करने वाला कौन है वह स्वय ही तो है दूसरा जो खडा है उसकी क्रियाको इसने विकल्पोमे लिया और विकल्प बनाकर अपने ही आपके दु खका कर्ता बन रहा। ऐसा दु ख किसके द्वारा किया गया ? उस दूसरे लडकेके हाथके द्वारा किया गया ? अपने द्वारा ही वह दु ख स्वरूप पर्याय किया उसर लडके की जिह्वाके द्वारा किया गया ? उसने दु ख अपनेमे अपने लिए अपने ही द्वारा किया, अज्ञान द्वारा, विकल्प द्वारा किया। उस दूसरे लडकेने दु ख दिया गया ? नही। उस दु खी होनेवाले लडकेको मिला क्या, कोई दूसरी वस्तु मिली ? उसे मिला अपना ही एक परिणमन, वही रगीन स्थिति। उस स्वभावके द्वारा आत्माको जो प्राप्य हुआ, वही हुआ कर्म। जैसे कि उस चिढने वाले लडकेने क्या किया ? अपना ही क्लेश, अपना ही क्षोभ। और क्या हाथ आया ? कुछ नही। इसी प्रकार जब यह ससारी था और इस प्रकार विभावोके रूप परिणम रहा था उस समय उसे मिला क्या था ? उसने पाया क्या था ? किया किसको था ? उस ही अपनी परिणतिको

और हो गया वह परिणमन, पर उस परिणमनके फलमे क्या हाथमे आया था ? उन विभाव परिणमनका फल क्या था ? कभी सुख, कभी दुःख। इसके सिवाय और हाथमे नही आया। उस चिढनेवाले लडकेको फल क्या मिल रहा है ? क्षुब्ध हो रहा है। संक्लिष्ट हो रहा है, दुःखी हो रहा है। तो पर पदार्थ अपना ही कर्ता है, अपने ही कामसे खुद ही करण है, अपने ही प्राप्य रूप खुद ही कर्म है और उन क्रियाका फल भी स्वयं आप है, दूसरा कोई नही।

स्वयको कर्तादिकारक माननेका फल—इस प्रकार जो अपने आपको कर्ता, कर्म, करण, कर्मफल मानता है वह अन्य रूप नहीं परिणमता है और शुद्ध आत्माका लाभ लेता है। जैसे कभी कोई कष्ट आ जाय और उन कष्टके भीतर यह निश्चय रखे कि इसमे तो मेरा ही कसूर है तो उसमे मुझे कष्ट नहीं होगा। जैसे जिन पुरुषके निमित्तसे कष्ट होते हैं उसपर विरोधी दृष्टि न रहे कि इसने बिगाड दिया, इसको कैसे मजा चखाऊँ ? ऐसा कोई विकल्प न रहे तब शल्य नही रहती। सो यह समझले कि मेरे ही विरोधदृष्टिसे यह कष्ट है तो उसमे कष्ट भी समाप्त हो जायगा। ऐसा जो अपने आपमे निर्णय करता है उसकी बाहरी कसरत, बाहरी बातें, बाहरी यत्न और विरोधात्मक आग उसके अन्दर नही भटकती है और उसका दुःख नहीं बढता है, दुःख शान्त हो जाता है, क्योकि ऐसी स्थितिमे वह परको कुछ नहीं परिणमाना चाहता, परको कुछ नही बनाना चाहता, परका बिगाड नहीं करना चाहता। इसी तरह मित्रताकी बात है। सुख हो तो यह जानो कि यह भी मेरे परिणमनसे मेरे ही द्वारा मुझसे मेरी योग्यतासे है। ऐसा जानने से यह पररूप नही परिणमता कि भीतरमे बडी दीनताका भाव लावे। सरल ज्ञाता द्रष्टा रहो, विचारो। इस बडे ससारके भीतर रहता हुआ भी मैं ही कर्ता था, कर्म था, करण था और मैं ही कर्मफल था। ऐसा जो ज्ञानी जीव निश्चय करता है वह अन्य रूप नही परिणमता। और ऐसा यदि बन जाता है तो वह इस शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेता है। इस तरह यहाँ यह कहा गया है कि यह आत्मा द्रव्य है और परिणमता है। सभी कुछ देखते जावो, पर सम्बन्धबुद्धि न देखो। ऐसी ही वस्तु स्वरूप की स्थिति उपयोगमे बन जाय तो उसमे मुक्तिका मार्ग मिलता है और फिर अपने इस ही बातके बोधनेके लिए विषय कषायसे हटनेके लिए, व्यवहारमे जो देवपूजा, स्वाध्याय, तप, दान, आदिक साधन है उनमे अपनेसे झुकनेकी पात्रता बनाना है। भीतरमे अपनेको झुकनेकी परिणति बनाना यही मनुष्यभवका सार है।

अशुद्ध व शुद्ध परिणतिमे षट्कारकता—जब मैं रगीली वृत्तिमे था, विभावो से उपरक्त था उस समय भी मैं ही कर्ता था, मैं ही करण था, मैं ही कर्म था और मैं ही कर्मफल था। यद्यपि ऐसी विभाव परिणति होनेपर उपाधि साथ थी और

उपाधिका निमित्त पाकर ही यह विभाव परिणति हुई, पर एक द्रव्यके अस्तित्वको देखकर अर्थात् शुद्धदृष्टिसे देखकर यह विचार करो कि सब स्वय है और परिणमते रहते है, यह बात वहाँ भी बनी रहती है। सब अपने आपमें अपना पर्याय कर रहे हैं और अपनी परिणति क्रियाके द्वारा कर रहे हैं, अपने ही लिए कर रहे हैं। अपने परिणमनमे कर्त्ता, कर्म, करण और कर्मफल मैं ही था। अब इस समय जबकि विशुद्ध दर्शन हो रहे हैं, सहज आत्मवृत्ति जग रही है अर्थात् स्वय रगीलापन मिट रहा है, शुद्ध स्वभावके ऐसे विशुद्ध सहज आत्मवृत्ति जगनेके समय भी मैं ही कर्त्ता हूँ मैं ही कर्म हूँ और मैं ही कर्मफल हूँ।

सन्निद्धिकी निमित्तता—विशुद्ध आत्मवृत्तिकी जागृतिका विधान देखनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि अशुद्ध आत्मवृत्ति कैसे हुई ? उपाधिकी सन्निद्धिमे जो विभावपरिणति दौडती थी उस सन्निधिमे हुई उपाधिकी सन्निधिका अभाव ही आत्म-वृत्ति जगनेका निमित्त है, अर्थात् अनादिकालसे प्रसिद्ध जो कर्मबन्धनरूप उपाधि, उसकी सन्निद्धिकी समाप्ति आत्मवृत्तिकी कारण हुई। कारण कि प्रत्येक पदार्थ स्वतः सिद्ध है, उसका ध्वस नही होता, किन्तु होता है ध्वस सन्निधिका। जैसे दर्पणके सामने पिछी आदि कुछ रखनेपर दर्पण छायारूप परिणमा, तथा पिछीके हटानेपर उसकी सन्निद्धि मिट गई, इस कारण छायारूप परिणमन भी मिट गया, ऐसी स्थितिमे सन्निधि ही मिटी, पिछी नही मिटी। तो कर्मकी सन्निद्धि क्या है ? कर्मबन्धन रहना, स्थिति बनी रहना और उसके विपाककालमे खिरना, यह सब सन्निधि कहलाता है।

सन्निधिका दृष्टान्त—जैसे स्फटिकपर जब तक जपापुष्प आदिकी उपाधिकी सन्निद्धि थी तब तक तो स्फटिक परारोपित विकारवाला कहलाता था, पर जब उपाधिकी सन्निधि हटी, ध्वस हुआ तब स्फटिकमे आरोपित विकार अब नही रहा, अर्थात् जब मुमुक्षु पुरुषमे मोक्षकी रुचि जागृत हुई याने ज्ञान, ज्ञान वृत्तिमे परिणमित हुआ तब उसमे अज्ञानजन्य परिणतिका अभाव हुआ। ऐसी ज्ञानकी वृत्तिकी उत्पत्ति, यही मोक्षमार्ग है, और यही श्रेष्ट ज्ञान है। ऐसी चाह करने वाले ज्ञानी मुमुक्ष है। मुमुक्षु होनेसे पूर्व उस समय भी मेरा कोई नही था-और इस समय भी यह मैं आत्मा अकेला ही हूँ। विशुद्ध चित स्वभावको लिए हुए स्वय कर्त्ता हूँ और यही मै एक विशुद्ध चित्स्वभावसे करण हूँ, साधकतम हूँ। मेरी इस परिणतिको किसने बनाया ? काहेके द्वारा बनाया ? अपना मैं ही साधकतम हूँ दूसरा नही है।

आप्तका निर्णय—एक जगह समन्तभद्र स्वामीने पूछा और यह परीक्षा की कि मेरे नमस्कार करनेके योग्य कौनसा देव है ? बहुत से देव मानो बैठे थे, और वहाँ समन्तभद्राचार्य कल्पना करो कि पहुँचे हो, वहाँ परीक्षण कर रहे हो कि मेरे नमस्कार

करने के योग्य कौन देव है ? तब कोई जिनेन्द्रदेवको संकेत करके बोले कि ये पूजने योग्य है, इनके पास देवता लोग आते हैं, आकाशपर चलते हैं, छत्रादिक विभूतिया हैं। तो समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि ये सब विभूतिय। मायावी जीवोंमे भी देखी जा सकती है। इन कारण प्रभो तुम मुझे महान् नही हो।
फिर मानो जिनेन्द्रदेवकी ओरसे कोई बोल उठा कि इनका सप्तधातुविकार रहित शरीर है। तब समन्तभद्र बोले कि धातुरहित शरीर देवोंके भी होता है इससे भी आप मेरे लिये महान् नही है। इन्होंने तीर्थ चलाया। समतभद्र बोले कि अपने-अपने तीर्थ बहुतोंने चलाये आदि बहुत वर्णन करके फिर तुम महान् किस कारण मे हो ? यह आगे बताया है कि तुम निर्दोष हो, इसीमे पूर्ण ज्ञानी हो इसी कारण तुम महान हो। उस प्रसगमे यह बताया है कि जो चीज कम होती है वह कहीं बिल्कुल नही रहती, जो चीज अधिक होती है वह कहो पूर्ण हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि जो उपाधिके निमित्तमे अधिक और उपाधिके अभावसे होती है उसका ही कहीं पूर्ण अभाव हो जाना है तथा जो उपाधिके होनेसे कम होती है और और उपाधिके अभावमे बढ जाती है, वह कहीं पूर्ण बढ जाती है। सो उपाधिके अभावमे विशुद्ध चित्स्वभावका विकास हो जाता है। इससे हो प्रभो आप मेरे लिये महान् हो।

मुक्ति क्या ?—मुक्ति क्या चीज कहलाती है ? ज्ञानका ज्ञान रूप रहना इसीके माने मुक्ति है परमार्थसे। कर्मोसे छूटना, मुक्त होना यह व्यवहारसे मुक्त होन कहा जाता है। यह बात असत्य नहो है। देखो भैया, अभी भी कर्ममे बँधे हैं। कितनी बातें आफतकी लगी हैं ? इन कर्मोसे छूटना है, इससे ही मुक्ति है। किन्तु उपाय इसका करना क्या है—केवल अपनेमे लीन होना है सो परमार्थसे कैवल्यदृष्टि तो मोक्षमार्ग है और कैवल्य रहना मोक्ष है।

बन्धनका कारण स्वय—यह जीव स्वय अपने आपमे किस तरहसे बँधा है ? और किस तरहसे छूटता है ? कभी जमाई लेनेमे जरा मुँह ज्यादा बढ जाता है तो नीचेकी दाढ कुछ खिसकसी जाती है, तो कष्ट होता है और फिर कुछ रुककर ठिकाने पर आ जाती है। वहाँ दूसरेने कुछ नहो किया, खुद ही ठीक कर लिया। केवल एक द्रव्यके देखनेकी बात कही जा रही है। देखो भैया, दूसरे द्रव्यका विरोध करके न देखना, क्योंकि दूसरे पदार्थोंका विरोध करके देखनेके माने हैं बधपद्धति व मोक्षपद्धति दोनो का नाश करना है। दूसरे पासमे है, दूसरेका निमित्त पाकर विभाव परिणमन होते है, इन सब बातोको प्रमाणबलसे अगीकार करके फिर मात्र एक द्रव्यको लक्ष्य कर यह देखो कि इस द्रव्यमे क्या हो रहा है ? ऐसी दृष्टिको कहते हैं शुद्ध दृष्टि।

शुद्ध दृष्टि क्या—शुद्ध दृष्टिका अर्थ शुद्ध परिणति नही है किन्तु है केवल एक द्रव्यकी दृष्टि। हम एकको देख रहे हैं, बुरा चल रहा है तो एकको देख रहे हैं, भला चल रहा है तो एकको देख रहे है। एक देखनेकी दृष्टिका नाम शुद्ध दृष्टि है। जगतके जीवोने स्वतन्त्र दृष्टिमे, हटकर संयोग दृष्टि सम्बन्ध दृष्टि, परस्पर स्वस्वामित्व दृष्टिसे ही सब कुछ जाना और इन्ही विकल्पोके परिणामस्व रूपमे आजतक इनपर अधेर छाया रहा, जिसके फलस्वरूप यह जीव चारो गतियोमे भटकता रहा। मात्र दृष्टिदोपसे परिस्थिति ऐसी कठिन हो रही है कि शरीरमे बँधकर क्षणमे कीडे मकोडे बन रहे हैं। गति और नामकर्म सम्बन्धी अनिष्टितम सामग्रियोमे घोर सकट सह रहे है। देखो भैया, इन सबका मूल हमारा आपका अज्ञान है। सकटोका मूल कारण केवल बात ही बात थी, भ्रम ही भ्रम था, अज्ञान था, दृष्टि-दोष था, परके प्रति यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकारकी कल्पनाएँ थी। बतलावो कोई चीज भी हैं ये कल्पनाएँ। अरे भैया, ये कल्पनाएँ भ्रम ही तो है। तेरा और परका क्या सम्बन्ध ? किन्तु ।देख, इस भ्रमसे ही सचमुच तुझपर कितने बडे सकट छा गये हैं। शरीर भी बँधा है, अनेक परिस्थितियोंने जकडा है।अरे ये सारी विपत्तियाँ कहाँसे आगयी हैं ? विपत्तियोका कारण है केवल मुढता।

अज्ञानमे विडम्बना—एक कथानक है कि एक सेठके यहा धोबिन उनके धुले कपडे ले गई। उसके पहले दिन धोबिनकी गधीका बच्चा मर गया था। सो वह रो रही थी। उसने उस बच्चेका नाम गधर्वसेन रखा था। सेठने पूछा तू क्यो रोती है ? धोबिनने कहा कि अभी तुम्हे पता नही, दुनियापर कितने बडे सकट आ गए गधर्वसेनजी मर गए। सेठ ने कहा, क्या गधर्वसेन मर गए ? बोली-हा। पहले यह होता था, घरमे ही नही अगर कोई बाहरका भी बडा व्यक्ति मर जाता तो लोग मूछ मुडाते थे। सो सेठ जी ने मूछ मुडा ली। एक सिपाहीने सेठसे पूछा कि क्या हो गया ? मूछ क्यो मुडाए ? तो सेठने कहा कि आपको क्या नही मालूम ? गधर्वसेन जी मर गए। सिपाहीने भी मूछ मुडवा लिए। इसी तरह थानेदारने सिपाहीसे पूछा, तो उसके बतानेपर थानेदारने भी मूछ मुडवा लिया। कोतवालने थानेदारसे पूछा तो थानेदारके बतानेपर कोतवालने भी मूछ मुडवा लिया। इसी प्रकारसे तहसीलदारने भी अपने मूछ मुडवा लिए। अब सभामे राजाके समक्ष बात चली कि आज सभी लोग मूछ मुडवाये बैठे हैं, बात क्या है ? तब लोगोंने बताया महाराज ! श्री गधर्वसेन जी महाराज मर गए है। राजाने पूछा कि गधर्वसेन जी महाराज कौन थे ? किसी को पता हो तो बताये। तब राजानें कहा कि यह बात किसने बताई कि गधर्वसेन जी महाराज मर गए। कोतवालने कहा कि थानेदारने बताया, थानेदारने कहा कि सिपाही ने बताया, सिपाहीने कहा कि सेठने बताया और सेठने कहा कि धोबिनने बताया।

वोविनको नभामे बुलाया और पूछा कि गधर्वसेन जी कौन थे ? धोविनने हाथ जोड कर कहा कि महाराज आपको पता नही, वही हमारा एक सहारा, जिसमे हमारा काम चलता था वह मेरी गधीका वच्चा उमीका नाम गधर्वसेन था वह मर गया है।

देखो मूढतावश सारे गावमे मूढता छा गई और सबकी मूछ मुड गई इसी प्रकार चारो गतियोमे हम जीवोपर सकट छा रहे हैं, पर विपत्तियोका कारण है मात्र भ्रम । तथ्य कुछ नही, मात्र भ्रमके ही सकट है ।

निमित्ताधीन दृष्टिका परिणाम—सब पदार्थ अपना अस्तित्व लिए हुए है । किसीका किसी परसे कोई सम्बन्ध नही हैं । रही विभावकी वात, निमित्त नैमित्तिक परिणतिकी वात । सो ये सब उपादनकी कलाएँ हैं । ये योग्य उपादन भी किस प्रकारके पदार्थोंको निमित्त बनाकर अपनी कैसी स्थिति बना लेते हैं ? लेनदेन एकका दूसरेमे कुछ नही है । 'जैसे आप ही वच्चेको पुत्र मानकर मोह करते हैं, जिन्दगी भर आसक्ति रह सकती हैं पर पुत्रने कुछ कर दिया क्या ? उसने तो अपना उल्लू सीधा किया, उसने अपनी स्वार्थपूर्ति की । यदि पुत्र विनयशील है तो वह अपने लिए विनयशील है कि आपके लिए ? आपकी परिणति आपके लिए है, उसकी परिणति उसके लिए है, आपका फल आपको मिलता, उसका फल उसको मिलता । किसीकी परिणतिका फल दूसरेको नही मिलता यह शुद्ध द्रव्यको वात चल रही है ।

लक्ष्यभ्रष्ट दृष्टि—एक लक्ष्य वन जाय कि हम किस निगाहसे सोच रहे हैं तो वह वात समानी जाती है । और जिस गलीसे हम चल रहे हैं उसमे चलते हुए दूसरी गलीके मुहल्लोमे रहने वाले मकानोको सोचा करें कि वे मकान तो मिलते ही नही, फिर सोच कर घवडाते हैं कि भूल गए क्या ? वह मकान यहा नही मिल रहा । आप पथभ्रष्ट हैं सो दुखी होते हैं । और भी देखो जैसे आप सोनेके वाद जव जागते है तो अन्य जगह पहुँचनेपर आप यह ख्याल करते है कि मैं कहा सो रहा हूँ ? आखिर जल्दी ही ख्याल आ जाता कि मैं फलाँ जगह सो रहा हूँ । कभी कभी ऐसा हो जाता है कि सोचने मे एक पाव मिनट लग जाता है कि मैं कहा पर हूँ ? किस जगह पर हु ? ख्याल ठीक आ जानेपर विश्राम मिलता है । तो इस जगहका पता आप निश्चित करलें कि हम किस गलीमे चल रहे हैं ?

निज गलीका निरीक्षण—पदार्थोंको सर्वतोमुख देखनेकी गलीमे आप चल रहे हैं सो इनके सयोगोको, सम्वन्धोको देखा जाय तो ये झूठ नही हैं । हैं ये । क्या आत्मा के साथ वद्ध कर्म नही हैं ? हैं, नही तो, अपनेको अलग करके वतलायें । आपका शरीर वहा वैठा रहे, आप यहा सरक आवें तो ऐसा नही हो सकता है । फिर भी, इतना होते हुए भी आपमे आप है पुद्गलमे पुद्गल है । आपका कर्तृत्व कर्म, करण,

कर्मफल आपमे ही चल रहा है। अब केवल एक द्रव्यके स्वरूपको प्रतिष्ठित करने वाली शुद्धनयकी गलीमे विहार करें तो भैया, केवल एक द्रव्यको देखनेकी कलामे शुद्ध गलीके विहारसे कर्मबन्धनमे फर्क होता है और सकटमे अन्तर होता है।

निजहितसाधनाकी प्रेरणा—उक्त उपायसे अपनी शांतिके पानेकी योग्यता बढती है सो आज यह अपने आपको अपने द्वारा करना है, अपने भलेके लिए करना है, कुछ अपनी कल्पनायें या सिद्धान्त स्थापित करनेके लिए नही, दुनियामें कुछ धर्म प्रवृत्ति चलानेके लिए नही करना है। यह सब कुछ तो भूसेकी तरह मिलता ही है। जैसे अनाज बोया जाता है तो गेहूँ पानेके लिए गेहूँ निकलते हैं तो भूसा भी निकलता है। इसी प्रकार ज्ञानकी वृत्ति अपनी शांतिके लिए है, अपने सकट दूर करनेके लिए है। हा, ज्ञान वृत्तिसे चलनेवालेके वातावरणमे अन्य जीवोको भी धर्ममार्ग मिलता है, यह सब औपचारिक फल है। ज्ञानवृत्तिका असर तो अपने आप होता है। जिस समय मैं मुमुक्षु हूँ उस समय भी मेरा कोई नही है। मैं अपने विशुद्ध चैतन्य स्वभावसे स्वतन्त्र होते हुए कर्ता हूँ, और एक वह मैं ही साधकतम हूँ और इस आत्माने अपने आपको ही इस रूपमे पाया है सो इस आत्मक्रियाका फल मैं आत्मा ही हूँ और इस शुद्ध चित् परिणमनसे उत्पन्न किया हुआ अनुकूल रूप फल भी देखो भैया, मैं ही शुद्ध-आनन्दस्वरूप हूँ। सो मैं ही कर्मफल हूँ। इस तरह सर्वत्र एक अद्वैत दृष्टिसे अपने आपको देखना, ऐसी वृत्तिमे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है।

आत्माकी स्वतन्त्र परिणति पद्धति—इस प्रकार यह आत्मा चाहे बन्धकी पद्धतिमे हो, चाहे मोक्षकी पद्धतिमे हो, यह एक आत्मा ही अपना अस्तित्व लिए रहता है। इन सब पद्धतियोंमे जो अपने आपको एक ही देखता है, एक ही भावना करता है ऐसे उस ज्ञानी आत्माके परद्रव्यकी परिणति नही होती, मोह नही रहता। जैसे कि एक परमाणु है जो अपने एक एकत्वकी प्रभावनामे उन्मुख है अर्थात् जो परमाणु अपने जघन्यगुणकी वृत्तिकी ओर है इसीको कहते हैं परमाणु अपने बिल्कुल एकत्वकी ओर है; ऐसे परमाणुमे परद्रव्यकी परिणति नही होती, स्कन्धरूप परिणमन या अन्य-अन्य विकार यहा कुछ नही होता।

ज्ञानीकी परिणति—जो जीव अपने आपकी आत्माके एकत्वमे उपयोग रखता है अर्थात् शरीरसे हटकर, द्रव्यकर्मोसे हटकर, विकल्पोंसे हटकर और क्षण-क्षणमे होनेवाली सर्व प्रकारकी आत्मपरिस्थितियोमे भी उपयोगको हटाकर जो एकत्वकी प्रभावनामे उन्मुख हैं, अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वभावकी भावनामे उन्मुख है, ऐसे ज्ञानी जीवकी परपरिणति नही होती है। और, परमाणुकी तरह है जब यह

आत्मतत्त्व एकताके रूपमे भाया जाता है तब परसे सम्पृक्त नही रहता। और जब पर द्रव्योमे सम्पर्कता न रही तो यह विशुद्ध हो जाता है।

आत्माका फसाव और उसका कारण—आत्मा कितने सकटमे है, कितने फसावमे है? चौरासी लाख योनियोंमे यह जन्म मरण कर रहा है। विचित्र-विचित्र कायापलट होरही हैं। असंज्ञी निगोद इत्यादि अवस्थाओमे यदि आ गया तो उसका भवितव्य खराब हो जाता है। जैसे कि आंखो देख तो रहे हो, इन बिल्ली, कुत्ते कीडे मकोडोको, इनका जन्म ही क्या है। इन कीडे मकोडोकी कौन पूछ करता है। वृक्ष खडे हैं इनपर जी चलना जावे तो झट कुल्हाडीमे काट कर फेक दिया जाते हैं। देखो इन जीवोकी क्या हालत हो रही है। उनका कौन सहायक है? ऐसा इस जीवका भटकना हो रहा है। ऐसे सकट इस जीवपर छाये हुए है। जिन जीवोने अपने एकत्व स्वरूपका दर्शन नहीं किया उन्हे इस अपराधमे ये सारे दण्ड भुगतने पडरहे हैं। कोई मनुष्य कुछ समयको लोकव्यवहारमे ऊँचा बन गया तो क्या बन गया? प्रतिष्ठित हो गया, धनी हो गया, प्रतिष्ठावान हो गया तो क्याहो गया? चार दिनकी चांदनी फेर अँधेरी रात। इतना बडा हो जानेके बाद यदि पुन कीडे मकोडेके पर्यायमे चला गया तो फिर बडप्पन क्या रहा?

हम स्वय अपनी सृष्टिके निर्मापक—हम अपने हितके लिए बहुत बडी बडी ऊँची ऊँची बातें सोचते हैं। बडे बडे उद्यम करते है, पर वे सारे उद्यम व्यर्थ ही तो है। अपनी सृष्टि तो अपने परिणामोके अनुकूल होती है। और परिणाम इस प्रकार के हैं कि कीडे मकोडे बननेकी पर्याय मिली तो इस दिखावट, बनावट, बडप्पन से अपने आपके आत्माका क्या हित है कितना सकट छाया है और भी गजबकी बात क्या है कि उस सकटपर तो दृष्टि रखते नही और जो मौज मिलती है, पुण्य का उदय हुआ है, हाथ पैरो वाले मनुष्य बन गए है, कुछ मन समझदार हो गया है तो उनबातो पर हर्ष मनाते हैं, गर्व करते है, अपनी शान समझते है पर यह सब शान धूलमे मिल जायगी। यदि अपने ज्ञानका रक्षण न किया, यथार्थ जैसा सहज स्वरूप है, वैसी भावनाओ द्वारा अपनो अपने आत्माका पोषण नहीं किया तो यह सारी शान धूलमे मिल जायगी अर्थात् क्लेशमय भव मिलेंगे।

पुरुषार्थका प्रोत्साहन—भैया! इन सब सकटोसे दूर होना है तो यह साहस करो इस ज्ञानमात्र आत्माके समीप रहो महत्त्वपूर्ण आत्महितके प्रोग्रामके सामने दुनियावी झझट क्या झझट है? कुछ भी तो आपत्ति नही है। ऐसी समझ बनाओ। देशसकट, समाज-सकट, परिवारसकट, देहसकट ये भी कोई सकट नही हैं एक आत्महितके प्रोग्रामके सामने सारा जगत मुझसे जुदा है। जिसे हम कहते हैं मेरा देश, मेरी समाज, मेरा मित्र, मेरा

परिवार, मेरी गोष्ठी ये सब कुछ मेरे से न्यारे हैं। एक यह आत्मा जो यहाँ है, यहाँ से मरकर, अन्यत्र पहुँच गया फिर यहाँ का क्या? जिस देशमें विरोध रखते हैं मरकर यदि मैं उसी जगह पहुँच गया तो वहाँ क्या परिणाम बनेगा? यहाँ की तो सब ओर से ओर मिट जाती है। आत्महित याने समाधिभावके प्रोग्राम हों और यह ही सहजस्वरूप आत्मतत्त्व उपयोगमें रहे जिसपर कि हमारा अनन्त काल तकका सुखमिलना निर्भर है। यदि आत्मदृष्टि रही तो यह मेरे कामकी बात रहेगी। हम यहाँ की समस्याएं हल करें तो कितने दिन तक काल्पनिक मौज मान पावेंगे, ये प्रसंग विकल्पोंमें तो हटा नहीं देंगे और यह आत्मस्वरूपके भावकी दृष्टि हमें शान्तिका काम देगी, नियमसे काम देगी। तो यह चीज कैसे मिले? इसका उपाय इस गाथामें कहा जा रहा है।

स्वपरिणामाधार बंधमोक्षपद्धति—चाहे बंधकी पद्धति हो, चाहे मोक्षकी पद्धति हो, सर्वत्र, बंधमें लगा रहता है तो, मोक्षमें लगा रहता है तो, मोह बना रहता है तो, समाधिस्थ बना रहता है तो, सर्वत्र, अपनी ही परिणतिसे यह एक आत्मा ही परिणम रहा है। और अपने उस परिणाममें सुख अथवा दुःख भी अकेला पा रहा है। ऐसे एकत्वकी भावनाको जो रखता है फिर चाहे रागसे यह मलीन अवस्था हो, चाहे द्वेषसे मलिन हो, यह शुद्ध आत्मतत्त्व को पा लेता है। जैसे मिले हुए दूध और पानीको भेददृष्टि डालकर अलग-अलग देख लिया जाता है और यन्त्रोंके साधनोंसे भी स्पष्ट समझ लिया जाता है। कि इस आधसेर गिलासमें तीन छटाक दूध और ५ छटांक पानी है, यों न्यारा जान लेते हैं। दूध कहीं अलग धरा हो पानी कहीं अलग धरा हो सो बात नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि गिलासमें दूध नीचे है और पानी ऊपर है। दूध और पानी बिल्कुल दृष्टिसे सन्निकट है मोटे रूपमें एक क्षेत्रावगाह हैं। किन्तु एक क्षेत्रावगाह वस्तुतः नहीं है। दूधके परमाणुके प्रदेशमें पानीका परमाणु नहीं पहुँचा और न पानी मे दूधका अणु पहुँचा।

क्षेत्रावगाही सम्बन्ध—जीव और शरीरकी तरह दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमें नहीं हैं। फिर भी स्थूल दृष्टिमें एकत्र है और उनका स्थान भी अलग नहीं कर सकते कि लो इतनी जगहमें दूध है और इतनी जगहमें पानी है। फिर भी ज्ञानमें जब उसमें खोज की जाती है तो खोजने वाला कोई जान जाता है कि भाई इसमें आधे से भी कम दूध है। जैसे हड्डीकी फोटो लेने वाला यंत्र मनुष्य के कपड़ो की फोटो नहीं लेता, माँस, खून, चमड़े आदिका फोटो नहीं लेता, सबको पार करके हड्डीका फोटो ले लेता है, इसी प्रकार ज्ञानदृष्टि शरीरको पार करके, विभाव भावोंको पार करके, कल्पना, विकल्प विचारोंको पार करके अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वरूप को ग्रहण कर लेता है। कहा अलग रखा है वह चित्स्वभाव, परन्तु ज्ञानदृष्टिसे

विविक्त चित्स्वभावको ग्रहण कर ही लेता हैं। ऐसे ही ज्ञानबलसे इस आत्मामे आत्माके एकत्वको जो निरखता है उसका मोह प्रलीन हो जाता हैं। भैया ! उस एकत्वको निरखनेके समय इतना तो स्पष्ट विदित है कि आश्रयभूत पदार्थोकी खबर नही रहती है, सो जो अपने आत्माके एकत्व स्वभावमे उपयुक्त हैं उसको पर निमित्तकी याद न होनेसे रागादिक भावोंमे वह व्यक्तता नही रहती। यद्यपि आत्मानुभूति तबके समयमे भी नीचेके कई स्थानोंमे राग द्वेष विषय कषाय परिणमन चलता रहता है सो वह अबुद्धिपूर्वक चलता है, बुद्धिपूर्वक नही है। व्यक्तरूपमे नही है। क्योकि उस स्थितिमे आश्रयभूत पर पदार्थोकी याद भी नहीं है। फिर यादका प्रस्फुटित रूप कैसे बने ? इतना लाभ भी आत्मानभूतिमे दिखता ही है, फिर ज्ञानाभ्यासमे अबुद्धिपूवकभाव भी समाप्त होने लगते हैं। और इस महान् पुरुपार्थके प्रतापसे कभी, एकदम, यह आत्मा सर्वथा विशुद्ध हो जाता है।

ज्ञानपान ही अमृतपान—ज्ञानमें वस्तुस्वरूपका वास्तविक ज्ञान करना अमृतपान करना है। लोकमे ऐसा प्रसिद्ध है कि अमृतके पीनेसे जीव अमर हो जाता है, मनुष्य अमर हो जाता है। वह अमर चीज क्या है जिसको पीकर जीव अमर बन जाया करते हैं। वह अमृत चीज कैसी होती होगी ? क्या पानी जैसा होगा? किसी रगका होता होगा ? कुछ कल्पनामे तो लावो। अभी केवल शब्द ही तो सुन रखा है कि अमृतपान करनेसे जीव अमर हो जाता है। कुछ कल्पनामे भी तो लावो कि यह अमृत वस्तु ऐसा होता होगा ? क्या कोई गिलासमे भरनेकी, कटोरीमे भरनेकी चीज है ? वह अमृत क्या होता होगा। कुछ समझमे आ तो नही रहा है, कल्पनामे तो नहीं आ रहा है कि वह अमृत क्या चीज होता होगा। कुछ जोर लगावो उस अमृतके तत्त्वोंकी समस्या सुलझानेके लिए। हाँ कुछ समझमे आया कि देवताओंके कठमे अमृत रहता है, वह झर जाता है और देवता अमर रहते हैं। वह देवतावोंके कण्ठका भी अमृत क्या चीज होती होगी ? क्या उस अमृतके पीनेसे देवता अमर हो जाते हैं ? क्या उनकी मृत्यु नही होती है ? मृत्यु होती है, पर उनकी आयु बडी होती है इसलिए वे अमर कहे जाते हैं, परन्तु मरण उनके भी होता है। सो वह भी वास्तवमे अमृत नहीं है। वह भी व्यावहारिक शब्द है, अपने अर्थमे निभा देनेवाला शब्द नही है। और फिर देवकण्ठका अमृत है क्या ? होता होगा कुछ, पनीला पानी जैसा। जैसे हम आप लोगोंके भी कभी घूट उतर जाता है ऐसा ही कुछ और अच्छा घूट देवताओंके भी उतर जाता होगा। वह अमृत क्या हैं ? कुछ भी हो, वह भी अमृत नही है। फिर दुनियामे वह अमृत क्या चीज है जिसे पी लेनेसे जीव अमर हो जाता है। वह अमृत क्या है ? आप विचारें कि दुनियावी कोई चीज अमृत हो तो अमृत तो उसे कहते है जो मरे नही, जो खुद मर जाय वह अमृत कैसा ? जब उसे पी लिया, हजम

ल्र लिया तो वह अमृत वेचारा तो खुद ही पहिले मर गया उससे दूसरोंके अमरत्वकी आशा क्या ? आशा रखते है लोग कि कोई ऐसा अमृत मिले कि जिसके पीनेसे मनुष्य अमर हो जाता है वह अमृत क्या है ? अमृत वह है जो स्वय अमर है, न मृत इति अमृत, जो स्वय न मरे, जो अमर हो, जिसके आश्रयसे अमरत्वका अनुभव हो वह अमृत कहा जाता है।

स्वचैतन्यस्वभाव ही अमृत—आप हम सबके लिए ऐसा अमृत क्या है ? वह अमृत है निज सहज स्वभाव। यह चैतन्यस्वभाव, यह चैतन्य ज्योति अमृत है, चैतन्य ज्योति न मरी है, न मर सकेगी, वह तो अत. प्रकाशमान है। इस चैतन्य ज्योतिका पान कैसे हो जायगा ? यह तो मुखमे भी नही आता। इसका पान ज्ञानदृष्टि से टकटकी लगाकर अपने आपमे मस्त लेना है, ज्ञानमे समा लेना, यही अमृतका पान है। इस अमृतके पानसे जीव अमर हो जाता है। जीव अमर तो था ही, अमर रहेगा पर इसके अमरत्वका ज्ञान नही था।

निज अमरत्वस्वरूपकी श्रद्धा ही अमरता—अमरत्वके जाननेसे पहिले तो यह उपयोगमे डर था कि हाय मर जाऊँगा, नाना प्रकारसे इनकी परिस्थितियाँ बिगड जायेंगी। पहिले शका करते थे लेकिन अब इस अमरत्वके उपयोगमे आनेसे यह जानकर लिया कि मैं अमर हूँ,तो लो अमर बन गए। परन्तु खेद हैकि अज्ञानकी दृष्टिके कारण इस जीवने ज्ञानामृतका पान नही किया, जिसका फल यह है कि अनादिसे अब तक इसने कैसी यातनायें पायी है। समय गुजर गया, सो उन यातनाओंका अब विशेष चिन्तन नही। पर्यायोंके समय सब पूरा पता पडता है। अच्छा, और बात जाने दो, जिस समय आपका सिर दर्द करता है तो कैसी वेदना करते हो ? कल परसों हुआ होगा, आज नही है तो शका भी नही है हाय ! कैसी-कैसी यातनाएँ इस जीवने भोगी। कैसे तिर्यञ्चगतिमे दु ख कैसे मनुष्यगतिमे दु ख और कैसे हैं देवगतिमे दु ख। अनेकों सकट सहे, कष्ट भोगे, अब तो कुछ आत्माकी करुणा का भाव लावो।

एकत्वस्वभावके दर्शनकी महिमा—सबसे मुक्त होनेका उपाय आपके एकत्व-स्वभावका दर्शन है, श्रद्धान है, आलम्बन है, और कोई दूसरा उपाय नही है। सदाके लिए सकटोंसे मुक्त हो जाय, ऐसा उपाय करना कोई बुद्धिमानी है वास्तविक ऐसा उपाय करते हुए मे यदि ऐसी परिस्थिति आई है कि निर्धन हो जाए, इज्जतमे कभी कमी आ जाय, अपमानित हो जायँ कोई पूछने वाला भी न रहे क्योकि वह मात्र अपने काममे लग रहा है ना, जगत स्वार्थी है, किसीके विषयका प्रयोजन यदि अपनेसे न सधे तो भला फिर कोई पूछने क्यों लगेगा ? ऐसी कदाचित् परिस्थितियाँ आजाये तो भी मूल्य समझो आत्महितका, और उन सकटोंका कुछ भी मूल्य न समझो। वे सकट

कुछ भी नही हैं। यह इस पर्यायरूपमे उपस्थित सब कुछ धूलमे मिल जावो, कुछ परवाह नही है। अपने प्रभुका प्रसाद पाओ।

विपदाए पुरुषार्थकी प्रेरणात्मक—विपदाएँ लौकिक विपदाएँ यदि बहुत आती हैं तो आवो। ये विपत्तियाँ तो मुझे सावधान करनेके लिए आती है। मौजमे रहनेवाले पुरुषकी आत्मा उच्च नही बन पाती और सकटमे रहनेवाले पुरुषकी आत्मा उच्च बन जाती है। ये विपदाएँ रागकी नीदमे सोये हुए पुरुषको जगानेके लिए आती हैं। बहुत नीचेकी ओर डुबने वाले जीवको समझानेके लिए ये विपदाएँ आती हैं। कष्टोकी स्थितियाँ। आवो, फिर भी इन सबका कुछ मूल्य नही है। जैसे लोकमे बडे पुरुष अथवा कोई भी ऐसा जिसके विरोधमे कोई दूसरा कुछ कहता है और उसके कहनेपर ध्यान देता है तो ध्यान देनेके मायने यह हुआकि उसके विरोधकोमहत्व शाली समझ लिया है। तो नीति कहती है कि उसपर कोई भी शब्द न बोला जाय। इसके माने उसका विरोध असार है। इस प्रकार हे मुमक्षुवो! इन सारे सकटोका मूल्य कुछ न समझो, वे सब अन्य हैं, उनसे तुम्हारा क्या बिगाड होता है? मैं तो अद्वैत पुरुष अपने आपमे सुरक्षित हू, इस प्रकार आपके एकत्वकी भावनामे जो लग रहे हैं वे सब सकटोंसे दूर हो सकते हैं।

संकीर्णतासे पृथक्त्व व निर्मलताका उद्गम - अपने पर्यायोका आत्मा ही कर्त्ता है और उन्हे अपने ही द्वारा किया जाता है, अपने लिए किया जाता है, अपनेको ही किया जाता है। इस प्रकारका निश्चय करने वाले, भावना करने वाले ज्ञानीजन पर्यायोमे सकीर्ण नहीं होते वे परिस्थितियो और परिणतियोमे आत्मबुद्धि नही रखते, क्योकि इन भावनाओमे उनकी दृष्टिमात्र एक शुद्ध आत्मापर पहुची है इस कारण वे किसी परमे और किन्ही पर पर्यायोंमे अनुरक्त न होकर एक मात्र स्वय स्थिर होनेसे उनमे निर्मलताका उद्गम हो जाता है। इस ही बातको श्री अमृतचद्रजी सूरि कलश काव्यमे कहते हैं कि द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा सामान्यमज्जितसमस्त-विशेषजात, इत्येष शुद्धनय उद्धतमोहलक्ष्मीलुण्टाक उत्कटविवेकविविक्तनत्त्व,॥ अन्य द्रव्यसे भिन्न होनेके कारण अन्य द्रव्योको अपनेसे जुदा कर देनेके कारण विविक्त हुआ यह आत्मा ही एक शुद्धनय है

शुद्धनयका स्वरूप व प्रताप—शुद्धनय कैसा है कि जिसकी दृष्टिमे सामान्यमे डूब गया है समस्त विशेष जिनमे ऐसे विविक्त तत्त्वका उत्कट विवेकसे दर्शाने वाला है और उद्धत मोहलक्ष्मीको लूटकर विनष्ट करनेवाला है। समान्यमे समस्त विशेष समूह डूब गया है अर्थात् शुद्धनयकी दृष्टिमे गुण भेद और पर्यायकी विशेष दृष्टि नही रही है, यद्यपि गुण और पर्याय तो हैं ही किन्तु वे गुण पर्याय उस समान्यतत्त्वमे निमग्न

हो गये हैं, ऐसा यह शुद्धनयस्वरूप यह स्वयं आत्मा ही तो है। शुद्धनय एक ज्ञानका नाम है और ज्ञान आत्मा है। वह शुद्धनय उद्धत, उद्दंड, स्वच्छन्द, जिसे चाहे उसे दवोच देने वाली जो मोह लक्ष्मी है, उसको लूटने वाला है, विनष्ट करने वाला है, वरवाद करने वाला है ऐसा यह शुद्धनय है। वस्तुके एकत्वस्वरूपकी दृष्टि जब होती है तब वहाँ मोह नही ठहर पाता। उत्कट विवेकके कारण शुद्धनय अत्यन्त विविक्त तत्त्व वाला है यह, जिसने कि इस मोहको भी नष्ट कर दिया है।

मोहका स्वरूप—मोह कहते इसीको हैं कि दूसरे द्रव्योसे सम्बन्ध मानना, अर्थात् निजसे भिन्न दूसरे द्रव्यके साथ सम्बन्ध माननेका नाम ही मोह है। सम्बन्ध मानने की ही दृष्टिमे आकुलताएँ हैं किसी परसे अपना सम्बन्ध माने, परको ही अपना अधिकारी माने, जिसे दूसरे नामसे अज्ञान कहा जाता है, यही तो मोह है, अज्ञान है। इस अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है। प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसही की परिणतिमे होता है। उसका स्वामी वही पदार्थ है। परके बारेमे विपरीत सोचनेमे परमे कुछ नहीं गुजरता है किन्तु यहाँ हमे विपरीत कल्पनाओंमे आकुलताएँ आ दवोचती हैं।

शुद्धनयका दृष्टिवल—शुद्धनयकी दृष्टिमे वस्तुस्वरूपका ज्ञान होगा कि यह भी एक चीज है पर यह मुझसे पृथक है। इस ज्ञानमे दूसरे पदार्थकी किसी भी परिणतिको देखकर अतरगमे मुझे आकुलताएँ नही रहेगी। यह जो हुआ ठीक हुआ, यह हुआ सो ठीक है। जो होता है सो ठीक है। इसका परिणमन है, हो जाता है। हम अपने आपको समझदार वनालें, सावधान वनालें तो हम शांति पा लेंगे। और किसी वाह्यकी दृष्टि करके हम एक दम ही उस ओर वह गए तो शान्ति नहीं पासकेंगे। वहुत वडी जिम्मेदारी हे आत्मन्। तेरी तुझपर है। तू इन परपदार्थकी परिणतिके प्रसगके अज्ञानसे अशान्ति और ज्ञानसे शान्ति प्राप्त कर सकता है। भैया, मनमाने न चलो, कुछ पुण्योदय होनेपर, कुछ समागम होनेपर भले ही उनमे अपनेको महत्त्वशाली समझें और जो मनमे आवे तैसा परके प्रति व्यवहार करे, लेकिन यह परिस्थिति कव तक चलेगी? यह सव मिट जायगा। आज अच्छा है तो कलका कुछ पता नही।

विचित्र परिवर्तन— मृत्युके वाद एकदम विचित्र निर्णय हो जाता है। कहाँ तो मनुष्यकी आकृति सामने है और कहाँ इस आकृतिके पश्चात् दूसरे जन्ममे एकदम ढाँचा ही वदल जाता है जिस गतिमे जायगा उस योग्य ही आकृति व भाव वनेंगे। जिस शरीरको यह धारण करेगा उसमे ही यह फैल जायगा। ये वृक्ष दिखते हैं, डाली टहनी पत्ते आदि दिखते हैं इनका कितना विस्तार है। उन सव अवयवोमे यह आत्मप्रदेश कैसा फैल जाता है। आकारमे भी विचित्र ढग हो जायगा, परिणामो मे भी विचित्र ढग हो जायगा। ऐसा यहाँ कुछ नही रहेगा जैसा कि आज है।

निजका दायित्व—बडी जिम्मेदारी अपने आपकी यह है कि हम क्या बनेंगे ? दूसरा जीव कोई सहायक नही, कोई मददगार नही। मददगार कोई हो ही नहीं सकता है, क्योंकि जिस विधानने, जिस उपाधिसे जिसमे जो कुछ होता है उसमें दूसरा क्या करे ? अपने आपके हितका विचार करना, चिंतन करना, बहुत बडी भलेकी बात है। इस मोहने ही तो हम और आपको अत्यन्त व्याकुल कर रखा है। यह मोह भाव उद्धत है, उद्दण्ड है जो इस प्रभुपर सवार है,हे भगवान् आत्मन् ! कहाँ तो तेरा सहज ज्ञानस्वरूप, कितना तेरा निजी महत्त्व, कैसा तेरा ज्ञायकभाव, जो जानता ही रहे, सारे विश्वको जानता रहे ? कहाँ तेरा ऐसा ऊँचा वैभव और कैसी आज यह दशा कि कोई प्रभु पेड बना है तो कोई प्रभु कीडा मकोडा, कोई रीछ,कोई बन्दर, कोई देव, कोई मानव कोई दानव बन रहा है तो कोई रांधा जा रहा है तो कोई काटा जा रहा है, कोई खाया जा रहा है, कोई खा रहा है। देख,-देख हे चेतन प्रभो तेरी कैसी विचित्र स्थिति हो रही है। यहाँ शुद्ध पर्यायवाले पूज्य परमात्मा प्रभुकी बात नही कह रहे हैं किन्तु यहाँ तो चैतन्य स्वरूपी हम और आप जीवोकी बात कही जा रही है कि कैसी स्थिति बनी है। इस स्थितिका कारण मूलमे वही मोह भाव ही तो है, अज्ञान भाव ही तो याने कोरा भ्रम ही तो है।

कषायानुसार विकल्प—कल्पना कीजिए कि सनीमा बोलता हुआ न हो जैसे कि बहुत पहिले होता था। तो उसमें जो पुरुष आते थे वे मुह फैलाते थे तो ऐसा लगता था कि यह पुरुष अपने आपमे अपनी चेष्टा कर रहा है। याने एकाकी क्रिया हो रही है, किसी से कोई कुछ नही कहता सुनता, सब अपने आपमे अपनी बात बना रहे हैं ऐसा दिखता था इसी तरह हमारा और आपका जो व्यवहार है, उसके बीच कोई किसीका कुछ नही कर रहा, कुछ नही बोलता, सब अपने आपमे अपनी कषायके अनुसार अपने-अपने विकल्प किए जा रहे है, परमे कुछ नही किया जा रहा है किसी अन्य परके द्वारा।

स्वयके विकल्प ही स्वयके फसाव—एक ऐसी घटना सुननेमे आई कि कोई एक देहाती भाई था उसका लडका कालेजमें बी० ए० मे पढता था, होस्टलमे रहता था तो पिताके मनमे आया कि एक बार अपने लडकेसे मिल आएँ, कुछ कलेवा वगैरह दे आवें, कुछ सामग्रियाँ दे आवें। चला तो इसका वेष भूषा कैसा था कि फटे जूते थे। घुटने तक धोती थी। और मिर्जाई पहने हुए साफा बाँधे हुए हाथमे लट्ठ लिए हुए पहुचा। जब कालेज पहुचा तो कुछ लडकोंसे कहा कि अमुक बालकको बुला दीजिए। तो वह लडका आया, उसके साथ ५-७ मित्र और थे उनकी पोशाक सूट बूट की थी। जैसे कि आज के लोग पहिनते हैं। पिताने उस लडकेको जब सबचीजे

दे दी तो उनमे से कोई पूछता है कि मित्र यह तुम्हारा कौन है ? तो वह शान में आकर कहता है कि यह हमारा कारिन्दा है कारिन्दा कहते है नौकर या मुनीम को इतनी बात सुनते ही पिताका दिल बिल्कुल ही बदल गया, उसी समय से उसने उस पुत्रकी खबर नहीं ली, उसे नहीं देखा। हुआ क्या, कि सब अपने आपके विकल्पों मे थे। कुछ पुत्रने नहीं कर दिया। वह पिता स्वय मोह करके वैसे परिणाम कर रहा था। अब उस बातको सुनकर विकल्प बना लिया है कि यह मेरा कुछ नहीं है, वह मुझे नौकर बनाता है सो ऐसा विचार कर उसने फिर कभी उस पुत्रकी खबर नही ली। देखो कषाय के आवेशमें लडकेने भी यह खबर न की कि अगर पिताको नौकर कह देंगें तो क्या होगा। उस लडकेमे भी कषाय थी कि कहीं मेरी शान न नष्ट न हो जाय। वह समझता था कि मित्र जन यही कहेंगे कि यह तो ऐसा जेन्टिल-मेन है और इनका बाप ऐसा देहाती है।

इच्छावों के अभाव का नाम सुख —भैया ! प्राणी मात्र अपने अपने विकल्पोकी स्थितिमे है। अपनी इच्छावोंकी पूर्तिमे है। इच्छाकी पूर्ति कहो या इच्छावोका अभाव कहो बात एक है मगर लोगोकी दृष्टि पूर्तिपर जाती है, अभावपर नही जाती हैं। जितना सुख होता है गृहस्थीमे या किसी प्रकार वह इच्छावोके अभावसे होता है जितने अशमे इच्छा कम है उतने अशमे सुखका विकाश है। हर बातमे, दुकान मे, भोजन बनाने आदि मे, जब जबभी जो जो सुख होते है वे सुख इच्छावोंके अभावसे होते हैं। इच्छाने तो क्षोभ ही होता है।

विकल्प का अभाव सो ही सुख— सोचो कि तुमको ५०० रु० का फायदा हो जाय, ५०० रु० आ गए तो ५०० आ जानेसे सुख नही हुआ। सुख इसलिए हुआ कि अब यह विकल्प नही रहा कि मुझे ५०० रु० मिल जायें। अब इच्छारूप परिणति नही रही। सो उस इच्छारूप परिणतिके न रहनेका नाम वह सुख है। उन रुपयो के सामने होनेका नाम सुख नही हैं। आप सुबह उठते है और सोचते हैं कि अब अमुक काम करना है सो इस विचार या इच्छाके कारण विह्वलता है पर वह काम करलें तो काममे विह्वलता मिट गयी क्या ? ऐसा करनेसे विह्वलता नही मिटती। किन्तु अन्दरमे तत्सम्बन्धी इच्छा नही रहती, आशा मिटी तो उससे विह्वलता मिटी। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि इच्छा न रहे इसी मे ही सुख, सही मगर इच्छाका अभाव काम करनेमे ही तो हुआ, सो यह बात नही हैं किसी के विकल्पमे उस बात के हो जाने से इच्छाकी कमी होती है, किन्तु किसी पुरुषके उस 'काम से बाहर रहनेमे, दूर रहनेमे इच्छाका अभाव रहता है सो इच्छाके अभावका नाम सुख हैं। इच्छाके अभावका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है, नहो तो बताओ इच्छाकी पूर्तिका क्या अर्थ है ? किसे कहा गया है कि यह है इच्छा की पूर्ति।

इच्छाकी पूर्तिका नाम इच्छाका अभाव नहीं—इच्छाकी भर पूर पूर्ति हो जानेका नाम इच्छा की पूर्ति है क्या ? अगर भरपूर इच्छा है तो उसकी पूर्ति क्या ? जैसे गेहूँ बोरेमें खूब भर दिया तो उसके भरनेका नाम पूर्ति है, ऐसे ही इच्छा भर गयी, तो उल्टा काम हो गया। इच्छाकी पूर्ति कहलाती क्या है। देखो भैया ? अपनी दिनचर्या मे जितने सुख होते हैं वे इच्छाओंके न रहने से है। पर बाह्यमे दृष्टि लगी हैं इस कारण भीतरमे यथार्थ बातकी खबर नही रहती और यह ख्याल होता है कि मुझको सुख इस साधनसे मिला, परिवारसे मिला यह ध्यान जम जाता है पर बाह्य से होता है कुछ नही। इच्छा घट गयी उसका आनन्द है। भोजन करते हो और पेट भर जानेके बाद एक सुख होता है, वह सुख भोजनकी इच्छाका अभावका सुख है, भोजन मे पेट भरनेका वह सुख नही है यदि आप यह कहे कि पेट भर गया तो उसके निमित्तसे ही इच्छा मिटी पर ऐसा नही है। देखो भैया, उच्च ज्ञानी योगी सत ऐसे आपने देखे होगे कि कई २ दिन उनके अतरायमे बीत जाते है। भोजन नही करते पर इच्छायें मिटा लेते हैं और भोजन करनेसे भी अधिक भोजनके अभावमे वे सुखी रहते हैं। यह समस्यारूप प्रश्न इच्छाके मिटानेका है। चाहे इच्छित वस्तु सामने आनेसे इच्छा मिटी हो चाहे उस वस्तु के अभाव होने से इच्छा मिटी हो, पर सब घटनाओंमे इच्छाओंके अभावमे ही सुख होता है। कल्पना कीजिए कि तुमको मदिर जाना है, यह इच्छा उत्पन्न हुई, अत जब तक तुम मदिर नही चले जाते तब तक आकुलता है किन्तु मदिरमे पहुँचनेपर एक शान्ति मिल गई। किस बातकी शान्ति मिल गई कि उस समय हमे मदिर जाना है, यह पुरानी इच्छा नही रही बस इसकी शान्ति है इसी तरह जितने भी काम है उन सब कामोके होनेका सुख नही है, उस इच्छाका जो अभाव है उसका ही सुख है।

इच्छावोंके विकल्पका दृष्टान्त—एक दृष्टान्त लो कि आपके पास एक पत्र आया कि डेढ बजेकी गाडीसे बाम्बेमेलसे आपका फलां मित्र गुजर रहा हैं, जा रहा है, आप मिले। आपका वह मित्र है मिलते ही आप मित्रसे मिलनेकी इच्छाकी प्रेरणामे प्रेरित हो कर सब काम जल्दी कर रहे हैं, एक एक दो दो घण्टे की जल्दी मचा रहे हैं। यह काम करलें, वह काम करलें, कभी वहाँ जाना है, इस प्रकार आप पर आकुलताका भूत सवार हो गया है। वह स्टेशन पर पहुँचता है, बाबू से पूछता है कि गाडी लेट तो नही हैं ? बाबू बोले कि अभी १५ मिनट लेट है। लेटका नाम सुनकर वह दु खी हो जाता है। जब गाडी स्टेशनपर आ गई तो उत्सुकतासे डिब्बे जाकर देखता है क्योंकि उसकी इच्छा प्रबल हो रही हैं। और जब डिब्बे के अन्दर उस मित्र से मिले तो वह सुखका अनुभव करता। अब निर्णय कीजिए कि क्या उसे अपने मित्रसे मिलनेका सुख है ? वह सुख है मित्रसे मिलनेकी इच्छाके अभावका

उस इच्छाके अभावसे ही सुख हुआ। अभी मित्रके पास ५ मिनट भी मिले नहीं हुए कि खिडकियोंसे झट झांकने लगता है कि गाडसे अभी इसे कहीं तो नहीं दिखाई? उसके गाडीमे हटनेकी आकुलता उत्पन्न होती है। भैया! आप निर्णय कीजिए कि यदि उसे मित्रके मिलनेसे सुख होता तो गाडीपर बैठा ही क्यो न रहता, क्योंकि सुख ही तो मिलता है, सुख लेता रहे, वहीं बैठा रहे, पर भैया बैठना नहीं, मित्रसे मिलना नहीं इसीसे यह सिद्ध है कि मिलनेसे सुख नहीं है किन्तु मिलनेकी इच्छा नहीं रही उसका सुख वह अनुभव करता है।

विकल्प क्लेशों की जननी—क्लेश दूसरोंसे उत्पन्न किए हुए नहीं होते किन्तु उनकी जननी उनकी स्वयकी इच्छाएँ हैं। कल्पनाएँ स्वय बनाकर दुःखी हो रहे हैं। अभी घर जाना है, दुकान पहुँचना है, अमुक अमुक काम करना है, यह विकल्पोंका भार है, अत निष्कर्ष यह है कि इच्छाके अभावका ही नाम सुख है अर्थात् कोई काम करना न रहनेसे जो इच्छाका अभाव है वही आनन्द है। अभी कुछ काम करने को पडा है, इस भावसे क्लेश है कर्तृत्वके आशयसे क्लेश होता है।

कृतकृत्यताका भावार्थ इच्छाका अभाव—कृतकृत्यता किसे कहते हैं? सब काम कर लिया है जिसने वह कृतकृत्य है, उसका जो भाव है उसको कहते है कृतकृत्यता। पूर्णकृतकृत्य तो सिद्ध है इसका भावार्थ यह है कि जिसको अब काम करनेको नही पडा है, वही कृतकृत्य है एक मकान बनवाना था, वहीं आकुलता थी पर जब बन गया तो बडा सुख माना, विश्राम माना। वह सुख कहाँ से आ गया? मकान बना लेनेका सुख है कि उस मकानके बनवानेकी इच्छाके अभावका सुख है? मकान बनवा लेनेसे सुख नही हुआ, किन्तु उसके मकान बनवानेका भाव नहीं रहा, यानें मकान बनवानेकी इच्छाका अभाव हुआ तो उसका सुख है। खूब अन्तरगमे अनुभव करो और खूब विचारो तो यह अपने आप साफ मालूम होता है। कितने ही लोग ऐसे हैं जो मकान बनवाये बिना भी सुखी हैं। उनके मनमे यह भाव है कि मुझे कोई काम करनेको नही पडा है। सम्यग्ज्ञान होनेपर एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नही करता है, यह प्रतीति होती है। ऐसा सम्यग्ज्ञान होनेपर अन्तरगमे यह भाव बनता है कि पर वस्तुके करनेका उसे काम कुछ नहीं पडा है, इस भावसे ज्ञानमे सतत आनन्द रहता है भले ही चरित्रमोहकृत करनेका राग होता है और कर्ता धर्ता है पर स्वाद तो अतरगमे जो है उसको आ रहा है। इसीको कहते हैं कृतकृत्यता। सम्यग्दृष्टि तो आशिक कृतकृत्य है और अरहत सिद्ध भगवान पूर्णतया कृतकृत्य है। कुछ काम करने को नही है ऐसे भावका नाम कृतकृत्यता है।

कृतकृत्यताके अभ्युदयका उपाय—कृतकृत्यता शुद्धनयकी दृष्टिके प्रतापसे प्रकट होती है, और शुद्धनयकी दृष्टि यही है, एकको देखना, एककी बात तकना, इसमे भैया ! यह भी बात है कि परका विरोध न करके एकको देखना। क्या पर नही है ? है, मगर इस प्रकार आत्महितको देखनेके लिए लगे हैं तो व्यवहार दृष्टि न करना, निश्चयका आलम्बन करना। किन्तु सर्वथा क्या व्यवहार नही है ? क्या शरीरमे यह आत्मा रुका नही है ? व्यवहारमे देखो, रुका है पर ऐसी स्थितिमे भी हमारी पारदर्शिनी दृष्टि हो सकती है सबकोपार करके। अत स्वरूपको देखो, वह तो वह ही है, वहाँ कोई दूसरा नही है, ऐसी इस दृष्टिमे यह आत्मा न बँधा है, न छुवा है, न नाना है न मिला हुआ है, किन्तु नित्य एकस्वरूप है, ऐसा देखना यह एक पारदर्शिनी दृष्टि है। इस शुद्ध दृष्टिमे मोहका विनाश होता है। सो ऐसा यह शुद्धनय स्वरूप आत्मा इस दृष्टिमे ही प्राप्त होता है।

शुद्धनयका दृष्टिबल—शुद्धनयकी दृष्टिमे परपरिणतिका पराश्रय न होनेसे उच्छेद होता है अर्थात जो परके प्रति झुकाव रखकर विकल्पजाल बन जाते हैं उनका उच्छेद होता है। सो परपरिणतिका उच्छेद होनेमे कर्ता, कर्म आदि भेदोंकी भ्रांतिका विध्वस होता है सबसे पहिले तो परस्परमे एक दूसरे पदार्थके साथ जो कर्ताकर्मकी बुद्धि बनी है उसका ध्वस करना है। उस लडकेको यों बनाता हूँ, इस दुकानको यों चलाता हूँ। मैं किसी परवस्तुकी यों परिणति करता हूँ पहिले तो इन भावोंका ध्वस करना है तो अपने आपमे यह खोज होने लगेगी कि लो स्वय ही तो मैं करता हूँ और मेरे ही द्वारा करता हूँ मेरी परिणति द्वारा मैं ही प्राप्य हूँ, सो मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही कर्म हूँ और मै ही करण हूँ व मैं ही कर्मफल हूँ।

कर्ता, कर्म खोजनेकी क्रिया कौन ?—वह क्रिया कौन सी है जिस क्रियाके लिए अपने आपमे कर्ता कर्म आदि खोजे जाते है। वह क्रिया है जानन क्रिया, अर्थात् मैं जानन हूँ, मैं जानता हूँ, किसको जानता हू ? ज्ञान एक गुण है और उसकी क्रिया जानन क्रिया है। जानन क्रियाका जो भी प्रयोग होता वह ज्ञान गुणमे होगा, अन्यत्र नही होगा। तो जानन क्रियाका प्रयोग ज्ञान गुणपर ही हुआ। ज्ञान हमारा आत्मप्रदेशमे हैं तब जानन क्रियाका असर आत्मप्रदेशमे हुआ, अर्थात् जाना तो अपने आपको जाना, मैं जानता हूँ। किसको जानता हूँ ? इस जानते हुए को जानता हू। जैसे सामने ऐना है और पीछे दो चार लडके खडे हैं, कोई बालक हाथ मटकाता है, कोई पैर मटकाता, कोई अन्य-अन्य क्रियाएँ करता मगर हम केवल ऐनाको ही देख रहे हैं। हम ऐनाको ही देख रहे हैं और बताते है कि इस लडकेने हाथ हिलाया, इस लडकेने पैर हिलाया, हम उनको नही देख रहे हैं, हम तो केवल ऐनाको ही

देख रहे हैं। उन ऐनेको देखते हुए हम उन लटकोंका ज्ञान करते जाते हैं। इस तरह हम केवल जानते हुए इस आत्माको जानते हैं, हम पर पदार्थोंको नहीं जानते। मैं जानता हू इस अर्थविकल्परूप परिणमते हुए अपने आत्माको ही। आत्माको जानते हुए ही इन पर पदार्थोंका भी ज्ञान हम कर लेते हैं।

स्वय मे षट्कारकता—मैं केवल अपने आपको ही जानता हूँ, जानते हुएको जानता हूँ, वहाँ कोई पर पदार्थ किसी जानन क्रियामें कुछ सहयोग देता हो, परिणतियोंको लगाता हो ऐसी बात नहीं है। जानते हुएके द्वारा ही जानता हू किस प्रयोजन के लिए जानता हूँ ? वहाँ कुछ अन्य प्रयोजन है ही नही, बस जानन प्रयोजनके लिए जानता हू जैसे पूछा जाय कि ये बाहरमे पुद्गल द्रव्य हैं कि नही ? तो ये पुद्गल द्रव्य अपनी सत्ता रखते हैं। इन्होंने किस प्रयोजनके लिए अपनी सत्ता रखी है। ये अनन्तानन्त पुद्गल हैं, इन पुद्गलोंने अपनी सत्ता रखी है तो किस प्रयोजनके लिए रखी है ? इसकी सत्ता किस प्रयोजनके लिए है ? इनका क्या उत्तर होगा ? "है" रहनेके लिए इनकी सत्ता है उनका क्या प्रयोजन और हो सकता है। क्या इन पुद्गल द्रव्योंका बाहरमे कुछ प्रयोजन लगा है ? इस मिट्टीने क्या अपना प्रयोजन कर रखा है कि मैं ईंट पत्थर महल बन जाऊँगी। क्या ऐसा प्रयोजन इस मिट्टीने बना रखा है ? यह परिणमन है, परिणमते हैं, किस लिए परिणमते हैं ? "है" बने रहने के लिए परिणमते रहते हैं। इससे आगे पुद्गलका क्या प्रयोजन ? यहाँ लौकिक और व्यावहारिक बातोंकी बात अलग है यहाँ तो वस्तुस्वरूपकी यह बात देखी जा रही है। यह आत्मा है और जानता है। यह किस प्रयोजनके लिए जानता है ? वास्तविक प्रयोजन तो बतलावो। किस प्रयोजनके लिए जानता रहता है ? भगवान सारे विश्वको जानते हैं। परमात्मा समस्त विश्वका ज्ञाता है, वह सब ससारको जानता है। किस लिए जानता है वह भगवान ? उनके जाननेका प्रयोजन क्या है ? उन्हे कहीं कुछ व्यवस्था बनाना नही, कोई विकल्प करना नही, कृतकृत्य हैं फिर भगवान किसलिए जानते हैं ? वे जाननेके लिए ही जानते है। बस जानन ही उनका प्रयोजन है जाननके आगे उनका प्रयोजन नहीं है। यहाँ प्रयोजनका अर्थ मतलब नहीं लगाना किन्तु सामान्य अर्थ लेना। उस जाननका फल क्या है ? इस जाननका फल जानते हैं इससे आगे उसका फल नहीं फल कहो या प्रयोजन एक ही बात है। तो यह मैं जानता हूँ। जाननेवालेको जानता हू। जानते हुए मे जानता हूँ, जानतेहुए के द्वारा जानता हू। ऐसा अपने आपमे अभेद कर्तृकर्मभाव है। फिर और आगे मर्ममे चलो तो जानते हुए को जानता हूँ। इसका क्या मतलब है ? वह जानन होना अलग चीज है क्या जिसको मैं जानता हूँ। जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, क्या कर दिया ? किस ढगसे कर दिया ? क्या कोई अलग बात है ? यह तो समझमे नही आया।

यह तो कोरी शब्द रचना सी हो गयी। वहाँ तो केवल जाननमात्र भाव है, जानन परिणमन है, वहाँ कर्ता कर्म भाव, ये सब कुछ नही है और परिणमन है। परके साथ कर्ताकर्म भाव जाननेकी बात अज्ञान दशामे लगायी थी, सो उस ही पद्धतिसे भीतरकी बात बताई जानी पडी।

लौकिक पुरुषोको समझानेकी लौकिक भाषा—लौकिक पुरुषोको समझानेके लिए लौकिक भाषामे उनकी पद्धतिमे बोलना पडता है। यथा-भगवान अनन्त-सुखी हैं, पूर्णसुखी हैं तो भगवान क्या सुखी हैं? सुखी किसे कहा गया? ख के माने इन्द्रिय और सु के माने सुहावना लगे। इन्द्रियोको जो सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। क्या ऐसा सुख भगवानके पास है? नही, वह तो शुद्ध पदार्थ है, उसे इन्द्रियोमे तो सुख नही प्राप्त होता है। भगवानमे सुख नही है, भगवानके तो अनन्त आनन्द कह सकते हैं।

आनन्द और सुखका विश्लेषण—आनन्दका अर्थ है कि सब ओरसे समृद्धि हो। इस समृद्धिके होनेको ही आनन्द कहते हैं। आनन्द तो आत्मा का गुण है, प्रभुमे उसका शुद्ध व पूर्ण विकास है। भगवानमे- आनन्द है, सुख नही है। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि सुख शब्दका तो बहुत जगह प्रयोग है अनन्त चतुष्ट यमे बताया है ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति। ठीक है,उस सुख शब्दका भावार्थ सुखमे नही है आनन्दमे है, किन्तु सुख चाहनेवाली दुनिया है, जगत है सो सुख चाहने वालोंको समझानेके लिए सुख शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अभिन्न षट्कारककी व्यवस्था बतानेका प्रयोजन यही है कि भिन्न षट्कारकमे लगे हुए प्राणियोको समझाना है। अज्ञानी कहता है कि देखो ना, इस गाली देनेवालेने गुस्सा कर दिया। तो जो भिन्न वस्तुमे कर्तृकर्मभाव लाए उसको समझानेको कहा जाता है कि गुस्साके वचन तो भाई निमित्तमात्र हैं, इसने अपने आपही गुस्सा बना लिया है। उस गाली देनेवालेने इसका गुस्सा नही बनाया है। इस तरह अभिन्न षट्कारक बताना पडा। अन्तमे तो यह अभिन्न षट्कारक भी नही ठहरता है। हूँ और जानता हूँ। जानना भी क्या है? कुछ उद्यम करना है या पुरुषार्थ करना है? या परिश्रम करना है? वह तो होरहा है मैं जानता नही हूँ, जानना तो परिणाम है, सो हो रहा है। जानते हुएको जानता हूँ, जानते हुएके द्वारा जानता हूँ, जानते हुएके लिए जानता हूँ। यह भी क्या? यह एक जाननमात्र परिणमन है, यह जाननमात्र भाव है। इस तरह अन्तमे ऐसा भी उपयोग हो जाता है कि कर्तृकर्म-भावका ध्वस हो जाता है और फिर बडी ही जल्दी शुद्ध आत्मतत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

जीवकी विचित्र परिस्थितिका चित्रण—देखो भैया, बडी विचित्र परिस्थिति

है इस जीवकी। कभी तो इस जीवकी स्थिति ठीक ढगपर आती है और फिर कभी विगड जाती है, और सम्हालते सम्हालते फिर ठीक हो जाती है। ऐसी विकट स्थितियाँ इस जीवकी है। तो इसका उपाय बहुत अधिक करना है। शुद्ध ज्ञान स्वरूपके अभ्यासकी बहुत अधिक जरूरत है जिससे कि ऊटपटागके झझट उत्पन्न हो जानेकी वात टूट न पडे।

अज्ञानीका अभ्यास—यह अज्ञानी समझते समझते भी चूक जाता है। एक सेठके घरानेमे तीन लडके थे। सब एकसे थे। शादी योग्य थे। तो सगाईके प्रसगमे उनको देखनेके लिए नाई आया तो खूब तीनों बच्चोको सेठने सजा दिया, इत्र लगा दिया, साफ सुथरे वना दिया, शृ गार कर दिया, गहनोसे सजा दिया। वे तोतले थे, सो समझा दिया कि देखो मुखसे शव्द न निकलें। सब बच्चोने कहा अच्छी बात। जब नाई देखनेके लिए आया तो बडी प्रशसा उन लडकोकी करने लगा। वाह लडके तो बडे ही सुन्दर हैं, गुणवान हैं, ऐसे लडके तो मैंने कभी नही देखे। तो उनमे से अपनी प्रशसा सुनकर एक वोला, अवी डडन अटन तो लगा ही नहीं है, तो दूसरा बोला अवे डड्डाने का कई ती, तो तीसरा भी वोला, टुप। सब बच्चोंने उस नाईके सामने अपनी करतूत रख ही दी। देखो भैया! उन्हे समझा बुझाकर तो बहुत रखा था, मगर समय आया सो करतूत खुल गयी।

हमारा तोतला अभ्यास—इतनी ही अडचन हम आप तोतलोंको है, खूब अभ्यास करते हैं, पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, जाप करते हैं, अध्ययन करते हैं, व्रत आदिक भी करते हैं, इतना सब कुछ करते हैं और कभी-कभी दृष्टि बराबर ठीक लगती भी है, इतना सब कुछ होते हुए भी विभाव परिणतिमे उतर आना, राग, द्वेष, मोह, मान, माया, लोभ आदि इन सब विपत्तियोंको प्राप्त करना बडे खेदकी बात हैं। तो इनसे बचनेका उपाय सिवाय ज्ञानभावनाके और कुछ नही है। मैं ज्ञान मात्र हूँ और जितना जानना होता है उतना ही मेरा करनेका काम है। इससे आगे मेरा करनेका काम नही है। यह जाननमात्र आत्मा जाननके प्रदेशोमे आनन्दका अनुभव करता है। इतना ही मात्र मैं हूँ, यही वस्तु मेरी है, इससे बाहर कोई वस्तु मेरी नही है। इस प्रकार अपनेको ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी भावनासे पोसा जाय तो वे सब आपत्तियाँ निकल सकती हैं, नही तो जैसी शरीरकी स्थिति हैं वैसी ही आत्माकी स्थिति हो रही है हित व सार कही न निकला।

शारीरिक स्थिति—कैसी है, शरीरकी स्थिति? खूब नहा लो, साबुन लगा लो, सब कुछ पहिन लो, मगर थूक निकल आए, नाक निकल आए, वायु निकल आए लो जैसे पहिले थे वही चीज हो गयी। अब वह नहा नहाया, शृ गार किया हुआ सब

कैसा रहा ? वह मलिनता तो सामने आ गयी, बाहर आ गयी, व्यक्त हो गयी। इस तनको सम्हालने सम्हालने भी यह देह अपनी प्रवृत्तिको नहीं छोड़ता। इसी तरह मोह या ज्ञान भावना के अभ्यस्त जन और थोड़े थोड़े धर्मके अभ्यासकी बातें सीखे हुए जन जैसे बार-बार अपनी दिनचर्या करते हैं, बोलते हैं, चाहते हैं, भावना भाते हैं, तिस पर भी विषयकषाय राग द्वेष ये मल व्यक्त हो ही तो जाते हैं। तो उस ज्ञानजलसे नहलवा धुवा देनेपर भी यदि भीतरमे राग द्वेष इत्यादिके मल व्यक्त हो जाते हैं। सो देखो भैया, धोया धुलाया सब बेकार हो जाता है।

ज्ञानभावके व्यापारकी प्रेरणा—अपने आपके भलेके लिए ज्ञानभवना मे हमे कितना उद्योग करना चाहिए, कितना समय देना चाहिए ? सो भैया, बाह्य लगावों का मुकाबला विचारकर गृहस्थीमे, बाहरी बातोमे जहाँ जहाँ मन लगा, उनके मुकाबले हमको ज्ञानभावके पुरुषार्थमे कितना लगना चाहिए ? तो पूरा उत्तर तो यह है कि केवल इसमे लगना चाहिए और अन्य अन्य बातोमे नही लगना चाहिए, पर यह बात गृहस्थीमे सम्भव नही है। तो यहाँ यह अपने आपमे विचार कर यह निश्चय कर लो कि अपने हितके कामोमे कितना अधिक लगना चाहिए। हाँ, जीवोकी जीविकामे जितना समय रखो वह जीविकामे लगावो और बाकी समय उद्धारमे लगावो, परोपकारमे लगावो। गप्पो सप्पोमे, बखेडोमे जो व्यर्थका समय बीत जाता है उसमे अपनी जीविकाको सम्हालो और नही तो अपने उद्धारका पुरुषार्थ करो, परोपकार करो इतना तो होना ही चाहिए भैया ! अपनेको विवेकमे लगावो। परोपकारसे भी मद कषाय होती है। वह भी एक तप है, वह भी उद्धारमे सम्मिलित है। इसलिए जीवोंके उद्धार का, परोपकारका अपना प्रोग्राम रहे, समय बर्बाद करनेसे समयको गप्प सप्पमे बितानेमे अपनी दुर्गति ही है यदि परोकार करो, जीवोद्धार करो तो यह बहुत बडी बात होगी। हम अपनेमें दयाका भाव लावें, विचार करे।

भावनाओंकी प्रेरणा—ऐसी भावना बने कि मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसी अनुभूति बने, ऐसी दृष्टि बने, ऐसा ध्यान बने इसमे ही जितना समय गुजरे उतना ही तुम्हारे भलेकी ही बात है, इसके अतिरिक्त जो परकी बातें हैं ये सब यो ही चली जायेंगी। इनमे हित नही होगा। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जाननमात्र हूँ, जानताभर हूँ ? इतना ही मेरा काम है। इससे आगे मेरे लेन देनका काम नही है। ऐसे इस अद्वैत स्वरूपको देखकर हम अपना हित कर सकते हैं।

गाथाका सार—सो आचार्य महाराज यहाँ यह कह रहे हैं कि इस प्रकार परपरिणतिका उच्छेद होनेसे कर्त्ता कर्म आदि भावोंका विनाश हो जाता है। और उसमे अपने शुद्ध आत्मतत्वकी प्रगति होती है। फिर जो शुद्ध चैतन्यमात्र निज तेज है

सहज है, उसमे ही ठहरना है। उसी अपनी सहज महिमाको प्रकट करलो तो सब झंझटोसे मुक्ति हो सकती है। जैसे वायुका निमित्त पाकर पताका अपनेमे ही उलझ जाती है और अपने आपही सुलझ जाती है, इसी प्रकार यह जीव विकाररूप ज्ञान होनेसे तो उलझ जाता है, बाहरमे ही फस जाता है वही फिर सम्यक् ज्ञान होनेसे सुलझ जाता है। ये आत्मा जब शुद्धनयकी दृष्टि करते है तो उसके प्रतापसे पर परिणतिसे मुक्त हो कर कर्ताकर्मभावभ्रमसे दूर होकर अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति करते है और उसमे ही ठहरते हैं। इससे वे सर्व सकटोसे मुक्त हो जाते है।

द्रव्यविशेष—यहां तक द्रव्य सामान्यका वर्णन किया है अब द्रव्यविशेषका वर्णन प्रारम्भ हो रहा है, इसमे जीवोका पुद्गलोका और उनके निमित्त नैमित्तिक भावोका, आदि आदि विषयोका वर्णन चलेगा। इस बीचकी सधिको आचार्य महाराज जिन शब्दोमे कह रहे हैं वह बहुत ही मर्मप्रदर्शक पद्धति है। वे कहते है कि

द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्न कृत्वेति मानसम्। तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भार क्रियतेऽधुना ॥

द्रव्य सामान्यके विज्ञानको मनमे नीचे रखकर अर्थात् जो भी ज्ञान आगे करें उस समय भी यह द्रव्यसामान्यका ज्ञान जडमे बनाये रहें ऐसा अभिप्राय बनाकर इस समय द्रव्यविशेषके परिचयका प्राग्भार किया जाता है। भैया! आचार्यश्रीके ज्ञान भण्डारकी महिमाको किताबमे शब्दोमे कैसे व्यक्त की जावे। एक एक शब्दमे अतुल ज्ञानका रहस्य है। याने ऐसा चित्त बनाओ कि चित्तके ऊपर विशेषस्वरूपकी बात लगायी जा रही हो किन्तु उस चित्तके नीचे द्रव्यसामान्यका ज्ञान बना रहना चाहिए। प्राग्भार करना, प्राक्माने पहले, भार माने बोझ। प्राग्भारका अर्थ सजावट लगालिया जाय या ऊपरका बोझ। विशेषज्ञानके समय, द्रव्यसामान्यका ज्ञान जिस विज्ञचित्तके भीतर पडा हुआ है उस चित्तके ऊपर द्रव्यविशेषके ज्ञानका प्राग्भार किया जा रहा है। अन्य शब्दोमे बोलिये उस ज्ञानका शृगार किया जारहा है। इसमे भाव यह है कि देखो भाई! द्रव्यविशेषके चमत्कारको। समझनेके समय द्रव्यसामान्यकी जो नीति है उसे भूलना नही चाहिए। द्रव्यसामान्यकी नीति उसके ६ सामान्य गुण हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व और प्रमेयत्व स्वरूपको अभिप्रायान्तर्गत करना चाहिए उसे भूलना नही चाहिए। जैसे कोई व्यापारी बाहर व्यापार करने जाता है और बडा व्यापार करता है पर गाँठ मे मूलधन छिपाये रहता है, परस्पर व्यापारिक वार्ताको करते हुए भी मूलधन को लुकाये रहता है।

द्रव्यसामान्यज्ञान ही मूलधनके समान उपकारी—द्रव्य सामान्यके परिज्ञानका मूलधन इस इस तरह काम देगा जैसे व्यापारी वर्ग व्यापार करते हैं। चतुर व्यापारी चादरके भीतर कोट, कोटके भीतर वास्कट, उसके भीतर जेब और उसके भीतर गाँठ

की कीमती चीज रखता है। उस कीमती चीजको वह जेबके भीतर कर लेता है जिसे लोग कहते हैं कि धनकी गर्मी है, उसने फिर वह एक खुला हुआ भाव बनाकर लोगोंसे जैसी बात करता है। इसी तरह द्रव्यसामान्यके ज्ञानका अपनी गाँठमें लगाकर, छिपाकर बनाकर या नीचे करके विशेष ज्ञान करिये ताकि आपको उस ज्ञानसे वस्तुकी स्वतन्त्रता और वस्तुकी स्वरूपसीमा आदि भानमें रहे ऐसी विधिसे आप विशेषका वर्णन करते जाइये। ऐसी भावना आचार्योंकी बनी रहे, यह इस श्लोकमें प्रेरणादी गयी है, ताकि वेसदर्शनपक्षसे विचलित न हो सके।

गाथाका सार द्रव्योंकी स्वतन्त्रता—भाव यह है कि किसी भी द्रव्यमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश कालमें, सब द्रव्योंमें विशेष विशेष गुणोंके साथ सामान्य गुण रहता ही है। साधारण ६ गुणों का सबमें रहना साधारण रहना है, सामान्यतया रहना है। अत विशेष गुणोंके वर्णनके समय भी सामान्य गुणों को न भूलिये। गुप्त ज्ञान गुणकी गुप्तरूपसे रक्षा करता है।

जीव द्रव्यका सामान्य ज्ञान—जीव है तो सामान्य गुण भी हैं, वे अपने स्वरूपमें हैं परके स्वरूपमें नहीं हैं, इसी कारण सब द्रव्य निरंतर परिणमते रहते हैं। द्रव्य अपनेमें ही परिणमता है, दूसरेमें नहीं परिणमता और वह अपने प्रदेशरूप में है तथा किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। ये ६ बातें जीवमें भी है।

पुद्गल द्रव्यका सामान्य ज्ञान—यह स्कंध पुद्गल द्रव्य नहीं है, यह पुद्गल द्रव्यकी व्यञ्जनपर्याय है। पुद्गल द्रव्यमें आशय अणुमें है, स्कंध पुद्गल द्रव्य नहीं है। पुद्गल द्रव्य, पदार्थ स्वयं कुछ नहीं दिखते। द्रव्यका ज्ञान करनेके लिए शुद्ध पर्यायके रूपमें अपनी कल्पनाएँ बनायी जायें तो द्रव्यके स्वरूपका अनुमान होता है। इस कारण पुद्गल द्रव्यको समझानेके लिए अणुपर दृष्टि लगावो। अणु भी कारणरूप और कार्यरूप अथवा द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। परमाणुको द्रव्यमुखेन देखनेपर (१) वह परमाणु है। (२) अपने वस्तुस्वरूपमें है, (३) निरन्तर अपनी परिणमन शक्तिसे परिणमता रहता है, (४) अपनेमें ही परिणमता है परमें नहीं परिणमता है, (५) वह अपने प्रदेशोंको ही लिए हुए है, (६) किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है। इस प्रकार पुद्गल द्रव्योंमें भी उसके सामान्यगुण घटित हैं।

धर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—धर्मद्रव्य लो, धर्मद्रव्य लोकाकाशमें सर्वत्र व्यापक है। यहाँ वहाँ इस कमरेमें भी सर्वत्र निरन्तर व्यापक है। वह धर्म द्रव्य एक है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और जीव पुद्गल गमन करें तो उनका गमन करनेमें निमित्तभूत हैं। जैसे मछलीके चलनेमें जल सहायक है, याने मछली गमन करे तो जल

गमनमे निमित्तभूत है, इसी प्रकार धर्म द्रव्य है, यह पुद्गल जीवके क्षेत्रान्तर गतिरूप क्रियामे निमित्त है। (१) धर्मद्रव्य समस्त लोकाकाशमे व्यापक एक पदार्थ है, वह है। (२) अपने स्वरूपमे है, परके स्वरूपमे नहीं है, (३) निरन्तर स्वपरिणमन-शक्तिसे परिणमता रहता है। (४) अपने आपमे परिणमता है, परमे परिणमता नही है। (५) इनका भी निजी प्रदेश है, आकार है। आकारके माने वह स्वय अपने आपको प्रदेशोमे ओतोपाई किए हुए है, वह अपने निजी क्षेत्र प्रदेशमे है। (६) वह किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है अर्थात् प्रमेय है।

अधर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—इसी प्रकार अधर्मद्रव्य है वह भी समस्त लोकाकाशमे व्याप्त है। अमूर्त है उसमे रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि नहीं है और चलते हुए जीव पुद्गल ठहरते हैं तो उनके ठहरनेमे निमित्तभूत है। जैसे पथिक धूपमे चल रहा है, गर्मी लग रही है, उसका किसी विश्रामवाली जगहमे ठहरनेका भाव है, रास्तेमे मार्गके निकट एक छायावान वृक्षको देखता है और उसे पाकर ठहर जाता है, जैसे ठहरने वाले मुसाफिरको पेडकी छाया निमित्तभूत है इसी प्रकार ठहरनेवाले जीव और पुद्गलको ठहरनेमे अधर्म द्रव्य निमित्तभूत है व सर्वत्र व्यापक है। (१) वह अधर्म द्रव्य है। (२) अपने ही स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। (३) निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमे परिणमता है, परमे नही। अपने गुणोसे परिणमता है, परके गुणोमे नहीं, (५) इसके भी प्रदेश हैं, जितना लोकाकाशका प्रमाण है उतना ही धर्म द्रव्यके विस्तारका प्रमाण है। (६) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

आकाश द्रव्यका सामान्य रूप—इसी प्रकार आकाश द्रव्य एक ऐसा पदार्थ है जो समस्त द्रव्योको अवगाहन किए हुए है, हम जहाँ बैठे हुए हैं, ठहरे हुए हैं, स्थान पाये हुए है, सर्वत्र आकाश है। आकाश भी दृश्य चीज नही है, अमूर्त है मगर कुछ-कुछ ऐसा स्पष्ट लगता है कि प्राय पूछनेपर कि आकाश कहाँ है ? तो सभी बतला देते हैं झट कि आकाश यह है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यके बारेमे पूछो तो उसके लिए कोई हाथ नही उठा सकता, जैसे आसमानके बारेमे हाथ उठा देते। धर्म द्रव्य, और अधर्म द्रव्य भी वैसा ही है, जैसा आसमान है। आकाश भी दिखनेकी चीज नही है जिसे देख कर कह देतेकि यह आकाश है वह आकाश नही, वह तो पुद्गलका वर्ण है। आकाश तो दिखता नही है मगर ऐसा लगता है कि यह आकाश है। अभी कह भी देते हैं कि देखो इस हालतमे आकाश है, यह कल्पनाओमे बताई बात है, यह आकाश नहीं है, वह तो धर्म अधर्म द्रव्यकी तरह अमूर्त है। वह आकाश भी द्रव्य है। अपने स्वरूपमे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह भी निरन्तर परिणमता रहता है। ये धर्म,

अधर्म, आकाश, काल निरन्तर परिणमते रहते हैं, यह बात भी विशद समझने मे नही आ सकती है, अमूर्त चीज है मगर युक्ति इनका सद्भाव बतलाती है

आकाश द्रव्यमे ६ साधारण गुण—सर्व द्रव्योंमे ६ साधारण गुण होते हैं। सो आकाशमे भी परखो (१) आकाश है (२) वह आकाश अपने स्वरूपमे है, परके स्वरूपमे नही है। (३) वह निरन्तर परिणमनेवाला द्रव्य है। अगर नही परिणमता है तो है क्या ? "है" नही रह सकता है, सत्त्व नही रह सकता है अत निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमे ही परिणमता है दूसरेके नही परिणमता व अपने ही गुणोंसे बदलता है, परिणति करता है, दूसरे पदार्थोंके गुणोंसे परिणति नही करता है। (५) इसका भी प्रदेश है। किस द्रव्यकी चर्चा चल रही है ? आकाश द्रव्यकी। इस आकाश द्रव्यका विस्तार कितना है, कितनेमे फैलता है ? असीम है, अनन्त प्रदेश है। आकाशमे कल्पनाओंसे कोई किसी भी दिशामे दौड लगाए, कितना भी पहुँच जाये पर वहाँसे भी आगे कहाँ कितना आकाश बडा है ? अनन्त बडा है। कल्पनाएँ करो कि अब यहा तक तो आकाश है और बाकीमे क्या आकाश नही हैं। यदि आकाश नही है तो फिर क्या है? मकान बना है, कि पहाड बना है कि क्या बना है? कुछ नही बना है। कुछ नही बना है ? वह तो फिर वही आकाश है और बना है कुछतो आकाशमे ही बना है, आकाश असीम है, धर्म, अधर्म आकाश द्रव्य ये तीनो एक-एक द्रव्य है, अखण्ड है, इनका भेद नही है, इनकी सख्या नहीं है, आकाशके लोकाकाश अलोकाकाशपनकी जो भिन्नता है वह औपचारिक भेद है। आकाश द्रव्य एक है, जितने आकाशमे ६ द्रव्य रहते हैं याने पाँचो द्रव्यभी रहते हैं उतने आकाशका नाम लोकाकाश है, और इससे परे आकाशका नाम अलोकाकाश है, पर आकाशके भेद नही होंगे। जिस किसी जगह कोई स्थान बना दिया, बाउण्डरी खीच दी तो यह हो गया कि यह जगह इनकी है और यह इनकी है इस प्रकार दो भेद हो गए मगर ये आकाशके भेद नही हुए न आकाशके भेद होंगे। यह भेद औपचारिक है। आकाश अनन्तप्रदेशी है और (६) वह प्रमेय है।

काल द्रव्यके सामान्य स्वरूपकी सिद्धि—इसी प्रकार काल, द्रव्य है, काल द्रव्य एकप्रदेशी है, लोकाकाशमे एक-एक प्रदेश है, एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है वे अपने प्रदेशमे रहनेवाले द्रव्यके परिणमनके निमित्तभूत हैं इसलिए असख्यात कालाणु है। (१) वे काल द्रव्य भी हैं (२) अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही हैं। (३) निरन्तर परिणमते रहते हैं। (४) अपने ही गुणप्रदेशसे परिणमते है परके गुण प्रदेशसे नहीं परिणमते हैं। (५) इसका भी प्रदेश है, एक प्रदेश ही सही, इसका आकार है, वही इसका क्षेत्र है। (५) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

अलोकाकाशके परिणमनका निमित्त —यहाँ कोई अगर ऐसा प्रश्न करे कि आकाश द्रव्य तो असीम है, काल द्रव्य तो लोकाकाशमे ही है तो लोकाकाशके बाहरमे जो आकाश है क्या वह अपरिणामी है ? वहाँ काल द्रव्य तो है नही, फिर अलोकाकाश कैसे परिणमता रहता है ? उत्तर इसका यह है कि आकाश द्रव्य एक अखण्ड है। उस आकाश द्रव्यके परिणमनमे निमित्तभूत काल द्रव्य है, काल द्रव्य यही है पर काल द्रव्यका निमित्त करके परिणमनेवाला जो आकाश द्रव्य है वह अपने सर्व प्रदेशोंमे परिणमता है, क्योंकि आकाश भिन्न भिन्न नहीं है, अखण्ड द्रव्य है, निमित्तभूत काल, उसके सान्निध्यमे चाहिए, पूरे विस्तारके समान चाहिए सो नहीं। जिस प्रकारका निमित्त बनता है वही उसका सान्निध्य कहलाता है। जैसे बहुत बड़ा बर्तन है और अग्नि एक किनारे जल रही है तो सारे बर्तनका पानी गर्म हो जानेमे निमित्तभूत है वही सान्निव्य कहलाता है। कितना ही निमित्त ऐसा कहलाता है जो सामने नही है और निमित्तभूत कहलाता है, तो उनके उस ढगका होना ही सान्निध्य कहलाता है। सान्निध्यका मतलब पास आनेसे नही है या चारों तरफ होनेसे नही है। काल द्रव्यका निमित्त पाकर अखण्ड आकाश परिणमता है।

गर्भित सामान्य विशेषका अवधारण—इस प्रकार छहो द्रव्योमे छह साधारण गुण होते ही है। उन साधारण गुणोंके होते हुए द्रव्योमे लक्ष्यरूप असाधारण गुण रह सकते हैं और साधारण गुणके रहते हुए द्रव्योमे साधारण गुण रह सकते हैं। ऐसा इनका अविनाभाव है। इसलिए द्रव्य सामान्यके ज्ञानको अपने मनके नीचे बनाए रखकर विशेष द्रव्योका वर्णन सुनना, जैसे किसी घटनाका वर्णन करते हैं कि देखो इतनी मूल बात चित्तमे जमाये रहना, फिर बात सुनना। क्योंकि, वह जितनी भी बातें करेगा उन सब बातोंमे मूल बात उसके काममे आवेगी, करेन्ट देगी, इसलिए मूल बातपर पहिले बल दिया जाता है कि इसको हृदयगम करके फिर हमारी बात सुनो। इस प्रकार द्रव्यसामान्यकी बातको मनमे हृदयगम करके अब विशेष द्रव्यके परिज्ञानका प्राग्भार करना अर्थात् विवरण करना। इस प्रकार १२६ वी गाथा तक द्रव्यसामान्यका परिज्ञापन हुआ, ज्ञापन हुआ, जताना हुआ कि द्रव्य सामान्य यह है। अब आगे की गाथामे द्रव्य विशेषका वर्णन किया जायगा।

दव्व जीवमजीव जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुह अचेदण हवदि य अज्जीव ॥ १२७ ॥

द्रव्यविशेषका विवेचन —अब तक द्रव्य सामान्यका वर्णन हुआ, अब द्रव्य विशेषका प्रज्ञापन करना है। ज्ञापन माने जताना और प्रज्ञापन माने प्रकृष्ट रूपसे अथवा द्रव्यको विस्तारसे जताना। यहाँ जब द्रव्यको विशेषरूपसे माननेको उपयोग

हुआ तो सबमे पहिले जो भेद निकला वह जीव और अजीवका भेद निकला, अर्थात् द्रव्य दो प्रकारके हैं। (१) जीव और (२) अजीव। जीव और अजीव इस तरहसे दो भेद निकालनेके प्रयोजन हैं अजीवसे हटना और जीवमे लगना। अजीव क्या चीज है? तो जितने दिखनेमे आनेवाले समस्त स्कंध है वे अजीव हैं और जिसमे दिखने की योग्यता ही नही ऐसे सूक्ष्म स्कन्ध अजीव है, परमाणु अजीव हैं, और अमूर्त जो धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्य हैं वे भी अजीव है, यह शरीर भी अजीव है, द्रव्य कर्म भी अजीव है और द्रव्य कर्मोको निमित्तमात्र पाकर अपने आपकी आत्मामे जो राग द्वेषादिक तरंगे होती है वे भी अजीव है। न जीव इति अजीव। यहाँ ६ साधारण गुणो सहित द्रव्यके भेदमे अजीवका प्रकरण है सो यह अवधारण करना कि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच द्रव्य अजीव हैं।

रागद्वेषादिककी अपेक्षित विवक्षा—जीवका अर्थ है एक ज्ञायक स्वभाव। रागद्वेषादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन हैं, फिर भी वे स्वभावज नही हैं, स्वरसत अपने आप अपने ही स्वभावके कारण उठे हुए भाव नही है। इसलिए उन्हे परभाव कहते है। कर्मके उदयमे उत्पन्न जो भाव हैं वे पर हैं, मेरे नही हैं। ये मेरे नही हैं, यह हुआ निश्चयनय और विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे क्या है? निश्चयनयदृष्टिसे जिस पदार्थमे जो स्वभाव है वह उस पदार्थमे निरखा जावे और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयदृष्टिमे, जिसको शुद्ध देखनेकी दृष्टि है उसे तो भले प्रकारसे शुद्ध रहने ही दिया जाय फिर इस स्थितिमे जब यह पूछा जाता है कि रागादिक भाव किसके हे? तो कहा जाता है कि ये परके है, पौद्गलिक हैं। पूज्य श्री जयसेन महाराजकी टीकाका अवलोकन कीजिए जिसमे निश्चयनयमे रागादिक भाव पौद्गलिक है ऐसा विवेचन है, अब देखो कितना अन्तर पड गया है? उसीमे यह बताया है कि रागादिक भाव जीवोकी चीज है किन्तु यह भी जानते है कि अशुद्ध-निश्चयनयमे और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयमे यह बात आती है कि रागादिक पौद्गलिक हैं। ज्ञानीकी कला बडी स्पष्ट कला है। सब कलावोका उपयोग करते है ज्ञानी, निश्चयकलाकी सिद्धिके लिये।

परमशुद्ध निश्चयनयकी विवक्षा—परम शुद्ध निश्चयनयसे पूछा जाय कि रागादिक आत्मीय हैं कि पौद्गलिक हैं? उत्तर अजीव है, ये जीव नही हैं। जीव तो एक ज्ञायक स्वभाव है, वितर्क विचार छुटपुट ज्ञान जो उठता है, यह भी जीव नही है, यह भी अजीव है। दृष्टि यहाँ यह है कि ज्ञायक स्वभाव है सो जीव है। जो ध्रुव है वह पदार्थ है। जीव पदार्थ क्या है? जो ज्ञायक स्वभाव है सो जीव पदार्थ हैं। इस

दृष्टिको अन्ततक नही छोडना है, जिसे जीव बताया जारहा है। ये छुटपुट ज्ञान वितर्क विचार आदि भी अजीव हैं। जीव तो ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है।

ज्ञायक और ज्ञेय—अब इस प्रसगमे चले ज्ञायक और ज्ञेय। यहाँ ज्ञेयका मतलब पर सत्से नही लेना है, यह पर सत्, पर पदार्थ वास्तवमे ज्ञेय नही है, वास्तव मे ज्ञेय तो ज्ञेयाकारपरिणति है। जैसे सामने ऐना है और पीछे बहुतसे पक्षी है तो उस ऐनाको देखते हुए ही हम सब पक्षियोका वर्णन कर सकते हैं। अब वह पक्षी उठा, अब वह भाग गया, इस तरहसे हम वहा साक्षात् पक्षियोको जान रहे हैं कि ऐनाके परिणमनको जान रहे है? साक्षात तो दर्पणके परिणमनको जान रहे हैं, हम उस ऐनाके परिणमनको जान रहे हैं और पीछेकी बातको हम वर्णनमे ले सकते है। इसी तरह हम सब जीव सदैव निजके ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हैं और उन ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हुए हम उन सब द्रव्योकी व्याख्या करते हैं जिसके अनुरूप यह ज्ञेयाकारपरिणमन हुआ। तब ज्ञेय क्या चीज है? ज्ञेयाकार आत्म-परिणमन। वह है ज्ञेय और ज्ञायक है आत्मा। इन दो बातोमे जीव कौन है और अजीव कौन है? जो ज्ञायक स्वभाव है वह जीव है और जो ज्ञेयाकार परिणमन है वह अजीव है। इस दृष्टिको लेकर चलनेमे सब बातें ठीक जचती चली जावेंगी।

ज्ञायक ज्ञेयमे आश्रवादि—ज्ञायकमे ज्ञेय आना सो तो आश्रव है और ज्ञायकमे ज्ञेयका बधना बध है और ज्ञायकमे ज्ञेयका न आना सो सम्वर है और ज्ञायकमे से ज्ञेयका खिरना सो निर्जरा है और ज्ञायकमे ज्ञायक रूप ही रहना सो मोक्ष है। यह बात साधारण व्याख्याकी नही कह रहे हैं, देखो मोटे रूपमे अपनी हालतपर नजर करलो, हम जो परतन्त्र बने है वह इसलिए बने है कि हमने ज्ञानमे, स्नेह परिवारको ले लिया। हमारा उन परिवारके जनोकी ओर लक्ष्य है, स्नेह है। हमारे उपयोगमे परिवारके लोग आये यह तो हुआ आश्रव और हमारे ज्ञानमे परिवार ही समाया हुआ है, निकल नही पाता है, उसको पकड कर रह गये हैं यह हुआ वन्ध, और हमारे ज्ञानमे परिवारके लोग न आयें तो यह लो हो गया सवर। इन शब्दोका सर्वतोमुखी अर्थ नही लगाना। जिस प्रकरणका सार तत्त्वो कह रहे हैं उस प्रकरणका सार तत्त्व लगाना। ४-५ प्रकारके सप्त तत्त्वोका वर्णन चल सकता है। ज्ञान यदि परिवारमे हटने लगा तो यह हो गया निर्जरा और यदि परिवारका ज्ञान न आये, केवल ज्ञायक रहे तो मोक्ष है। इस तरहका जो प्रकरण हैं कि परिवारका ज्ञान ही न आवे वही इस प्रकरणका सर्वतोमुखी मोक्ष है। भिन्न-भिन्न प्रकरणमे भिन्न-भिन्न प्रकारसे इस सप्त तत्त्वो को देखना चाहिये।

ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धी आस्रवादिक—ज्ञानमे ज्ञेय आया सो आश्रव है और ज्ञान

ने ज्ञेय रक गया तो संवर है, ज्ञानमें ज्ञेय खिर गये निर्जरा है और ज्ञानमे ज्ञान ही रहे सो मोक्ष है। जिसे कहते हैं दर्शन और ज्ञानके उपयोगोंका एक साथ रहना। दर्शनमें ज्ञेयाकारका ग्रहण नहीं है, ज्ञानके ज्ञेयाकारका ग्रहण है। ज्ञेयाकार होना तो रहता है निरन्तर, पर जिस समय ज्ञेयाकारको ग्रहण किया जाता है उस समय कहा जाता है ज्ञानोपयोग और ज्ञेयाकारको ग्रहण नहीं करता तो यह चैतन्य उस समय दर्शनोपयोग कहलाता है। यह चीज हम ससारी जीवोंमे क्रमसे होती हैं,। भगवानमें ज्ञेयाकारका ग्रहण करना ज्ञेयाकारका न ग्रहण करना एक साथ चलता है। ऐसी शुद्ध एक दशाही है दर्शनोपयोगमे एक ज्ञायक स्वरूप निज आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास है। जब भेदव्याख्या करते है तो तल्लीनता चरित्र गुणका काम है और दर्शन गुणका काम ज्ञायक स्वरूप निज आत्मतत्त्वका प्रतिभास है। दर्शनमे कितनी बातें आयी कि ज्ञानने जितना जो कुछ जाना और ज्ञानमे जितना यहाँ परिणमन हो चुका उस परिणमन सहित आत्मप्रदेशका प्रतिभास हो तो वह दर्शनका काम है सब समझलो यह दर्शन ज्ञानमे कम नहीं रहा।

दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोगका दृष्टान्त - जैसे एक कथानक है कि राजासाहब कहीं बाहर चढाईपर गए, वहाँ दूसरे राजाको जीत लिया। वहाँकी राज्य व्यवस्थामे लग गए, कई दिन हो गए। अब घरकी सब रानियोंको पत्र लिखा कि जिसको जो चीज चाहिए वह लिखे, उन चीजको लानेकी कोशिश जरूर की जायगी। रानियाँ सैकडो थीं, किसीने लिखा कि हमे अमुक वस्तु चाहिए, हमे साटी चाहिए, किसी रानीने लिखा कि आभूषण चाहिए, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ, पर छोटी रानीने अपनी पत्रमे केवल १ का शब्द लिख दिया और नोचे दस्तखत कर दिया। राजाने पत्र खोला, देखा कि ठीक, जो भी पत्र देखें ठीक, पर छोटी रानीका पत्र मिला तो मन्त्रीसे पूछा कि इस १ का क्या मतलब है? मन्त्रीने कहा कि इस रानीका कहना है कि हमे तो केवल एक आप चाहिए, धन वैभव, गहने हमे कुछ नही चाहिए हमें तो केवल आप चाहिए। कहा ठीक है। जब राजा राजधानीमे गए सब रानियोंके यहाँ सभी चीजें भेजवा दी और छोटी रानीके महलमे स्वय पहुँच गए। तो अब यह बतलावो कि सबसे अधिक वैभव उस छोटी रानीको मिला कि नही? राजाके पास सब वैभव है तो वह भी उसे मिला, और राजा भी उसे मिला। इस तरह ज्ञानने तो सारे लोकको जाना, सारे लोकको जाननेवाले ज्ञानमे तन्मय आत्माका प्रतिभास होना सो दर्शन है। तो देखो भैया ज्ञानने जो चमत्कार पाया उससे भी विशेष बात दर्शनने प्राप्त की। यह स्वरूप समझानेके लिए कहनेकी बात है दर्शन और ज्ञान हैं तो समान। हाँ, अब प्रकरण पर आयें। अभी ज्ञायक ज्ञेयकी बात चल रही थी कि ज्ञायक जब ज्ञेयकी ओर है तो आश्रव हुआ और ज्ञेयको पकड कर रह गया, तो बंध हुआ और

ज्ञायक ज्ञेयकी ओर न झुका तो सम्वर हुआ और ज्ञायक ज्ञेयकी बातोंमे निकल कर रहा तो निर्जरा हुआ और जब ज्ञायक मात्र ज्ञायक रहा ता मोक्ष हुआ।

अनुयोग द्वारोंसे बंध विवेचना—यहां कह रहे है उपयोग की बात जैसे समझानेमे बंधके प्रस्तावमे यह बताया गया कि बंध किसे कहा ? तो कहा कि जब रागादिकको उपयोग भूमिमें न लिया जाय तो वहां बंध नही बनता। करणानुयोगकी व्याख्या द्रव्यानुयोगसे सूक्ष्म मानी जाती है। यह द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा कथन समझो। करणानुयोग मे तो यह कहा कि आत्मानुभवके समयमे भी चौथे पांचवें छटे आदिक गुणस्थानमें अपने-अपने भूमि के अनुसार रागादिक निरन्तर चलते रहते हैं।

आत्मानुभूतिकी प्रक्रियाओके समय भी रागादिक—जब यह सम्यग्दृष्टि आत्मानुभवके क्षणमे आत्मानुभूति केवल ज्ञानानुभूतिकी प्रक्रियामे है उस समय भी किन्हीं गुणस्थानोतक रागादिक चल रहे हैं किन्तु रागादिक भाव उपयोग भूमिमें नहीं रहते हैं इस कारण उस समय उन्हे बंध नही है अर्थात् उपयोग भूमिमे लानेमे बंध होता है वैसे बंध नही है। इसका तात्पर्य यह है कि अनन्तानुबंधीकषायकृत बन्ध नही है, और कषायकी तीव्रतामे होनेवाला बन्ध नही है, और जहाँ अप्रत्याख्यानावरण का भी उदय नही वहां उसका भी बन्ध नही है। तथा उस समय जो राग चलता है, जो बन्ध चलता है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, संसारका बढानेवाला नही है इसलिए द्रव्यानुयोगमे बताया जाता है कि सम्यग्दृष्टिके (निम्न-गुणस्थानोंमे भी) बंध नहीं उसका तात्पर्य यह है कि बुद्धिकृत बन्ध नही। जो बन्ध है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, अत वह अबन्धवत् है, ऐसा माना है। करणानुयोग तो सूक्ष्म बातोंको भी प्रकट करता है इसलिए वहाँ कहते हैं कि आत्मानुभूतिके क्षण मे भी रागादिक चल रहे है। ज्ञायक और ज्ञेयकी जो चर्चा की है वह उपयोगकी बात है और कहा है कि जब उपयोग क्षेत्रमे रागादिक नही आते तब निर्जरा हैं, यह भी उपयोगकी बात है, उसका प्रयोजन द्रव्यानुयोगमे, मोक्षमार्गकी बात बतानेके प्रकरणमे सब मर्म प्रविष्ट है। अब गाथाके व्यक्त भावमे आइए। जब द्रव्यके भेद करने चले तो सबसे पहिले यह बात आयी कि द्रव्य दो प्रकारके हैं, (१) जीव और (२) अजीव। जीव तो वह है जो चेतना-उपयोगमय है और अजीव वह है जिसमे चेतना उपयोग नही है। यह बात पहिले आ चुकी है कि विशेषके वर्णनोके समय द्रव्यके सामान्य गुणोकी बातको नहीं भूलना है। साधारण गुणोकी वजहसे असाधारण गुण कायम हैं और असाधारण गुणकी वजहसे साधारणगुण कायम है। यही इस कथनका मतलब है कि साधारणस्वरूपके कारण विशेषका स्वरूप है और विशेषस्वरूपके कारण सामान्य का स्वरूप है। वस्तुत सभी स्वरूप अपने आपमे है।

विज्ञानसिद्ध जीवके तर्क —विज्ञान सिद्ध बात यह है कि यदि ऐसी कल्पना करें कि जीव एक वह पदार्थ है, जिसमे चैतन्यनामक असाधारण गुण नही हैं और खूब कुछीने द्रव्योमे ६ साधारण गुण मानो तो क्या इस कल्पनामे वे गुण स्वय अपने अस्तित्वको सिद्ध कर सकेंगे ? और किसीमे असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण कैसे टिकें, बतलाओ ? जैसे इन जीवोंमे ऐसी कल्पना करें कि भैया ! हम साधारण गुणोंको नहीं मानते, याने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व नहीं है, और खूब चेतना है तो बताओ यह असाधारण भाव कैसे टिके ? चेतना है, ऐसा हुआ तो अस्तित्व तो आ गया। वह चेतना अपने रूपमे है और पर के रूपमे नही है। ऐसा कहे तो वस्तुत्व तो आ ही गया और चेतनाको चैतन्यात्मक वृत्तियाँ बनती रहती है तो द्रव्यत्व आ गया। चेतन अपने आपमे ही परिणति करता है। परमें परिणति नही करता है, सो अगुरुलघुत्व आ गया। उसका आकार प्रकार ध्यान मे आया तो प्रदेशवत्त्व आगया; किसीन किसी ज्ञानका प्रमेय है, सो प्रमेयत्व आगया। यो देख लो भैया ! साधारण गुण न हो तो असाधारण गुण नही टिक सकता और असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण नही टिक सक्ते। इसी कारण पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। केवल सामान्य हा हो, विशेप न हो ऐसा कुछ नही हैं, केवल विशेप हो सामान्य नही हो ऐसा भी पदार्थ नही है। निरक्षेप सामान्य भी हो और निरक्षेप विशेप रहे ऐसा दोनोको रख दें तो भी ऐसा कोई पदार्थ नही है। इस प्रकार पदार्थ सामान्यविशेपात्मक हैं और इस कारण सामान्यके वर्णनको न भूलकर विशेप के वर्णनमे चलना चाहिए। यहाँ यह बार-बार याद दिलाया जारहा है।

द्रव्यका विभाजन —द्रव्य जीव और अजीव दो भागोंमे बटा है। जब चतुष्टयकी दृष्टि है तो पुद्गल, धम, अधर्म, आकाश, काल अजीव हैं और जीव जीव है और जब भावात्मक दृष्टि है तो उसमें यह ध्रुव ज्ञायकस्वभाव तो जीव है और इसके अतिरिक्त जितने भी तत्त्व हैं वे जीवकी परिणति हो, जीवके विकार हो, जीवका छुटपुट ज्ञान हो वे सब अजीव हैं। द्रव्यानुयोगकी मर्मभूत दृष्टिसे इस तरह जीव और अजीवकी व्याख्या है।

समयसारमे जीवकी विवेचना—समयसारमे जहाँ यह बताया है कि अध्यवसाय जीव नहीं है, सुख दु ख भाव जीव नही है, राग द्वेषकी सतति भी जीव नही है। जिसको लक्ष्य करके इनमें जीवका निपेध किया है वह परमार्थ जीव क्या है ? जीव वह है जो शाश्वत सहज हो। इस दृष्टिमे ज्ञायकस्वभाव ही जीव है उसके विशुद्ध परिणाम भी जीव नही, गुणस्थान भी जीव नही, सयमस्थान जीव नहीं, जीवसमास जीव नहीं। परमार्थपद्धतिमे लक्ष्य पर पहुँचना है। वहाँ गुणस्थान क्या है ? पुद्गल

क्या है इसकी चर्चा नहीं किन्तु वह जीव नहीं है, इसकी चर्चा है। वहाँ यह नहीं है, इनकी चर्चा है। वहाँ यह नहीं बताया है कि राग, द्वेष, विषय, कषाय, विशुद्धि, संयम यह क्या चीज है। पुद्गल है कि आत्मा है, क्या है ? यह नहीं बताया है, वहाँ तो इतना लक्ष्य कराया गया कि शुद्ध जीव तत्त्व क्या है ? भैया जीवमें टिके, जिसमें टिकनेपर अनन्तानन्द होता है। इस पावन रास्तेमें चलने लगो तो बीचमें बहुतसे तत्त्व रोकने लगते हैं, अरे रुको, रुको, दो मिनटके लिए रुको। नहीं-नहीं, हमें दो मिनट भी रुकनेकी फुरसत नहीं है। जैसे प्रगतिशील समय पथिक विरोधी लोगोंको फटकार कर अपने प्रिय थानको पहुँचते हैं इसी तरह उस सम्यग्ज्ञानी जीवको स्वयम-अध्यवसाय आदि भाव अटकाने लगे, तब उनको झकोरकर कि यह मैं नहीं आगे आगे बढ़ता चला जाता है यह ज्ञानी।

दृष्टिपर ध्यानकी प्रेरणा—किस दृष्टिमें यह गुप्त चमत्कार हो रहा है यह ध्यानमें रखना, नहीं तो कई सुननेवाले भाई सोचेंगे कि क्या बात बोली जा रही है और अन्य सब दृष्टियोंकी अपेक्षा यह बात गलत है। शुद्ध ज्ञान स्वभावकी दृष्टिको जमावो, इस पद्धतिमें हम आगे बढ़ सकते हैं और इस बढ़ावाके आगे– अन्दर बीचके जो स्थान मिलते हैं उन सबका न मानें, एक तरहसे कहें तो नेति की पद्धतिसे सब अतत्त्वोंको हटाकर बढे, यह मैं नहीं हूँ। भावात्मकता की दृष्टिसे एक स्वरूप है। स्वरूप चतुष्टयकी दृष्टिमें वे सब जीव ५ तरहके हैं, नारकी, तिर्यञ्च मनुष्य देव और सिद्ध। पर भावात्मक दृष्टिके प्रयोजनवश सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरुषके द्वारा जीव जो खोजा जाता है वह ज्ञायक स्वभाव ही जीव है, अन्य कुछ नहीं।

सामान्य और असामान्य गुण दृष्टि—जगतके जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंमें एकता रहे, इस एकताका कारणभूत तत्त्व क्या है ? द्रव्यसामान्य। जैसे कि कोई लोग कहते हैं कि ब्रह्म एक है, सर्व व्यापक है, ठीक है, एक है, सर्वव्यापक है, जितनी भी जातियाँ होती हैं वे सीमा तो रखा नहीं करती हैं, जाति तो ज्ञानगम्य है, तत्त्व है। तो यह सत्त्व द्रव्यत्व सर्वत्र एक है और व्यापक है। सो ऐसा यदि उनका यह ब्रह्म है तो कुछ अन्तर नहीं है। कोई ब्रह्मके स्वरूपको कहते हैं कि ज्ञानरूप है, कोई कहते हैं कि आनन्दस्वरूप है। यदि वह ज्ञानरूप है तो अज्ञान रूप ये जो दिखने वाले स्कंध हैं उनको ब्रह्मतत्त्व कहेंगे क्या ? और यदि आनन्द स्वरूप है तो जो आनन्दसे शून्य है उनको ब्रह्म कहा जायगा क्या ? भैया, सत्त्वकी दृष्टिसे, द्रव्यत्वकी दृष्टिसे सब कुछ एक है, सर्वव्यापक है पर इसमें जब असाधारण गुण लगा दिया कि ब्रह्मका स्वरूप ज्ञान है, यदि ऐसी विशेषता लगावें तब तो वह ब्रह्म एक व्यापक नहीं घटित होगा। एकत्वका कारणभूत तत्त्व है द्रव्यत्व सामान्य।

उन द्रव्यत्वसामान्यको न छोडकर स्वयं उनमें समाया हुआ जो विशेष लक्षण है उनका सद्भाव भी नियमसे है। सो जब द्रव्यसामान्य कहा तब तो अन्योन्यव्यवच्छेद नहीं हुआ। एकमे दूसरा अलग नहीं हुआ। किन्तु, जब विशेषगुण बनाए तो एक दूसरेसे अलग हो गए। ज्ञानगुण बतानेमे ज्ञानगुणसम्पन्न चेतन आत्मा अलग और शेष द्रव्य सब अलग हो गए।

विशेष गुण ही द्रव्यभेदके कारण—भैया! जब द्रव्यसामान्यको न छोडकर उनमे विशेषगुण देखा जाय तो द्रव्यके दो भेद हैं, (१) जीव और (२) अजीव कोई यह प्रश्न करे कि पदार्थ कितनी तरह के होते हैं तो उसको क्या उत्तर दोगे? उत्तर दोगे कि पदार्थ दो तरहके होते हैं एक जीव और दूसरा अजीव। दो तरहके होते हैं सो तो ठीक है, और कोई पूछे कि पदार्थ कितने होते है? तब क्या कहोगे कि दो होते हैं जीव और अजीव? नहीं, भैया! यह उत्तर तो गलत है। पदार्थ दो नही है, पर पदार्थ दो तरहके हैं। पदार्थ कितने हैं, याने द्रव्य कितने हैं? क्या उत्तर आयगा? द्रव्य ६ हैं, यह उत्तर गलत है। और प्रकार पूछने पर यह उत्तर सही आयगा कि द्रव्य ६ तरहके हैं। द्रव्य ६ नही है, द्रव्य अनन्तानन्त हैं—अनन्तानन्त जीवद्रव्य, उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल द्रव्य, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असख्यात कालद्रव्य। इन अनन्त द्रव्योंको सक्षिप्त जातियोंमे बाँटा जाय तो ६ जातियाँ होती हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। फिर, दो जातियाँ नहीं होगी जीव और अजीव। क्योंकि, जीव कहनेमे तो असाधारण गुण बता दिया, मगर अजीव कहने मे कोई गुण नहीं आया। यह तो निषेधात्मक वचन है। पर जैसे जीवमे आया कि उसमे चैतन्य गुण है इसी तरह इस अजीवको बतलाओ कि इसमे क्या गुण है? अजीव कहनेमे असाधारण गुण नहीं आया इसलिए जातियाँ दो नही है जीव और अजीव। अभी तो निषेधात्मक रूपका यह वर्णन किया गया है कि द्रव्यके विशेष दो हैं जीव और अजीव। ऐसा बतानेमे हितकी बात यह कही गयी है कि अजीव से हटना है, और जीवमे आना है। जातियाँ दो नही हैं जातियाँतो छ हैं। जातियाँ बनी हैं असाधारण गुणोंको लेकर। जैसे कहा जाय कि जातियाँ दो है एक जैन और दूसरा अजैन, तो इनमे निषेधात्मक दूसरा नाम हो गया जो जैन नहीं सो अजैन। इसी तरह यह भी है कि चैतन्यमय है सो जीव और जो चेतनामय नहीं सो अजीव। यों जीव और अजीवके विशेषोको बताया।

द्रव्य व्यक्तियाँ—अब व्यक्तियोको बतलाते है कि जीवकी तो एक जीव द्रव्य ही व्यक्ति है किन्तु अजीवके हैं पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश और काल द्रव्य ये ५ प्रकार व्यक्तियाँ। इस प्रकार सब पदार्थ ६ हुए-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। देखिये सब वर्णनोमे द्रव्यत्वसामान्यका स्मरण न छोडना। वाह!

आचार्यदेवकी कैसी अनूठी पद्धति है जरा इस बातको गंभीर सकल्प और कल्पनासे सोचो कि इस सारे विश्व मे केवल एक सत् ब्रह्म है, सत् है वही सर्वत्र है। अब आगे बढ़ो और देखो जैन सिद्धातमे किसी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे किया जाता है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। किसी भी चीजका वर्णन हो, ६ प्रकारसे होता है।

जैसे जिनेन्द्रभगवान, तो "जिनेन्द्र" यह हुआ नाम जिनेन्द्र और यह कहलाता है जिनेन्द्र, ऐसी बुद्धि करनेका नाम है स्थापनाजिनेन्द्र और मूर्तिमे जिनेन्द्रकी स्थापना होती है तथा जो साक्षात् समवशरणमे स्थित है उसमे यह स्थापनाकी बुद्धि की कि यह है जिनेन्द्र, इसको भी स्थापनाजिनेन्द्र कहते हैं। द्रव्य जिनेन्द्र—जो जिनेन्द्र होने वाला है, समाधि मे उत्तीर्ण हो रहा है वह है द्रव्य जिनेन्द्र जो प्रदेशात्मक रूपमे क्षेत्रात्मक रूपमे जाना हुआ हो, अथवा जिस स्थानसे ज्ञानकल्याण व निर्वाण-कल्याण हुआ हो वह क्षेत्र जिनेन्द्र हुआ। काल जिनेन्द्र जिन पर्यायरूप है। भाव रूप जिनेन्द्र वर्तमान जिनपरिणामरूप है। यो किसी भी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे होता है।

सत् की व्यापकता—सामान्य जो सत् सर्वव्यापक है, समस्त विश्वमे एकरूप है सत्से कौन छूटा है ? चाहे भगवान हो, चाहे ससारी हो, वे सब सत् में आ गये, भैया है ना ठीक, उस सत्के बावत देखो नाम सत्, स्थापना सत्, क्षेत्रसत्, कालसत और भावसत् यो हम उस एकको ६ विशेषोमे अगर देखते हैं तो व्यक्तियाँ उनमे प्रकट होती हैं।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी दृष्टिसे सत्का वैभव—नामका अर्थ है चलना ? नामका काम है चलना। जैसे अपन लोगोमे जो नाम रख लेते हैं वह किसलिए ? अपना नाम चलानेके लिए। नाम रखे बिना कुछ नहीं चल सकता है तो नाम रूप सत् है चलनेका साधनभूत। लोग तो स्पष्ट कह देते हैं कि इनका नाम चल गया। किसीने मंदिर बनवा दिया उसका नाम चल गया, किसीने वेदी बनवा दी उसका नाम चल गया। नामका काम है चलना। और, समस्त सत् मे से चलनेका कारणभूत कौनसा द्रव्य है ? याने जो चल सकने वाले द्रव्य है उन द्रव्योंके चलनेकी क्रियाका कारणभूत (निमित्तरूप) कौन सा द्रव्य है ? वह है धर्म द्रव्य। उस व्यापक सत् को नाम सत् की दृष्टिसे देखो तो निकला क्या ? द्रव्य पदार्थ। उसमे नाम सत् की व्यक्ति है धर्म द्रव्य। उस एक सत्को स्थापनासत्की दृष्टिसे देखा जाय तो स्थापना सत् कौन हुआ, जिसने कुछ थाप दिया, रख दिया, ठहरा दिया हो ? तो ठहरानेका आधारभूत व्यक्ति निकला अधर्म द्रव्य। इस कल्पनाके मुताविक सीधी ठीक बात तो नही है पर है यह अद्वैतसे द्वैतकी ओर आने की पद्धति है। इसमे

प्रयोजनकी बात निकलेगी जिसे अतमे कहेंगे। अब उस महाव्यापी सद् ब्रह्मको द्रव्य सतकी दृष्टिसे देखो तो निकला पुद्गल द्रव्य जिसे कि एक वस्तुके रूपमें पिण्डके रूपमे बता सकते है कि यह है।

क्षेत्रादि सत् मे विस्तारकी प्रधानता—जब व्यापी सत् को क्षेत्रसत् की दृष्टिसे देखा तो निकला आकाश द्रव्य। काल सत्से देखा तो निकला काल द्रव्य और भावसत् से देखा तो भाव सत् जीवद्रव्य निकला।

जीव द्रव्यके परिचयकी साधिका भाव दृष्टि—प्रयोजन यह है कि हम जीव सत् को भावात्मक दृष्टिसे देखें तो जीवद्रव्यका ज्ञान होता है, विशद पहचान होती है और यदि अन्य अन्य नाम स्थापनादि दृष्टिसे इस जीवको देखें तो उसका बोध नही होता है। जीव कितना लम्बा चौडा है? पैरोसे लेकर सिरतक कितना लम्बा चौडा है? जैसे हाथी खडा है तो उसका क्षेत्र कितना फैला हुआ है? बहुत फैला हुआ है कितने लम्बे चौडे विस्तृत रूपका यह जीव है। सोच डालो भैया! अब बताओ कुछ परिचय हुआ कि जीव क्या चीज कहलाती है? कुछ परिचय नही हुआ। जीवके आकारको, ढाचेको देखकर जीवका परिचय नही होता केवल ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वरूप, प्रतिभास ही जिसका लक्षण है ऐसे भाव रूपसे जब जीवको देखो तो जीवका अनुभव होता, किन्तु वह अनुभव बाह्य क्षेत्रमे जीव है इस प्रकार से न होगा किन्तु वह स्वयमे मिलकर एक होकर बाहरके सत्को ध्यानमे न रखकर केवल भावोसे ही जीवका परिचय होगा अगर बाहरसे जीवका परिचय करना चाहे तो नही हो सकता है क्योंकि इसकी ६ आत्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर जाननेमे ज्ञानकी अनुभूति नही होती। जीव को भावात्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर विशद जान सकते हैं अन्य दृष्टिसे नहीं जान सकते हैं। जो प्रयोजन है परिचयका साधन है सोई कहना चाहिए, नहीं तो क्या अवस्था होती है कि कही के चले कही पहुँचते है।

प्रयोजनकी भूलमे विडम्बना—भैया! एक छोटासा दृष्टान्त है कि जन्मजात अंधा पुरुष था। उसको एक लडकेने कहा कि सूरदास जी हम तुमको खीर खिलायेंगे। सूरदास बोले कि खीर कैसी होती है। लडका बोला कि सूरदास बाबा! खीर तो सफेद होती है। वह जन्मका अन्धा सफेद क्या समझे। उस अंधेने कहा कि भाई सफेद कैसी चीज होती है। उसने कहा कि बगला जैसा। अब बगलेको उस अन्धेने कहाँ देखा था। उसने पुन पूछा कि बगला कैसा होता है। लडका उस अंधेके सामने बगले जैसा टेढा हाथ करके बोला कि बगला ऐसा होता है। वह अंधा हाथको टटोलता है कि बगला ऐसा होता है? टेढा मेढा, बोला हम इसे नही खायेंगे। वह तो हमारे पेटमें

गडेगी। हमे ऐसी खीर नही खाना है। कहते हैं वाकई यह टेढी खीर है, वह नहीं खाई जा सकती। वतलावो उस बच्चेने क्या कसूर किया। अरे क्या खीर सफेद नही होती? वतलावो वगला जैसी नही होती? वगलेका रूप क्या टेढामेढा नही होता? ऐसा होता है, लेकिन वह प्रयोजनमे चूक गया। प्रयोजन तो था खीरका स्वाद वतलाने का और कोई प्रयोजन न था, लेकिन खीरका वर्णन वह स्वादमे करता, इसके वजाय उसने वर्णन किया खीरके रूपका। खैर फिरभी थोडी गनीमत थी, पर रूपका वर्णन करने चला तो आकारसे, तो वात कैसे समझमे आसकती है। वह रूपका वर्णन भी आकारकी मुख्यता देकर करने लगा। इसी कारण अन्धेको खीरका ऐसा ढंग वतानेका प्रयोजन ठीक न होसका।

प्रयोजनके व्यक्त करनेकी विधि—इसी प्रकार अज्ञानी जनोंको आकार प्रकार आदि ढंग वतानेसे जीवका परिचय नही हो सकता। उस अन्धेको खीर का परिचय इस प्रकार कराया जा सकता है कि देखो भाई! खीर वहुत मीठी होती है तुमने शक्कर तो खाया ही होगा, उस खीरमे शक्कर जैसा स्वाद होता है दूधतो पिया ही होगा, दूध जैसा स्वाद होता है, चावल खाया होगा, चावलके स्वाद जैसा उसमे स्वाद होता है। इस प्रकारसे वह कुछ-कुछ समझ जायगा कि खीर कोई वढिया चीज होती होगी। देखो यह है खीर इसे खाकर जरासा देखो। वह चीखकर देखेगा तो स्वादका परिचय आ ही गया। उसके वादमे फिर लडका कहे कि सफेद होती है खीर। इससे उस अंधेको सफेदका कुछ अनुमान भी हो जायगा। आँखो नही देखता है फिर भी सफेदका कुछ न कुछ अनुमान होने लगा। इसी प्रकारसे जीवोंका परिचय किस ढगसे होता है। नाक, कान, आँख इत्यादि देखनेकी जरूरत नही है केवल भीतरकी वात कह रहे हैं, नाक, कान आदिको कुछ काममे नही लाइयेगा जो ज्ञान-करता है जिसके जानन वना रहता है, समझ वनी रहती है। ऐसा जाननहार जो पदार्थ है उसे जीव कहते हैं।

आत्माल्हाद सीमित और ज्ञानस्वरूप असीमित—जीवके यथार्थ परिचयके वाद जाननस्वरूप, जाननमात्र मैं हूँ ऐसा जिसने ज्ञानके स्वरूपको जाननेका यत्न किया, अनुभव किया ऐसे जाननमात्रकी अनुभूतिके साथ ही उसके एक परम आल्हाद उत्पन्न होता है, निरपेक्ष आनन्द उत्पन्न होता है। उस आनन्दका इस सीमित प्रदेशमे ही विकाश होता है। जैसे कोई कहता है कि फिरोल्सी उठ गयी। जो उठ गयी, वह आनन्दका ही सकेत है। ज्ञानने तो सीमा नही वनाई पर जानकी भावनामे आनन्दकी सीमा वन गई। ज्ञानने तो जाननका ही परिचय किया पर जानन स्वरूपके ही परिचयके समय जो आल्हाद, आनन्दका विकाश हुआ वह आनन्दका विकाश

आत्मप्रदेशमे ही उत्पन्न हुआ। देखो भैया, आनन्दने जीवकी सीमाको जता दिया कि तू इतना बडा है, इतने क्षेत्रमे फैला हुआ है। किन्तु जीवका जो मुख्य लक्षण ज्ञान है उस ज्ञान स्वरूपको जाननेकी स्थितिमे और जब जीव ज्ञानके रूपसे जानता है तब उस रूप मे उसकी सीमा नही रहती और जब सीमा नही रहती तो ज्ञानकी सीमा उपयोगमे नही आई। इस जीवका मुख्य लक्षण ज्ञान है। वह ज्ञान एक है। यों ज्ञान ब्रह्म एक हुआ।

ब्रह्म तत्त्वकी लोकोक्ति—विश्वमे ब्रह्म एक तत्त्व है, ऐसी कुछ व्यक्तियोकी लोकोक्ति है। इस लोककी लोकक्तिके प्रयोगमें जैन सिद्धान्तसे तो इससे भी बढकर बात निकली अर्थात् तुम जिसे एक कहते हो उसे तुम एक भी नही कह सकते हो क्योंकि ज्ञानस्वरूपके अनुभवकालमे क्या यह विकल्प निकलता है कि वह एक है ? वहाँ तो एक का भी विकल्प नही है। वहा तो निर्विकल्प स्वाद मात्र है। उसे तो ज्ञानरसास्वादनका अनुभव हो रहा है। अत यह कहना भी गलत है कि ब्रह्म एक है किन्तु है, इतना ही अनुभव है। अनुभव भी क्या, निर्विशेप परिणमन मात्र है।

द्रव्योंकी पहिचान—यहा द्रव्यविशेपका वर्णन चल रहा है कि द्रव्य दो भेदोंमे विभक्त है। एक जीव और दूसरा अजीव। जीवमे तो एक व्यक्ति है मात्र आत्मतत्त्वहै जब कि अजीवमे ५ व्यक्तिया हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अब जीव और अजीवके विशेप लक्षण क्या हैं ? उत्तर-जीवका तो चेतनोपयोगमयता होना अर्थात् चेतन स्वरूप होना जीवका लक्षण है और अजीवका लक्षण है जीवके लक्षणके विपरीत चेतना न होना। न होना देखकर द्रव्यकी पहिचान नही होती, किन्तु प्रयोजनकी पुष्टि होती है। होना देखकर द्रव्यकी पहिचान होती है। जीव और अजीवके लक्षणोके बताने मे यह प्रयोजन आ गया कि अजीवसे तो हटना है और जीवमे आना है। वर्णन तो ठीक किया गया मगर अजीवका विध्यात्मक लक्षण नही आया। ऐसा लक्षण तो इन ५ व्यक्तियोके गुणोके बतानेमे आयगा।

पुद्गलादिक द्रव्यो का अस्तित्व व पहिचान—देखो जिसमे स्पर्श, रस, गन्ध रूप आदि हैं वह पुद्गल है और जो जीव पुद्गलके गमनका निमित्त भूत है वह धर्म द्रव्य है। यद्यपि यह धर्म द्रव्य आँखो नही देखा गया है फिर भी पकड मे आता है कि ऐसी कोई चीज अवश्य है जो जीव व पुद्गल के चलने मे निमित्तभूत है। हो सकता है कि वैज्ञानिकोके कथनानुसार इस आकाशमे भी लहर है, तरग है, कोई ईथर तत्त्व है जिसके सहारे चीजें चलती, शब्द चलते हैं, सूक्ष्म अणु चलते है। जो जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहायक है वह अधर्म द्रव्य है और जो सर्व द्रव्योको अवगाहन देनेमे कारणभूत है वह आकाश तथा जो परिणमनमे निमित्तभूत है वह काल द्रव्य है। द्रव्यके लक्षणोकी पहिचान हुई।

चेतना भगवती जीवकी पहिचान—अब जीव द्रव्य क्या चीज है इस बात को बतलाते हैं कि अपने धर्ममें व्यापक होनेसे अपने स्वरूपसे जो अन्त शोभमान है, अविनाशी है, ऐसी यह भगवती चेतना है। माँगनेवाले लोग जब आते हैं तो बोलते हैं कि तुम्हारी भगवती फतह करे। वह भगवती क्या है, क्या भगवानकी धर्मपत्नी है नही भैया! वह भगवती है चेतना। भगवानकी जो लक्ष्मी है सो भगवती है। लक्ष्मी के माने क्या है? लक्ष्मी शब्द बना लक्ष्मसे, लक्ष्म नपुंसक लिंगमें होता है और लक्ष्मी स्त्रीलिंगमें होती है पर लक्ष्म कहा जाय, चाहे लक्ष्मी, बात एक है लक्ष्म के मायने है लक्षण याने स्वरूप। सो लक्ष्मी के माने है स्वरूप। जो भगवान का स्वरूप है वही लक्ष्मी है सो लक्ष्मी हुयी चेतना। सो भगवती तुम्हारी फतेह करे, ऐसा जो आशीर्वाद देते हैं। उसका अर्थ न तो माँगनेवाला समझता है और न सुननेवाला समझता है उसका अर्थ है कि चेतनाकी दृष्टि आपकी विजय करे।

भगवती चेतनाकी ओर दृष्टि लानेकी प्रेरणा—देखो भैया! तुम्हारी फतेह हो सकती है तो शुद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे ही हो सकती है। क्या धरा है उस व्यवहारमें, जिसमें नाम चलता है, इज्जत बढ़ती है। लोकमें बहुत अच्छा कहलाने चले हैं, उसमें क्या तत्त्व रक्खा है। आत्मन्! किसके द्वारा भले कहलानेके लिए, किसको प्रसन्न करने के लिए अपनेको जोखममें डालते हो। अरे उन मोहियोंके द्वारा भले कहलाने के लिये, उन पापियोंके मौज बनानेके लिए जो ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करनेकी तय्यारी में हैं उनको अपना आत्मसमर्पण करते हो, उत्तर दो सोच आत्मन! सोच तो उन मानवोंमें जो विषय कषायमें आसक्त हैं भला कहलानेके लिए अपनी कमर कस रहा है? चौरासी लाख योनियोमें भटकते भटकते तो यह दुर्लभ नर जन्म पाया है उसको क्यों निरर्थक समझकर बरबाद किये जा रहा है।

गति विचाराधीन नहीं किन्तु परिणामाधीन—मनुष्य जन्म पाकर तो अपने हाथकी बात है चाहे उत्थान करलो या पतन करलो यदि कहो कि हम मरकर मनुष्य बनेंगे तो क्या यह अपने हाथकी बात है? भैया! वह तो परिणामसाध्य बात है। ऐसे परिणाम होते रहे कि जिसका निमित्त पाकर मनुष्यगतिनामक प्रकृतिका बध हो जाय तो मृत्यु बाद नरदेहकी रचना भी हो जायगी, नही तो परिणाम हो रहे हैं मोह के, आशक्तिके, विषय कषायोंके सो इनसे तो कही तिर्यंच होंगे, कही अन्य-अन्य कर्मोंके बध हो गये तो उस समयमे कितनी विडम्बना हो जायगी? कहाँ तो मनुष्य गतिके भाववाले और कहाँ मनुष्यके अगोके आकारसे बदलकर, मरकर दो तीन समय बाद ही अन्य ढाँचा बदल जायगा, दूसरा ढाँचा बन जायगा, अधिकसे अधिक तीन समयमे बदल जायगा। कितने गजबका सकट इस जीवपर छा जायगा,

सोचा है कभी तुमने ? अभी तो मनुष्य है और मरकर कीडा मकोडा हो गए तो अपनेपर कितने सकट छा जावेंगे ? मनुष्यजन्म पाकर क्या फल पाया ? कितने सकट इन जीवपर आये ? थोडा धन होना क्या कोई सकट है ? अथवा परिवारके लोग बात नहीं मानते हैं, यह क्या कोई सकट है ? किसीने कुछ कह सुन दिया, क्या यह कोई सकट है। सकट तो यह है कि मरकर कोई कीडा मकोडा कोई पशुपक्षी बने पेड बन गए, नारकी बन गये, ससारमे यत्र तत्र रुलते फिरे। यही जीवपर सकट है, और कोई सकट इस जीवपर नही होते हैं। सकटसे बचना है तो अपने आपको अथवा अपने स्वरूपकी भावना करो, यही आत्माकी परम दया है। इस ओर हमे कितना लगना चाहिए इसका ख्याल तो करो ? धन कमानेकी अपेक्षा खूब विचार करलो कि हमे आत्मकल्याणमे कितना लगना चाहिए।

जीव द्रव्यकी पहिचान—पूर्व प्रकरणमे द्रव्यके भाग किए गये थे कि द्रव्य दो प्रकार के होते हैं, (१) जीव और (२) अजीव। उनमे से जीव द्रव्यकी पहिचान क्या है ? सीधी बात यह है कि जिसमे देखना जानना पाया जाय वह जीव है और जिसमे देखना जानना नही पाया जाय वह अजीव है। किन्तु श्री अमृतचद्रसूरिके शब्दो मे यह बात रख रहे हैं कि जीव वह है जो इन सब द्रव्योंमे से जिसमे चेतनाके द्वारा और उपयोगके द्वारा निर्वृत्तपना अवतीर्ण प्रतिभात हो। चेतना क्या चीज है और उपयोग क्या चीज है ? चेतना तो स्वरूपरूपमे द्योतमान है, अविनाशी है, भगवती है, सम्पत्ति है और उपयोग द्रव्यकी वृत्तिरूप है।

चेतनाका अर्थ व जीवके चेतन अचेतन गुण—चेतनाका अर्थ यहाँ मात्र जानना देखना न करना, किन्तु यह जीवका एक असाधारण भाव है, जो अपने सब धर्मोंमे व्यापक है, जीवमे जितने गुण हैं उन सब गुणोंमे व्यापक है। यह चेतना वह है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक होते हैं। वैसे तो जीवमे कुछ गुण चेतन हैं और कुछ गुण अचेतन हैं। जैसे पूछा जाय कि जीवमे सूक्ष्म तत्त्व चेतन है कि अचेतन है ? सूक्ष्म तत्त्वमे जानने देखनेकी कला है क्या ? नही है। तब सूक्ष्म तत्त्व अचेतन हुआ। यहाँ चेतनसे मतलब चेतकका है और अचेतनसे मतलब अचेतकका है। इसी तरह अनेक गुण हैं। ज्ञान और दर्शनको छोडकर बाकी गुण सब अचेतन हैं। आनन्द गुण भी चेतन है कि अचेतन है ? आत्मामे जो आनन्द नामका गुण है वह चेतनेवाला नही है, वह चेत्य है, चेतनेमे आने वाला है, जैसेकि और गुण होते हैं। तो आनन्द भी चेतन गुण नही है। सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, आनन्द आदि अनेकों गुण चेतक नही हैं। चेतक तो केवल ज्ञान और दर्शन है।

चेतन अचेतन गुणोंका समर्थन व पिष्टपोषण—श्री अकलकदेवजी ने स्वरूप सम्बोधनमे लिखा है कि प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मक। ज्ञानदर्शनतस्त-

स्मात्त्वेतनाचेतनात्मक । प्रमेयत्व आदिक धर्मके कारण यह जीव अचिदात्मक है और ज्ञान गुण, दर्शन गुणके कारण यह चिदात्मक है। इसलिए जीव पदार्थको कोई पूछे कि यह चेतन है या अचेतन है ? तो उत्तर आयगा चेतनाचेतनात्मक है। चिदात्मक है व अचिदात्मक भी है। यह गुण भेदकी अपेक्षासे है। यह अभिप्राय नहीं कि आत्माका कुछ हिस्सा चेतन है,व कुछ अचेतन है चेतन तो पूरे भागमें व्यापक है अर्थात् आत्माके सब धर्मोंमें चेतन व्यापक है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक हैं। वह चेतन अपने स्वरूपसे द्योतमान है और अविनाशी है। चेतना एक शक्ति है, सहज भाव है व वह अविनाशी है। सहजकी व्याख्या है, सह जायते इति सहजम् । जबसे यह पदार्थ है तबसे यह चेतन है। अत यह सहज चैतन्यभाव ही है। चेतना ऐसा गुण है जो चेतनके साथ है सहज और वह भगवती है, भगवान आत्मदेवके साथ सदा रहनेवाली शक्तिविशेष है अर्थात् आत्माकी जो सहज शक्ति है वह है भगवती।

उपयोग—चेतना शक्तिकी जो परिणति है उसको उपयोग व पर्याय कहते हैं किन्तु यहाँ उपयोग शब्दका अर्थ जानने देखनेकी क्रियाका वर्णन नहीं, किन्तु इंगलिशमें यूज शब्दको जिस प्रकार प्रयुक्त किया है, बोलते हैं कि इसका क्या यूज किया है वैसा ही उपयोगका अर्थ है यूज। आत्मा है उसका उपयोग, काम काज क्या है ? जैसे लोक व्यवहारमें भी कहते हैं कि द्रव्यकी वृत्ति हो, द्रव्यका उपयोग हो, सो यह चेतना गुण है व उपयोग पर्याय है। इस चेतना व उपयोगसे निर्वृत्तिपना जहाँ पर अवतीर्ण होता है, प्रतिभास होता है वह जीव है।

अवतीर्ण शब्दका स्पष्ट विशिष्ट भाव—उतरा हुआ, अवितीर्ण हुआ प्रतिभास हुआ का भाव यह है कि द्रव्यका जानन जो होता है वह इस टाइपका होता है कि हमने उसमें से कुछ खींच लिया। उसका फोटो खींच लिया। अर्थात् कैमरे के समान फोटो खींच लिया अर्थात् उतार लिया। अवतीर्ण का अर्थ है उतार लिया।

जीवकी उपयोगदृष्टिमें व्याख्या—जिसमें चेतन और उपयोगको उतारा गया है वह जीव कहलाता है और जहाँ से यह सब नहीं उतारा जा सकता है वह अचेतन कहलाता है। जिन पदार्थोंसे हम चेतनात्मकताको नहीं खींच सकते हैं वह है अचेतन। इन शब्दोंमें अमृतचन्दजी सूरि कह रहे हैं। यह चेतन कैसा है इसको समयसारमें अपने स्वरूपसे ही द्योतमान बताया है यथा णावि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एव भणंति सुद्ध णाओ जो सोउ सो चेव ॥

जब यह पूछा गया कि वह शुद्ध आत्मा क्या है ? जो एकत्वविभक्तरूप है, जिसके जाननेमें सब संकट दूर हो जाते हैं। [सबसे पहिला उद्योग और पुरुषार्थ इस जीवका यही है कि ज्ञानस्वरूप यह आत्मतत्त्व अपने निजके ज्ञानमें विषयभूत हो जाय।

हितप्राप्तिका स्थल—बस, यही सबसे बडा उद्योग है कि यह शुद्ध आत्मतत्त्व ज्ञानका विषयभूत हो जाय। सतोष यही मिलेगा, हितकी प्राप्ति इसी जगह होगी। अन्यत्र तो केवल भटकना ही मात्र है। सिद्ध शुद्ध आत्मतत्त्वके जाननेसे सारे सङ्कट टलते हैं। शब्दार्थमें वस्तुका ग्रहण नही, किन्तु आत्मतत्त्व क्या है? इसे समझो, वह न कषायसहित है और न कषायरहित है किन्तु एक ज्ञायक भावमात्र है। और इस ज्ञायक भावको भी शब्दार्थमें न लेना किन्तु जो जाननेवाला है उसे लेना। जो जाननेका भी विकल्प करता है, वह शुद्ध आत्मतत्त्व को नही जान पाता है, क्योकि वह भी एक विशेषण बन गया है। और जितने विशेषण होते हैं वे भेदक होते हैं। शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभव द्वारा ही विशद गम्य है।

विशेषणाधीन नामकरण—किसी पदार्थका वास्तवमे कोई निजी नाम नही है, किन्तु उस पदार्थका विशेषण बनाकर नामकरण किया गया है। यदि शब्दार्थ ही लें तो उस शब्दमे पूरी चीज नही पकडी जा सकती है। किसी पदार्थका सही नाम कोई रखा हो तो बतलावो? यदि कहो कि इसका नाम चौकी है तो इसको चौकी कहना वस्तुका नाम नहीं है यह तो उस पदार्थकी विशेषताका द्योतक है। जिसमे चार कोनेकी विशेषता है, वह चार कोनेवाली चौकी है। आइये और भी शाब्दिक अर्थोंपर विचार करें। जैसे घडी है याने जो घडी जाय सो घडी कहलाती है, यह शब्द भी विशेपता ही बतलाता है। चटाई, चट आई, चट धरी अर्थात् चटाईका कोना उठाया और उसे चट धरी। यह शब्दभी विशेषता बतलाता है। जैसे किवार जो किसी को वार दे, रोक दे, जैसे कुत्ता, बिल्ली, आदि किसी को रोक दे सो किवार है। यह भी उस पदार्थकी विशेषताको बताने वाला शब्द है।

क्या निजतत्त्वका कोई नाम है?—निज तत्त्वका कोई नाम नही है। कौन सा नाम है बतलावो? तो कोई भी नाम नही मिलता। कहोगे जीव, यह भी जीव नही है क्योकि इस जीव शब्दने भी विशेषण ही बतलाया, कहोगे ज्ञायक! तो ज्ञायक शब्दसे वह ज्ञायक गुण वाला, ज्ञानका काम करने वाला इतना ही भाव न लो, किन्तु एक विशेषणके द्वारा उस तत्त्वको समझलो। और, फिर उस विशेषणका लगाव छोड दो। ऐसा वह शुद्ध ज्ञायकतत्त्व है। वह क्या है इसको जान लिया कि नही? हाँ जान लिया। हमे बतलादो। अरे वह तो जो नाथ है सो ही है? उसे कैसे और क्या बतलावे। ज्ञायकस्वरूप जो जीव है उसकी कुछ करतूतोको बतलाने लगे तो उसका अपमान है, क्योकि करतूतोंमे अश ही बतलावोगे, पर वह अशात्मक नही है।

आत्माकी जानकारीका मार्ग—जानकारियोंके द्वारा आत्माको जानना यह कठिन मार्ग है। और, अनुभूतिके द्वारा आत्माको जानना यह सरल मार्ग है। आत्माके बारेमे

व्याख्यान हुए, वर्णन हुए, पुस्तकें देखी, एक तो यह मार्ग है और एक यह मार्ग है कि कमसे कम इतना तो समझमे आये कि लो, जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके मोह मे, रागमे कुछ सार नही हैं, उनमे हित नही है। उनमे लगनेमे तो धोखा ही धोखा मिलना है। हम चाहते कुछ हैं और ये पदार्थ परिणमते अन्यरूप हैं इस कारण किसी भी पर पदार्थका हमे चिन्तन न करना चाहिए इनका ध्यान भी न करना चाहिए। इतनी भीतरमे बात समाई हो और इस ही सत्यका आग्रह करके बैठ जाय कि लो मैं बैठा हूँ, मुझे मेरा नाथ दर्शन देगा तो उसके दर्शनकी उत्सुकतामे यह मैं तैयारीके साथ बैठा हूँ कि किसी भी पर पदार्थको उपयोगमे न लाऊँगा। ऐसा ध्यानमे यदि आ गया तो पर पदार्थोंमे अपने उपयोगको तुरन्त हटा लेगा। वह समझ रहा है कि पर पदार्थोंसे मेरा कोई मतलब नही है। उनके सम्बन्धसे विकल्प ही मुझको मिलते हैं। विकल्पोंमे परेशानियाँ हैं, हैरानियाँ ही मिलती है। इसलिए मैं किसीका भी ध्यान न रखूँगा। ऐसी ही तैयारीसे कुछ क्षण बीतें, किसी भी पर पदार्थोंका विकल्प न करें, ऐसी स्थितिमे स्वय चूँकि जाननेवाले समस्त पर पदार्थोंके विकल्पोंका निषेध कर दिया सो केवल ज्ञान ही अनुभवमे आता है और उन ज्ञानानुभूतिके साथ अनन्त आकुलताएँ हटनेमे परम आनन्द होता है, परम आल्हाद होता है। जब वह जान जाता है कि यह मैं यो हूँ। उसे स्मरण रहता है कि मैं तो यह हूँ। मैं वह कैसा हु? किसी बाहरी जगह नेत्र गडाकर देखा जाय तो क्या मैं वह हूं? नही। मैं क्या हूँ? मैं एक भावात्मक तत्त्व हूँ। जो एक ज्ञान और आनन्दके रूपमे अनुभूत होता है। ऐसे स्वरूप मे ही द्योतमान यह मैं चेतना हूँ और अविनाशी हूँ। इसमे तरगें उठती हैं, तरगें मिटती हैं। तरगें उत्पाद व्ययके लिए रहती हैं। मगर यह चेतना आत्मस्वरूप है, आत्माके स्वभावसे अस्तित्वमे है। इसका कभी विनाश नही होता इसका उपाय नही हैं अनपायी है और यही एक भगवती है। जिसकी दृष्टि से सारी समृद्धियोंमे वृद्धि होती है। भगवतीके प्रसादमे सारे सकट दूर हो जाते हैं। इस आत्मानभूतिके नाम पर ही देवताओंके नाम देखिए।

विद्वानों की कल्पनायें—एक जमाना था कि विद्वानोका समूह था। वे तत्त्वका विवेचन अपनी-अपनी अलकारिक भाषामे करते थे किन्तु यथार्थता न जाननेके कारण वे अनजानो के देव बन गये, सो देवताओका रूप रख लिया।

लोकमान्य सरस्वतीका रूप—सरस्वतीका रूप देखो, कविने अलकारमे बनाया तालाबमे कमल है, कमलपर सरस्वती बैठी हुई होगी। उसके चार हाथ हैं, एक हाथमे शंख है, एकमे पुस्तक, एकमे माला, एकमे वीणा आदि-आदि तरहमे देवीका रूप बना दिया। अरे किस मानसरोवरमे कमलपर बैठी हुई सरस्वती मिलेगी! ऐसा कुछ नही है। वह सब एक विद्या तत्त्वका वर्णन करनेका अलकार था।

यथार्थ सरस्वतीका रूप — सरस्वती तालावमें क्यों बैठी हुई है कि विद्या का प्रसार तालावकी तरह है। सर प्रसारण यस्य सा सरस्वती। जिसका प्रसार है वह सरस्वती है। देखो, उस कैवल्य विद्याका भजन तीनकालके तीन लोकके द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक समयमें जान लेता है। कितना जान लेता है ? एक सिद्धने सर्व विश्व जाना ऐसे अनन्ते सिद्धोंने जाना और जानते हुए अनन्ते सिद्धोंको प्रत्येक सिद्धने जाना। इतना एक भगवानने जाना, इतना दूसरे भगवानने जाना, इतना ही तीसरे भगवानने जाना, भगवानने अनन्त भगवानोंको जाना, इस विद्याके प्रसारकी क्या सीमा है ? ऐसे ही विद्याका नाम, कैवल्यका नाम सरस्वती है। ज्ञानकी साधना करना यही सरस्वतीकी उपासना करना है। हंसकी तरह शुद्ध निर्मल चित्तवाला भक्त सरस्वती भक्त होता है, जो सरस्वतीकी उपासनामें बैठा रहे ऐसा हंस आत्मा सरस्वतीका सेवक है। हंसमें यह गुण है कि दूधको पानीसे अपनी चोंचके द्वारा अलग कर लेता है वैसे ही जिन ज्ञानीमें यह गुण है कि जो ये सारे पदार्थ एक क्षेत्रावगाहमें लकर हो रहे हैं उनमेंसे जिसने निजी गुणका तत्त्वका, अलग कर लिया ऐसा हंस आत्मा ही ज्ञानका उपासक है। और व्यवहारके लिए वे जो चार हाथ हैं वे हैं चार अनुयोग, और जो हाथोंमें चीज हैं वे हैं साधनके सकेत। सरोतसे लय तथा भक्ति भजनसे ज्ञानाराधनाके लिए उत्साह जगता है, ऐसे ज्ञानकी आराधना होती है। ज्ञानाध्ययनके के लिए पुस्तक लिए है, स्वाध्यायसे ज्ञानकी उपासना होती है। जाप ध्यानके प्रसादसे ज्ञान साधना होती है, जिसका प्रतीक है माला। प्रणवध्वनिसे कठिन मैल दूर होते हैं, जिसका प्रतीक शख है। इस अलकारको लोगोंने वाहरी रूपसे मान लिया कि यह है सरस्वती।

देवतादिके नाम —देवी देवताके नाम भी अनेक हैं। जैसे दुर्गा, चडी, मुण्डी, चद्रघण्टा आदि। ये सब क्या है? ये सब ज्ञानानुभूतिके नाम हैं। दुर्गा दुःखेन गम्यते या सा दुर्गा। जो बडी कठिनाईसे पायी जावे उसको दुर्गा कहते हैं। । जो चीज कठिनाई से पायी जावे और जिसके पानेसे सकट दूर हो जावे ऐसी चीज क्या है दुनियामें ? वह है आत्मानुभूति। वह आत्मानुभूति ही देवी दुर्गा है। चडी-चडयति भक्षयति रागादीन् इति चडी। जो रागादिको समाप्त करे सो चडी कहलाती है। चद्रघण्टा-अमृतस्रावणे चद्र घटयति प्रेरयति इति चद्रघण्टा, जो अमृतके वरसानेमें चद्रमासे भी ईर्ष्या कर सकती है ऐसी देवीका नाम चद्रघण्टा है। परम अमृत क्या है ? परम अमृत है ज्ञान। उस ज्ञानकी अनुभूति ही एक सबसे उच्च अमृत वहाने वाली चीज है। उस आत्मानुभूतिका ही नाम चद्रघण्टा है। कालीका रूप देखिये, काली-कलयति, भक्षयति विकारान् इति काली, जो रागादि शत्रुओंका विनाश करदे, उनका अस्तित्व ही न रहे, जो प्रचण्ड होवे उसे काली कहते हैं। जो रागादिकोका विनाश करदे ऐसी

कौन सी चीज है ? वह है आत्मानुभूति । जब यह आत्मानुभूति न हो तब पर पदार्थोका लक्ष्य करके अनेक प्रकारकी दीनताएँ आत्मामे उत्पन्न हो जाती हैं। सो उस देवताकी दृष्टिसे ही अपनी विजय होती है। वह चेतना भगवती है। और उपयोग क्या है कि उसका परिणमन। इस चेतना गुण व उपयोग पर्यायमे रचा हुआ जो मालूम पडे वह जीव है। गुण हुआ चेतन, पर्याय हुआ उपयोग।

अचेतन क्या ?—अचेतन है कौन ? जिसमे कि चेतनात्मकता नही है। चेतना उपयोगसे सहचरित होती है। कोई शक्ति पर्यायशून्य नही होती। कुछ भी परिणति मालूम पडे, कुछ भी भेद मालूम पडे, परिणमन जचे, तुरन्त उसका आधारभूत शक्ति मान लो। आत्मामे चेतना शक्ति है उसका जहाँ अभाव है, बाहर भीतर जहाँ अचेतनता मालूम पडे उसे कहते है अजीव। अर्थात् बाहरमे चेतनात्मक परिणति नही है, अन्तरमे चेतना शक्ति नही है।

परिणतिको कहते है बाहरी चीज और शक्तिको कहते है आन्तरिक चीज। क्योंकि परिणति तो उठती है निकलती है, जाती है, विलीन होती। परिणतिका नाम वहिस्तत्त्व भी है और गुणका नाम है अन्तस्तत्त्व। जो बाहर से अचेतन है, भीतर भी अचेतन है, ऐसा जो पदार्थ है वह अजीव कहलाता है। अपने को काम क्या है ? अजीवमे हटना और जीवमे लगना।

ज्ञायकस्वरूपके यात्रीकी मार्गमे कठिनाइयाँ—जीव शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है, नित्य अविनाशी है उस ज्ञायकस्वरूपकी कैसे पहिचान हो तो ज्ञायकस्वरूपका यात्री जब चलता है तो उसे रास्तेमे बहुत घाटियाँ मिलती है जिन घाटियोंको पार करना एक प्रबल ज्ञानसे हो पाता है। पहली घाटी तो यह है कि जो दिखनेवाले पदार्थ है, याने वैभव, सोना चाँदी आदि ये तो पहिली घाटियाँ है। इस घाटीको पार किया अर्थात् इस घाटीमे उपयोग न अटका तो उसके बाद परिवारकी घाटियाँ आती है। उसमे भी उपयोग अटक जाता है। इस शरीरकी घाटीको पार करके आगे बढने पर कीर्ति, प्रतिष्ठा आदिकी और भी घाटियाँ आती है। भीतरमे एक नही अनेक घाटियाँ होती हैं जो दिखती नही हैं पर अन्तरमे चोट देती रहती है इन सबसे आगे बढनेपर आगे क्या है वह ? भावकर्म मिलता है, भावकर्म मैं नही हूँ, इससे भी जुदा हूँ ऐसे भावकर्मसे आगे बढ कर चलें तब एक घाटी मिलती है अल्पविकास की।

आत्मीय विकास—अल्प विकास आत्माके गुणकी कला है, वह निमित्तके सद्भावसे नही होता है। निमित्तके अभावसे होता है। हमारे छुटपुट ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके उदयसे नही होते है किन्तु ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं। ये सब छुटपुट विकास भी घाटिया है, इनमे भी यह जीव अटक जाय तो आगेकी यात्रा

खतम है। उनसे गुजरे तो आगे घाटियाँ मिलती है पूर्ण विकाशकी दृष्टि, जैसे कि वह केवलज्ञानरूपमें हुआ, अनन्त ज्ञान दर्शनादि रूपमें हुआ, जैसे भगवानको जानते हो कि वह अनन्त ज्ञानी है, अनन्त द्रष्टा है, इन रूपमें अपने ज्ञायक स्वरूपकी पहिचान में लगे तो यह भी घाटीमें अटकना है क्योंकि इस दृष्टिके रहते भी विकल्पोंसे छुटकारा नहीं। इससे भी आगे गुजरो तो कहीं मिलता है शुद्ध आत्मतत्त्व। अलग यह बतानेकी चीज नहीं, न किसी अशक्तिकी चीज है किन्तु वह अनन्य ज्ञायक स्वरूप आत्मतत्त्व जो है सोई है। आत्मानुभूतिके समय शरीरका भान नहीं, विकल्प है नहीं, चर्चा है नहीं, बुद्धिगति वहाँ कुछ है नहीं, वहां तो एक विलक्षण आनन्द का अनुभव है और वह आनन्द उस अनुभवके चेतनेको साथ लिए हुए है। ऐसी स्थिति उस आत्मानुभूतिमें होती है। उस अनुभवके द्वारा आत्माको पहिचान लेना सुगम होता है और सत्य होता है। आत्मानुभवसे जो आत्मामें ज्ञान होता है वह पूर्ण स्पष्ट होता है। ऐसा जो आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है वह पक्का होता है, जैसे बाहुवलि स्वामीकी कोई चर्चा करे तो सामान्यतया ज्ञान तो हो गया किन्तु जो साक्षात् दर्शन करे उसके ही स्पष्ट ज्ञान है। वह साक्षात् ज्ञान इस चर्चामें नहीं है। इसलिए आत्माके जाननेके उपायमें मात्र ज्ञानका संचय न करो किन्तु ध्यानमें भी वृत्ति लावो तो आत्मा अपने इस उपयोगमें उपयोगका विषय हो सकता है।

इस प्रकार जीव और अजीव ऐसे दो भेदोंका वर्णन करके अब दूसरे प्रकार से द्रव्यके भेद कहते हैं।

पुग्गलजीवणिवद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो।
वट्टदि आयासे जो लोगो सो सव्वकाले दु॥ १२८ ॥

लोक अलोक विशेषका निश्चय—अब लोक और अलोक इस प्रकार के विशेष का निश्चय करना है। द्रव्यके लोकपना और अलोकपना ऐसी विशिष्टता है, क्योंकि अपने अपने लक्षणका स्वभाव पाया जाता है। चाहे आकाशका भेद लोकाकाश व अलोकाकाश कहलो, चाहे द्रव्यका भेद लोकपना, अलोकपना कहलो, प्रायः वात एक है, किन्तु नई पद्धतिका वर्णन है। जिसे साधारणतया ऐसा कह देते हैं कि आकाश के दो भेद है, लोकाकाश व अलोकाकाश उसे अब इस तरहसे देखिए कि द्रव्य तो सामान्य है, वह तो सामान्य वर्णन है पर द्रव्यके लोकता भी है और अलोकता भी है। जैसे कि समस्त द्रव्य हैं और समस्त द्रव्योंमेंसे भेद छाँटो तो यह निकला कि जीव है और अजीव है। उन समस्त द्रव्योंमेंसे इस तरहका भेद छाँटते हैं कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्व विशिष्ट ऐसे दो भेद हैं। इसमें क्षेत्रदृष्टि आये कि यह तो लोकत्वविशिष्ट द्रव्य है जहाँ कि छह द्रव्योंका समूह है, वह साराका सारा लोकत्वविशिष्ट है। जहाँ

अलोकता है वह अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य है। यह इस तरह से देखना है कि यहाँ द्रव्य की व्यक्तियाँ नही बता रहे है, द्रव्यके व्यक्तिगत भेद नहीं बता रहे हैं। द्रव्य तो मान लो एक चीज है। जैसे ब्रह्मको मान लो एक, जिसे सामान्य तत्त्व मानो, इस तरह की मान्यता लेकर चलो कि यह सारा जगत एकरूप है। वह किस रूप है? द्रव्य स्वरूप है, सत् स्वरूप है। कौन ऐसा है जो द्रव्य नहीं है? कौन ऐसा है जो सत् नहीं है? एकरूप है सत् स्वरूप है, जो द्रव्य स्वरूप है अब उन एक द्रव्यका इस तरहसे भेद कर रहे हैं कि द्रव्यके दो भेद है। लोकत्वविशिष्ट द्रव्य और अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य।

लोकत्वअलोकत्वविशिष्ट द्रव्य—आकाश द्रव्यपर प्रधान दृष्टि देकर यहें तो आकाशके भेद २ है—(१) लोकाकाश और (२) अलोकाकाश। यहाँ अद्वैत पद्धतिकी दृष्टि करके चल रहे है कि जगतके समस्त पदार्थ एक है जिसे द्रव्य नामसे कहा है। केवल एक अद्वैतकी शैलीसे इनको समझना चाहिए सर्वम् एकम्, सब कुछ एक है। वह क्या है जो सर्वव्यापक है? ऐसा वह सब कुछ एक है, फिर उसका यह भेदीकरण है कि कोई जीव है, कोई पुद्गल है, कोई धर्म है, कोई अधर्म है आदि। फर्क इतना आता है उस अद्वैत कथनमे और यहाँ कि वहाँ तो यह मानकर चलें कि सब एक है और उसकी ये तरगें है, और यहाँ भी यह मान कर-चलेंगे कि ये सब एक है मगर यह प्रदेशवान एक नही है। सर्वसाधारणवृत्तिशील द्रव्यत्व स्वरूपत. एक है और फिर वही जो कि द्रव्यरूपसे माना गया तत्त्व है उसके बारेमे फिर भेद कल्पनाएँ हो, यह उस एक द्रव्यकी तरग है। यह तरग द्रव्यत्वमे नही, यहाँ उपयोग ही तरग है। ऐसी दृष्टि लगाकर द्रव्यके भेद कर रहे हैं कि द्रव्य दो प्रकारके होते हैं, एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट। आकाशकी बात नहीं कह रहे हैं कि एकदम कही आकाश टूट कर दो हो गया हो। द्रव्यके भेद किये जारहे हैं कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्वविशिष्ट। यहाँ द्रव्योंकी समवायात्मकताको लेकर जो पिण्ड आदि हो उसे लोकत्वविशिष्ट द्रव्य कहते है और केवल आकाशात्मकताको कहते है अलोकत्व-विशिष्ट सूरिजी का यह नही कहना है कि जहाँ आकाशमे ६ द्रव्य रहे उसे लोक और जहाँ न रहे उसे अलोक कहते हैं। क्योकि, ऐसी दृष्टि बननेमे ही यह बुद्धि न आयगी कि एक मानें और एक मानकर उसकी तरग निकालें, उसका अवयव बनावें, ऐसी बुद्धि नहीं आती है, इस कारण भी यो कहा कि लोक क्या है?

लोक क्या?—६ द्रव्योमे जो समवायात्मकता है वह लोक है। यहाँ लोकत्व-विशिष्ट द्रव्यत्वके अवगममे ६ द्रव्योंको अलग नही करना चाहिए, इसलिए सीधा उस मर्मका सकेत कर सकें इस तरहका वर्णन भी किया गया है कि जितने आकाशमे ६ द्रव्य पाये जायें उसे लोकाकाश कहते है। हम जिस द्रव्यके भेद करें उसके ही भेदोकी सन्मुखता रहनी चाहिए। ६ द्रव्योंको जो समवायात्मकता है वह है लोक अर्थात् उस

पूरे समुदायको कहा है लोक। जैसे कहते हैं नगर। और अगर यह कहे कि ऐसी जगह, जिसमे ऐसे मकान बने होते है, ऐसे लोग रहते हैं, और और भी वर्णन करते चलें तो वह नगरका सीधा प्रदर्शन नही है। नगरको सीधा कहे कि यह नगर है, यह जगत है बस हो गया, ऐसी दृष्टिमे कहना चाहिए इस प्रकार ये हुए लोक और अलोक। ६ द्रव्योंकी समवायात्मकता जिसके है वह लोक है। जिसमे है ऐसा नही, जैसे कि आकाश मे ६ द्रव्य हैं। किन्तु भैया! जहाँ ६ द्रव्योकी समवायात्मकता है, वह है लोक और जहाँ समवायात्मकता नही है वह है अलोक। अब इसका ही वर्णन करते है कि समस्त द्रव्योमे व्यापनेवाला जो परम समस्त आकाश है उस आकाशमे जितनी परिणतिमे जीव पुद्गल जो कि गमन करनेकी और ठहरनेकी प्रकृति रखने हैं वे जीव और पुद्गल जितने आकाशमे गति और स्थितिको किया करते है, और वे जहाँ हैं, वहाँ धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य भी आ जाते हैं। धर्म द्रव्य कैसा है जो जीवके पुद्गलोंके गमनमे निमित्तभूत है, ऐसा धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य जो जीव पुद्गलकी स्थितिमे निमित होता है और सब द्रव्योंके-परिणमनका निमित्तभूत काल जिसमें नित्य दुर्ललित है इतने आकाशको तथा इन सब द्रव्योको जिन्होने आत्मरूपसे कर लिया है, यह जिसका स्वलक्षण है, उसको लोक कहते है। लोक कहनेमे सब द्रव्योका समूह नजर आना चाहिए। ऐसा न नजर आना चाहिए कि यह तो इतना आकाश है, जिसमे जीव रहता है, जिसमे पुद्गल रहता है आदि। क्या जीव आकाशमे है? पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, क्या आकाशमे है? ये पुद्गलादि आकाशको छोडकर अन्यत्र रहते हो और फिर उन्हे उठाकर आकाश मे धर दिया हो तो कहे कि पुद्गलादि आकाशमे हैं। यह जिस दृष्टिमे वर्णन चल रहा है वह विलक्षण दृष्टि है। एकको महान् बता दें, आधार बतादें तथा ५ द्रव्योको आधेय बतादे तो ऐसी अनुधारणा यहाँ नही है। इसमें मर्मकी बात है स्वतन्त्रता। क्या? कि ६ द्रव्योका जितना मात्र समुदाय है वह लोक है। हम अरेन्जमेन्ट नही कराते हैं कि ये जितनेमे रहें, उतनेको लोक कहते हैं, ऐसा प्रबन्ध नही करवाना है। वह समस्त द्रव्य है, और वह द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्टद्रव्य और (२) अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य। देखो द्रव्य तो एक रहा और वह द्रव्यत्व व्यक्तिरूपसे नही किन्तु जातिरूपसे। जो ब्रह्म मानते हैं, ज्ञानाद्वैत मानते है वे भी तो जाति रूपसे अथवा व्यक्तिरूप उपयोग प्रतिभासके आधारसे उपयोग बनाकर कहे तो उनकी कोईसी मान्यता गलत नही है। एकान्त बनानेसे अद्वैतकी मान्यता गलत हो जाती है। जैसे ब्रह्म एक है। क्या गलत है? पर वह ब्रह्म कोई अलगसे चीज है और फिर यह उसकी पर्याय है, इस तरहसे दृष्टि बनाना तो गलत है।

ब्रह्म—ब्रह्म प्रदेशात्मक नही। अच्छा, मनुष्य प्रदेश मक है क्या? मनुष्यत्व

कोई चीज है क्या ? अगर कोई चीज है तो हमे आँखो दिखादो। हमे पकडा दो। आप यदि एक मनुष्यको पकडा दें कि लो यह मनुष्य तो एक चीज है तो वह मनुष्य तो आ गया हमारे कब्जेमे। अब तो ये सब दृश्यमान जन मनुष्य नही रहे, गैर मनुष्य हैं। क्या ऐसी बात है ? मनुष्यत्वको व्यक्तिरूपमे नही देखना, किन्तु जातिरूपमे देखना है। वह जाति एक सत्तावाली हो और सबमे फंसी हो ऐसा नही है, वह एक व्यापक है, बाहर नहीं है। किन्तु जिसका जो निर्णय किया जारहा है, कि मनुष्य सर्व-व्यापक है, अगर जातिकी दृष्टि रखकर करें तो सही बन जाता है और अगर व्यक्तिकी दृष्टि करके करें तो गलत हो जाता है। इसी तरह ब्रह्मका वर्णन यदि जातिकी दृष्टि करके करें तो जैन सिद्धान्तके बिल्कुल अनुकूल है। पर यदि व्यक्तिकी दृष्टि रखकर वर्णन किया जावे जैसे कि तुम्हारा पिता है तुम्हारा पुत्र है इसी तरह दुनियामे एक कोई ब्रह्म हैं ऐसा व्यक्ति बने और उनकी फिर यह तरग है यो माया बतावें तो यह वस्तुस्वरूप नही बनता। जानिमे कुछ विरोधकी बात न थी। इस तरह सब कुछ जगतमे एक है, वह क्या ? द्रव्य। अब उस द्रव्यके जातिकी अपेक्षा ही लगाकर देखो, फिर जातिकी दृष्टि से देखो। भेद जब करते हो तो जिसके प्रभेद किए, उन्मुखता मे उस भेदके साथ रहना चाहिए।

मूल भेद— द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्ट और (२) अलोकत्व-विशिष्ट। तो लोक किसे कहते हैं कि जिसमे जीव और पुद्गल जो कि चलने ठहरने वाले हैं, वे जहाँ रहे, वे जितनेमे गमन कर सकें, जितनेमे ठहर सकें उसे कहते लोक। लोक किसे कहते हैं ? जितने मे धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य एक पूर्ण व्यापकर ठहरे है वह है लोकाकाश। धर्मद्रव्य अनादिसे है, आकाश भी अनादि से ही है, द्रव्य भी ये सब अपने क्षेत्रमे हैं, आकाश भी अपने क्षेत्रमे हैं, इस कारण उनमे आधार आधेय नही बताया। परमार्थदृष्टिसे स्वरूप ही आधार है और स्वरूप ही आधेय है। इस तरह बाकी समस्त द्रव्य जितने हैं उनका समवाय ही जिसका लक्षण है वह लोक है और जितनेमे जीव और पुद्गलकी गति नही है, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अवस्थित नही है, केवल आकाश ही जिसका स्वलक्षण हो उसे अलोक कहते हैं। इन सब विशेषणोमे जीव पुद्गलको तो गति और स्थिति करनेवाला बताया सो ठीक भी है। और अब धर्म और अधर्मका व्यापक रहना (अवस्थित) बताया सो ठीक है, और कालको बताया कि जिसमे काल दुर्ललित है, इसमे कालका स्वरूप कैसा है सो कल्पना करो कि कोई भयानक सर्प या कुछ भी हो, दुनियामे, या आसपासके लोगोमे खलबली मचा देता हो उसे कहते हैं दुर्ललित। इसी तरह काल द्रव्य ऐसा द्रव्य है कि जिसका निमित्त पाकर ६ द्रव्य निरन्तर प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं, तरेड बरेड हो जाते हैं, एक क्षण भी कोई वस्तु विश्राम चाहे तो नही ले सकता है। कोई वस्तु प्रार्थना करे

कि मैं अनन्तकालसे प्रतिक्षण परिणमता चला आया हुआ थक गया, एक समय तो मुझे विश्राममें रहने दो रे काल ! तू क्यों परेशान करता है ? क्यों दुश्मन बनता है, सो जैसे जीभोंमें सापकी जीभ अतिचचल है, लपलपाती हुई है उसी तरह कालका भी चचल दृष्टिका वर्णन है कि एक क्षण भी जीव या अन्य कुछ बिना परिणमे नहीं रह सकता। मोटी दृष्टिमें भले ही ऐसा हो कि यह चौकी है जैसी कल देखी थी वैसी ही आज है, कुछ भी तो फर्क नहीं है, पर ऐसा नहीं है। फर्क प्रतिसमय होता जाता है।

क्षण क्षण वृद्धि :—एक बालक ८ वर्षमें मानों कि ४ फिट ऊँचा है और एक वर्षमें वह २ इन्च बढ जाता है तो क्या सालके ११ महीने, २६ दिन, २३ घटा, ५६ मिनट तक कुछ नहीं बढा, और एकदम ६० वें मिनटमें वह दो इच बढ गया ? क्या ऐसा होता नहीं है ? क्या ऐसा होता है कि एक महीने तक कुछ न बढे और उसके बादमें करीब पाव इन्च बढ जाय ? ऐसा भी नहीं है। क्या ऐसा भी होता है कि वह एक घटेमें बढ जाता है ? ऐसा भी नहीं है। क्या वह एक घटाके ५६ वें मिनट तक नहीं बढता है और ६० वें मिनटमें बढ जाता है ? ऐसी बात भी नहीं हैं। प्रत्येक समय उसमें वृद्धि हो रही है। अगर प्रत्येक समयमें वृद्धि न होती तो साल भरमें भी वह बढ न पाता। दृश्यमान परिवर्तन सूक्ष्मपरिवर्तनके द्योतक हैं।

दृष्टान्त :—जैसे एक चौकी है, यह ४-५ वर्ष पहिले बनी होगी, आज यह पुरानी नजर आरही है। ऐसी जीर्ण और भद्दे रग वाली यह चौकी पुरानी नजर आरही है। तो क्या कल ही यह चौकी ऐसी होगई ? अरे जिस दिन बन चुकी थी उस दिनसे पुरानी बनती चली आरही है। और वहाँ धीरे-धीरे इतना परिवर्तन हो गया कि जो अब पुरानी दीखती है। जब यह पुरानी दीखती है तब हम समझ लेते हैं कि यह पुरानी हो गयी। पदार्थ तो समय समय अपनी नवीन नवीन परिणति करते चले जाते हैं। हम जिस ज्ञानोपयोगके द्वारा कुछ जानते हैं वह ज्ञानोपयोग हमारे अन्तमुहूर्तमें बनता है तब हम ऐसा समझ पाते हैं। एक समयके उपयोगसे हम पदार्थोंको नहीं जान सकते, क्योंकि मलिनतामें निरपेक्षवृत्ति नहीं होती।

छद्मस्थ अवस्थाकी बात कह रहे हैं। अरहत सिद्ध एक समयकी परिणतिमें समस्त विश्वको जानता है पर हम एक समयकी उपयोग वृत्तिसे पर पदार्थोंको नहीं सकते। यही छद्मस्थता कहलाती है। अन्तमुहूर्तवृत्ति परम्परा हो तब इस वृत्तिको जान सकते हैं। ऐसा जानते हुए भी क्या अन्तर्मुहूर्तके अन्दर समय समयपर नई नई वृत्तियाँ नहीं होती। होती हैं, हो, प्रत्येक समय हो, भिन्न भिन्न हो किन्तु अन्तमुहूर्तकी परिणतिसततिके बिना छद्मस्थ आत्मा पदार्थको जान नहीं सकता। देखो, दीपकमें तेल जलता है, तेलकी एक एक बूँद जली, वह बूँद क्या अनेकों नन्हीं नन्हीं

बूँदोका समूह नही है ? वह चिराग जिससे प्रकाश कर सकता है, वह प्रकाश जिसमे होता है उस तेलके एक बूँदमे क्या असख्यात तेलकी बूँदे नही है ? वह असख्यात बूँदोका समूह है जिनको हम हाथोंसे अलग नही कर सकते । पर उस दीपकके जलने का जो काम होता है वह उन नन्ही नन्ही बूँदोमे से एकका काम नही है, किन्तु उन नन्ही नन्ही बूँदोसे उत्पन्न परम्पराका काम है कि वह प्रकाश होना, ऐसा होने परभी नन्ही नन्ही बूँदें क्रमश परिणमनमे, प्रकाशमे है मगर प्रकाशवृत्ति जिसमे कि उजेलेकी बात बनी है वह अनेक बूँदोका पुज है । इसी तरह छद्मस्थ अवस्थामे इतनी जो वृत्ति चलती है वह चलती है वह चलती तो प्रति समय है पर उसका जानना, समझना रूप जो अर्थक्रिया है वह अनेक समयके उपयोगकी परम्परामे फैला है ।

हाँ, तो एक काल द्रव्य कितना काम करता है इस बातको तो देखो कि एक प्रदेशमे रहने वाला जो अनन्त परमाणुसमूह बैठा है उस सबके सबको, इतने समूचे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, और इतना समस्त आकाश और जीव जो जहाँ है उन सबको निरन्तर परिणमाते रहनेमे निमित्त है ।

भैया, अब आगे देखो कि धर्म द्रव्य तो ३४३ घन राजू प्रमाण है । धर्म द्रव्य एक अगुल मात्र स्थानमे निमित्त भूत काल द्रव्योका निमित्त पाकर याने एक प्रदेशपर स्थित काल द्रव्यका निमित्त पाकर परिणम जाता कि नही ? परिणम जाता। मगर सभी जगह काल द्रव्य है, और सभी जगह धर्म द्रव्य है । तो वे सब निमित्त बने रहते हैं । यह तो ज्ञान दृष्टिसे भी कहरहे है कि काल नही होता तो कुछ नही परिणमता पर जैसी जो अवस्थित बात है, युक्तिमे आती है, समझमे आती है । अमुक चीज अमुकका निमित्त पाकर परिणम गयी । झरोखेमे चौकीपर प्रकाश आता है तो सूर्यका निमित्त पाकर यह चौकी प्रकाशरूप परिणम गई । झरोखा बद कर देनेमे सूर्यका निमित्त नही पाया सो प्रकाशमयताकी निवृत्ति हो गयी । यह तो साधारण बात कहरहे है, युक्तिमे आती है, किन्तु ऐसी परिणति होनेमे निमित्तकी कलासे, निमित्तके असरसे, निमित्तकी शक्तिसे उपादान नही परिणमता, पर यह उपादान स्वय इस काबिल है कि अमुकके परिणामको निमित्त पाकर यह स्वय अपने कामको अपनी योग्यतासे अपना असर प्रकट कर लेता है । ऐसा निमित्तनैमित्तिक सबध सब पदार्थोंमे होता है, पर पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमते हैं उसमे द्रव्यका नाम उपादान है । काल-द्रव्यकी पर्याय है समय । काल द्रव्यकी पर्याय निमित्त है । द्रव्य कभी भी निमित्त नही होता है । पर्याय ही पर्यायका निमित्त होता है । अब आगे कुछ गाथावोके बाद काल द्रव्यका वर्णन आने वाला है ।

काल द्रव्य क्यो असख्यात प्रदेशवाला नही और क्यो एक प्रदेश वाला है ? यह

क्यों निमित्तभूत है? स्वय आगे कहेंगे। कालके सम्बन्धमे जिज्ञासा होती है कि वह क्या एक प्रदेशवाला काल द्रव्य है ? काल तो समयका नाम है। इसी कारणसे श्वेताम्बर भाइयोंने काल द्रव्य नही माना है। और, दिगम्बर सिद्धान्तमे काल द्रव्यको अस्तिकाय नही कहा है, पर द्रव्य माना है। काल द्रव्य वास्तविक द्रव्य है यह आगे कहेंगे। यहाँ तो द्रव्यके दो भेद बता दिए कि एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट। यह द्रव्यके भेद बतानेकी एक विधि है। द्रव्य ६ प्रकारके है, यही सीधी पद्धति है। एक व्यक्तिके रूपमे द्रव्य एक चीज मानो तो उसका अवयव कैसे बन जायगा यह बात यहाँ विशिष्ट पद्धतिमे चल रही है।

द्रव्योंमे क्रिया और भावका निश्चय—अब द्रव्योमे क्रियावत्त्व और भाववत्त्व दोनो ही विशेषताओंका निश्चय करना है। याने कोई द्रव्य जब कि क्रियावान और भाववान भी है तब कोई द्रव्य केवल भाववान ही है, क्रियावान नही है, ऐसी विशेषताका यहाँ निश्चय करते हैं।

उप्पादट्ठिदिभगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स।
परिणामा जायते सघादादो व भेदादो॥ १२६॥

पुद्गलजीवात्मक लोकमे उत्पाद, स्थिति और व्यय—पुद्गलजीवात्मक, लोकके उत्पाद स्थिति और भग होते हैं,ये सब परिणामोके कारण व भेद तथा सघात के कारण होते है। आचार्य देवने यहाँ अपनी उस एकत्वपद्धतिको न छोडकर अद्वैतसे द्वैतके निकालनेकी शैलीका मार्गदर्शन दिया है। धन्य है उन आचार्यश्रीके ज्ञानकी महिमाको। वे कहते हैं कि पुद्गलजीवात्मक इस लोकका उत्पाद, स्थिति और भग होता है आचार्य श्रीने सीधा यों न कहकर कि पुद्गलमे उत्पाद, स्थिति व व्यय है- और जीवमे उत्पाद, स्थिति व व्यय है, यो कहा द्रव्योमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी-मुख्यता देकर कि पुद्गल जीवात्मक लोकमे- उत्पाद स्थिति और व्यय होता है। ये विशेषताए द्रव्यमे इस कारणसे हुई कि कोई द्रव्य तो क्रियावान और भाववान दोनो ही है। और कोई द्रव्य केवल भाववान है।

क्रियावान और भाववानका अर्थ—क्रियाका अर्थ एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना या उसमे कोई हलन चलन होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे आना है। ये सभी क्रियाए परिस्पद क्रियायें कहलाती है। और, भावका अर्थ यह है कि द्रव्यमे रच भी परिस्पद हुए बिना और गति भी हुए बिना परिणमन पाया जाना। भवन भाव परिणमनका नाम भाव है। दोनोंके अर्थमे मात्र अन्तर यह है कि क्रियाके परिणमन गतिपूर्वक हैं जब कि भावमे परिणमन गतिपूर्वक नही है।तो अन्ततो गत्वा परिणमन समस्त द्रव्योमे है। परिणमन द्रव्योके द्रव्यत्व गुणके कारण है।

भाववतीशक्तिसम्पन्न द्रव्य—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल इन समस्त द्रव्योंमे परिणमन पाया जाता है जो इनकी भाववती शक्तिका द्योतक है।

क्रियावतीशक्तिरहित द्रव्य और उनकी स्थिति—क्रियावती शक्ति सम्पन्न द्रव्योमे से जीव और पुद्गलमे है। धर्म द्रव्य लोकाकाशमे अवस्थित है। उसके व्यापने का अन्त लोकाकाशमे है। वहाँ क्षेत्रमे क्षेत्रान्तर नही होता। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य धर्म द्रव्यके समान लोकाकाशमे व्यापक और अवस्थित है। उसमे परिस्पंद रच भी नहीं होता है। आकाश द्रव्य तो महाव्यापक क्षेत्र है ही। वह भी तो निष्क्रिय है। धर्म द्रव्यके व्यापनेका अन्त है पर आकाशका अन्त कही नही है। कही कल्पना करके देखो कि इस लोकमे आगे क्या है? क्या कुछ कल्पनामे बात आती है? क्या इस लोक के आगे पहाड़ियाँ हैं, पानी है, मकान है? अरे इस लोकके आगे कुछ भी हो, पहाड़िया हो, मकान हों, तालाब हो पर उसके आगे भी तो कुछ होगा। क्या वहाँ से अत है? उसके आगे फिर पोल नही होगा क्या? होगा। अत आकाशके बारेमे सीमा की कल्पना नही हो सकती। आकाश भी व्यापक है। उसमे क्रियाकी कोई गुंजाइश ही नही है। रहा काल द्रव्य। वह यद्यपि एकप्रदेशी ही है और लोकाकाशके एक एक द्रव्यमे अवस्थित है पर जो जिस क्षेत्रावगाहमे अवस्थित है वह वहो अवस्थित है, उसके आगे हेर फेर नही है, परिस्पद नहीं है, क्रिया नही है। केवल जीव और पुद्गल दो ही पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमे क्रिया होती है।

पुद्गल और जीव द्रव्योंमे क्रियाकी सिद्धि—पुद्गलमे और जीवमे क्रिया क्यो होती है? पुद्गल और जीवकी क्रिया अनैमित्तिक नही है। एक स्वभावसे वह चलता ही रहता हो ऐसी बात क्रियाके बारेमे नही है, क्योंकि यदि ऐसा ही स्वभाव है तो उन्हे निरन्तर चलते ही रहना चाहिए। तब उनकी स्थिति हो ही नही सकती है और फिर अधर्म द्रव्य बेकार हैं, उसका कभी उपयोग ही नही होगा, तो यह जो क्रियाशील होता है उसका कारण है भेद और सघात। पुद्गल द्रव्य है, यदि थोडा भी चला, हटा, परिस्पद हुआ तो समझो कि वहाँ या तो भेद होता है या सघात होता हैं। इसी प्रकार जीव भी अगर चला तो समझो कि वहाँ भेद होता है या सघात होता है। क्रिया होनेका कारण भेद और सघात है। सोई जीवके लिए है, सोई पुद्गलके लिए है। पुद्गल और जीव ये दो पदार्थ भाववान हैं और क्रियावान हैं। क्योंकि, ये दोनो पदार्थ परिणामसे और भेद संघातसे उत्पन्न होते है, ठहरते हैं, भाववान होते हैं। इनमे परिणामकी बात स्पष्ट सिद्ध होती है।

द्रव्योंमे परिणमनका और भेदसघातका कारण—आओ! अब हम विचार करें कि इनमे परिणाम क्यो पाया जाता है? ये ५ साधारण गुण हैं इसी कारण इनमे

परिणाम पाया जाता है, जीव पुद्गलमे भी परिणाम पाये जाते हैं और परिणामोंके कारण ही उनमे उत्पाद व्यय होरहा है। तव यह निर्णय करें कि भेदसघात पुद्गलमे कैसे होता है और जीवमे कैसे होता है ? इस वातका निर्णय भी इस ही गाथामे आगे चलकर किया गया है। दो पदार्थ तो क्रियावान भी है और भाववान भी हैं। किन्तु धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये भाववान ही हैं, क्योकि परिणाममे ही उनका उत्पाद व्यय और ध्रौव्य है, भेदसघातमे नही है।

क्रियारूप और भावरूप परिणमन—पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। इनमेसे जीव और पुद्गल ये दो जातिके द्रव्य ऐसे हैं जो कि हलन चलन भी करते है और अपनेमे भाव भी करते हैं। पुद्गलमे भावपरिणमन रूप, रस, गध, स्पर्शका वदलना है। क्रियापरिणमन उस क्षेत्रमे हटकर दूसरी जगह पहुँचना या वहाँ ही पडा हुआ हिलना है तथा इस प्रकारकी पुद्गलक्रिया हुए विना क्रियापरिणमन हटे विना चले विना जो परिणमन होता है वह भाव परिणमन है, चलनेमे भी भाव होता है पर चलनेके कारण भाव नहीं होता है। जो चले विना परिणमे वह तो है भाव परिणमन, व परिस्पदरूप जो परिणमन है वह है क्रियापरिणमन। परिणमनमात्र हो गया इसको भावपरिणमन कहते हैं। जैसे पुद्गलमे रूपका वदलना। वही का वही पदार्थ है पर उसमे रूप वदल गया।

भावपरिणमनका दृष्टान्त—जैसे आम है, उसी जगहपर है, वहीका वही लटकता हुआ है, आम सबमे पहिले होता है काला, इसके वादमे नीला बनता है, इसकेवाद मे होता है हरा फिर पीला और फिर वादमे कुछ होजाता है लाल, ऐसा उस आममे रग वदलता है। सबमे पहिली वारमे कुछ काला आम होता है, फिर वदलते वदलते हरा पीला, लाल होजाता है। देखो आम जो एक पुद्गल द्रव्य है वह वही का वही है परन्तु रूप वदल रहा है, रसादि वदल रहा है, यही वदला हुआ भाव परिणमन है। पर टूट गया गिर गया, पालमे रख दिया गया, वाजार चला गया, यह जो कुछ हुआ वह क्रिया परिणमन हुआ। परिणमनको भाव और परिस्पदको क्रिया कहते हैं। अत भाववान तो सभी द्रव्य है, क्योकि उनका परिणमनेका स्वभाव है।

स्वरूपास्तित्वकी अज्ञानताजन्य मान्यताएँ—देखो भैया, द्रव्योकी स्वतन्त्र त्रैकालिक शक्तियोके न जाननेके कारण कर्तृत्ववाद पनप रहा है, और कर्तृत्ववादका मोटा रूप यह है कि ईश्वरने सबको वनाया है पर यह वात चित्तमे नही समाती कि पदार्थ स्वय है और परिणमनेका वे स्वतन्त्र स्वभाव रखते हैं, सो परिणमते ही रहते हैं उसके अटकनेका स्वभाव नही हैं। ऐसा न जाननेके कारण कर्तृत्ववादकी मान्यता। यह हो गई है कि ईश्वर समस्त ससारको वनाता है। यह तो कर्तृत्ववादवालो की वात हुई, किन्तु कोई लोग जो ईश्वरका कर्तृत्व नही मानते है पर उनकी यह मान्यता

कि मैंने यह घर वनाया, दूकान वनाई, अमुक वनाया, क्या कर्तृत्ववादका यह विकल्प नही हैं। यह भी तो कर्तृत्ववाद ही है। ईश्वरके स्वरूपसे अनभिज्ञ पुरुष ईश्वरको विडम्बनाका कर्ता कहते हैं।

पर्यायमुग्धोकी कर्तृत्वजन्य मान्यताएँ—पर्यायमुग्ध जन अपने आपपर इतना ही कर्तृत्व नही लादते और आगे वढकर अन्य पदार्थोंमे भी ऐसा देखते हैं कि इस पदार्थको देखो मैंने यूँ कर दिया, उस पदार्थको यूँ कर दिया। वे पदार्थोंको प्रेरणात्मक देखते हैं कि जैसे जव कोई किसीका हाथ खीचकर कहता हैं कि मैंने इसे इसप्रकार कर दिया, अर्थात् अपने आपको किसी भी पर द्रव्यमे कुछ कर देनेवाला मानता है। जैसे मास्टर साहवने लडकेको शिक्षित वना दिया, लडकेको ज्ञानी वना दिया और जिस जगह चेतनताका नाता नही है ऐसी जगहमे भी कर्तृत्व मानता है। देखो ना, आगने ही तो पानीको गरम कर दिया, सूर्यने ही तो वस्तुओंको प्रकाशित कर दिया।

पदार्थोंकी स्वतन्त्र शक्तिकी अस्वीकृति—यह नही ख्याल है कि चटाई चौकी आदिमे प्रकाश है। क्या इनमे प्रकाशपना रच भी नही है? फर्क यह है कि वह स्वय प्रकाश रखनेवाला पदार्थ है। और चौकी चटाई इत्यादि उस सूर्यका निमित्त पाकर चमक उत्पन्न कर लेते हैं। अव यह निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध विना युक्तिके है नहीं, तो भैया! कही कोई ऐसा कर वैठे कि आज तो उसने सिगडी पर रोटी वनाई और कल पानीमे रोटी वना ले। ऐसा तो कोई नही करते हैं।

वस्तुमे अस्तित्वकी भावाभाव दृष्टि—निमित्तनैमित्तिक सम्वन्ध तो व्यवस्थित है वस्तुका सत्त्व कितना है? इस ओर दृष्टि करके देखें तो वहाँ यह मालूम पडता है कि यह पानी भी एक पुद्गल है और यह आग भी एक पुद्गल है यह एकेन्द्रिय जीव हैं इस की चर्चा नही। प्रकरण दूसरा है। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म होगया, इसमें एकेन्द्रियका निमित्तनैमित्तिक सम्वन्ध नही हैं, इस नाते यह कार्य नही, वहाँ तो जो पुद्गल स्कध है उसका नाता चल रहा है। अव जैसे आग गर्म है तो इतनी वात हैं कि आग स्वय अपने गर्म स्वरूपको लिए है पर पानी गर्म स्वरूपको लिए नही है। शीत, उष्ण, स्पर्श इस पानीमे भी होता है। सो यह पानी अग्निका सम्वन्ध पाकर शीतपर्यायको छोडकर गर्म पर्यायमे आ जाता है। निमित्त है, उपादान है, सव है परन्तु वस्तु कोई कितना है, जल कितना है, अग्नि कितनी है? यह भी तो देखो। जल जितना है, क्या वह अपने प्रदेशसे वाहर भी दौडता है? आग जितनी है क्या वह अपने प्रदेशसे आगे भी दौडती है? आग यदि दो हाथ आगे जल रही है और ठडके दिनोमे ताप रहे हैं तो गर्मी आयी और ठड मिटी। यह गर्मी भी उससे निकलकर नही आयी, किन्तु आगकी सन्निद्धि पाकर जो सूक्ष्म स्कध है वह गर्म अवस्थाको प्राप्त हुआ। इसी तरह गर्म स्कधका निमित्त पाकर अन्य स्कध गर्म अवस्थाओंको प्राप्त होकर वना हुआ है

और शरीरके पासकी गर्मीके सूक्ष्म स्कंधोंको निमित्त पाकर यह शरीर भी शीत अवस्थाको छोडकर गरम अवस्थामें आया ।

निमित्तनैमित्तिक परिणमन सम्बन्ध—निमित्तनैमित्तकका विरोध नहीं करना है । पदार्थ किस पर्यायमें किस-किस को निमित्त पाकर किस रूप परिणम जाते हैं ? यह निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था है, किन्तु उस काल भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ठीक-ठीक चल रहा है अललटप्प नहीं ।

स्वयोग्यता ही से व्यवस्थित परिणमन—देखो भैया, पदार्थ अपना कितना अस्तित्व लिए हैं ? कितना उसका स्वरूप है और वे पदार्थ कैसे परिणम जाते हैं ? निश्चयदृष्टिसे देखो तो समस्त पदार्थोंकी स्वतत्रता स्पष्ट नजर आने लगती है। सब पदार्थोंमें परिणमन स्वभाव है, ऐसे स्वभावत परिणत पदार्थोंकी व्यवस्थामें कोई लोग मानते हैं कि तीन देवता हैं, जिन्हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा जाता है । ब्रह्माका काम है पदार्थोंको उत्पन्न करना, महेशका काम है पदार्थोंका नाश करना और विष्णुका काम है पदार्थोंकी रक्षा करना । इस प्रकार उत्पत्ति रक्षा और विनाश इन तीन प्रकारके परिणमनोंके बिना तो काम नहीं बनता है । इन तीन प्रकारकी परिणतियोंमें जो द्रव्योंकी तीन स्वतत्र योग्यताएँ हैं उनके न माननेसे उनके स्थानके स्वभावपर विविध देवताओंकी कल्पना करनी ही पडी, किन्तु वस्तुत ये तीनों देवता और पदार्थोंकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य शक्तियाँ पदार्थोंमें तन्मय है । अणु-अणु, सर्व जीव, सर्व पदार्थ त्रिदेवतामय हैं, नाम कुछ रखलो नामका विवाद नहीं ; उत्पादका नाम ब्रह्मा, व्ययका नाम महेश और ध्रौव्यका नाम विष्णु । कारण कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता अणु अणुमें समाये हुए हैं । इनका स्थान अलग नहीं है । ये सर्व लोकाकाशमें हैं और अलोकाकाशमें भी हैं वैकुण्ठपर रहनेवाले, पहाडोंपर रहनेवाले अथवा अन्य किन्हीं स्थानोंपर रहनेवाले अणु अणुमें सर्व चेतनोंमें तीनों देवता विराजमान हैं, अर्थात् पदार्थोंमें ये तीनों शक्तियाँ हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य । इन्हे चाहे ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि नामसे कहो या सीधे इन विशेषोंके नामसे कहो ।

द्रव्यस्वभावके द्वारा वैज्ञानिक प्रगति—द्रव्यके परिणमनस्वभावको जाननेवाले जो वैज्ञानिक हैं, विज्ञानमें प्रगति कररहे हैं और विश्वको आश्चर्यमें डालरहे हैं, वे जानते हैं कि पदार्थ परिणमनका स्वभाव रखते हैं और ऐसे निमित्तको पाकर वे ऐसे परिणम जाते हैं, इसलिए उनका आविष्कारके लिए उद्योग होता है, उनका जुटाव किया जाता है । अमुकमें अमुक गैस मिले तो अमुक चीज बन जाय, अमुक चीज मिले तो हवा पानी बन जाय, पानी हवा बन जाय ! उन्हे निमित्तनैमित्तक सम्बन्धका पता है और पदार्थोंके परिणमन स्वभावका भी पता है ।

स्वभाव व विभाव रूप परिणमनका दृष्टान्त—हम दर्पणमे देखते है तो उसमे प्रतिविम्ब, छाया परिणम जाती है और जब भीट (दीवाल) मे देखते हैं तो प्रतिविम्ब, छाया परिणमती नही है। उसका कारण यह है कि दर्पणमे छायारूप परिणमनेकी योग्यता है, भीटमे छायारूप परिणमनेकी योग्यता नहीं है। जो छायारूप परिणमने की योग्यता रखता है वह पदार्थ वाह्य पदार्थोका सान्निध्य पाकर अपनेमे छायारूप वन गया है, अभी सूर्यका उदय है उदय तो सबके लिए समान है, पर यहाँ विचित्रता यह दिख रही है कि काला वोर्ड ज्यादा चमकता है, भीट उससे कम चमकती है, टीन वगैरह और ज्यादा चमकते हैं, कांच तो वहुत ही ज्यादा कान्ति पैदा कर लेता है और कही ऐसा हो तो वह वहुत ही ज्यादा कान्ति उत्पन्न कर लेगा। सूर्य यदि इनको प्रकाशित करता तो, या यह सव सूर्यका प्रकाश हो तो, एक ही सा सव चमकें। सभीमे एकसा प्रकाश, एकसी चमक, एकसी कान्ति हो, कोई भी अन्तर न आवे।

चमक दमक व प्रकाशमे अन्तर—यह जो अन्तर दिखता है वह किस कारणसे? इसी कारणसे कि जिस पदार्थमे जितनी स्वच्छता है, योग्यताके अनुसार सूर्यका निमित्त पाकर अपनी कान्तिसे अपने आप ही चमकता है। इन्ही वातोको जिनको हम इस रूपमे कहते हैं कि निमित्तकी सन्निधि पाकर उपादान अपनेमे असर पैदा कर लेता है। यदि हम यथार्थ शब्दोमे कहे तो समय ज्यादा लगेगा। वातें करते जायें तो घुमा घुमा कर वातें करते जायें। सिर दर्द हो तो वैद्यजी से कहो कि वैद्य जी! कोई ऐसी चीज वतलाओ जिसके सन्निधानका निमित्त पाकर सिरके अगोंमे वायुका परिवर्तन हो और वायुपरिवर्तनके निमित्तसे इन नसोका कम्पन समाप्त हो जाये। भैया! सीधा व्यवहार यह है कि कोई दवा दे दो जिससे सिर दर्द दूर हो जाय। इतनी लम्वी चौड़ी वात व्यवहारमे नहीं चलती। व्यवहारमे तो यही कहा जायगा कि आगने पानीको गरम किया, सूर्यने इसको चमका दिया, मास्टरने शिष्यको ज्ञान पैदा कर दिया आदि।

दृष्टिमे मान्यताका दोष—भैया, ऐसा कहनेमे कोई बुराई नही है। पर असली वात तो समझमे रहना चाहिए। मास्टर साहव शिष्यको ज्ञान देते है तो किसका ज्ञान देते हैं? अपना ज्ञान देते है कि किसी दूसरेका? अपना ज्ञान अगर शिष्योको देदें तो १०, २०, ५० शिष्योको ज्ञान देनेके वाद तो मास्टरकी दुर्गति हो जायगी, मास्टर कोरे रह जायेंगे। पर यहाँ तो देखो उल्टा हो जाता है कि मास्टर जितना वच्चोको ज्ञान देता है, उतना ही मास्टरका ज्ञान वढता जाता है। यहाँ तो यो देखा जाता है, क्योंकि मास्टर अपने ज्ञानका परिणमन कररहा है, ज्ञानको उपयोगमे ला रहा है। उसका ज्ञान और वढता चला जाता है। मास्टरके इस ज्ञान और वतानेकी इच्छाका निमित्त पाकर जो शब्द वर्गणाये है वे शब्द रूपमे परिणम जाती हैं। उनका

अवगत कर शिष्य लोग अपने ज्ञान स्वरूपमे बसे हुए ज्ञानका विकाश कर लेते हैं, शिष्य अपने ज्ञानका विकाश कर लेते है, मास्टर अपने ज्ञानका विकाश कर लेता है, पर कोई किसीको ज्ञान नही देता। कोई किसीका सुधार विगाड नही करता है। निमित्त तो है, पर परिणति तो परिणमनेवालेकी स्वयकी है। दूसरेकी परिणति लेकर, दूसरेका साझा लेकर अपना काम बनाता हो कोई, सो ऐसा कोई पदार्थ नही है। अगर कोई किसी दूसरेका काम बनाने लगें तो जगतका अभाव हो जायगा।

साझेदारी हानिकर—साझेदारीमे दुकान बिगड जाती है। अकेलेमे एक चित्तसे दूकनदारी की जाती है, उसमे उन्नति करली जाती है। साझेदारीको तो ठीक नही बताया है। इसमे बेईमानी होती है तथा सशय बना रहता है। यह लोक व्यवहारकी बात है। पहिले एक बेईमानी करता है फिर दूसरा बेईमानी करता है। इस तरहसे दुकान बिगड जाती है यदि कोई किसीको परिणमा दे तो या वह रहेगा या दूसरा रहेगा, कोई एक रहेगा या इनका अभाव होगा या उसका अभाव होगा। निष्कर्ष यह होगा कि सबका अभाव हो जायगा वहाँ दो नही रह सकते है। कौन रहे, व कौन न रहे ? वे आपसमे लड जायेंगे। सो भैया ! उपाधिका तो निमित्त है। परिणमता उपादान स्वय है। निमित्तनैमित्तिकताके विरोधको किया ही नही जा सकता है। कोई सर्वज्ञ हैं, किन्तु वस्तुके स्वरूपको भी देखिये कि वस्तु कितना है और क्या करता है ? कोई पदार्थ दूसरे पदार्थको अपना कुछ पर्याय देदे ऐसा नही है, इस कारण पदार्थ सब अपना-अपना सत्त्व लिए हैं, अपने ही परिणामोमे वे उत्पन्न होते हैं, व्ययको प्राप्त होते है, और ध्रौव्यको भी प्राप्त होते हैं। इसमे शिक्षा क्या लेना है कि मैं अपने ही परिणामोमे अपनी दशाएँ बनाता हूँ, बिगाडता हूँ और सदा बना रहता हूँ। इस मेरे अस्तित्वमे किसी दूसरेका दखल नहो है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका अधिकारी हो, मालिक हो, प्रभु हो, सुधार बिगाड करता हो ऐसा नही है। मैं ही अपना परिणाम करता हूँ, अपना जिम्मेदार मैं ही हू। चाहे अपनेको अच्छा बनाऊँ चाहे बुरा बनाऊँ, यह सब अपने ज्ञानपर निभर है।

द्रव्योंके भाव—यहाँ प्रकृत बात यह चल रही है कि ६ प्रकारके द्रव्योंमे से जीव और पुद्गल ये दो तो भाववान भी हैं और क्रियावान भी है। शेप चार प्रकार के द्रव्य केवल भाववान हैं, क्रियावान नहीं हैं।

भाव क्या है ?—अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भाव किसे कहते है? भाव कहते हैं परिणमनमात्रको, प्रदेशपरिस्पदको नही। परिस्पदको छोडकर यावन्मात्र परिणमन है, वह सब भाव कहलाता है। भाववान सभी द्रव्य क्यो है? इस कारण कि निरतर उन द्रव्योके परिणमनका स्वभाव है। और, परिणमनके ही साथ जिनका

अन्वयव्यतिरेक है ऐसा हुआ उत्पाद व्यय ध्रौव्य, सो यह त्रितयात्मकता भी सब पदार्थोंमे स्वभावतः शाश्वत है।

क्षणिकवादी मान्यता—त्रितयात्मकता तो द्रव्य और द्रव्योका स्वभाव है, किन्तु परिणमन-स्वभावके विपरीत, क्षणिकवादियोंके यहाँ तो नई-नई वस्तुका उत्पाद माना जाता है, वे तो क्षण-क्षणमे होनेवाले तत्त्वोंको पदार्थ कहते हैं, भाव नही कहकर नये-नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर ही एक क्षण रहकर नष्ट हो जाते हैं, ऐसा वताते हैं। सो यह मात्र पर्यायदृष्टिसे ठीक है।

द्रव्यकी भाववती शक्तिकी सिद्धि—अच्छा यदि भाव (परिणमन) नहीं है और नया पदार्थ ही उत्पन्न होता है तो उनका स्मरण रहना, ताता न टूटना और उन उस ही जातिका पदार्थ होना इस सवका क्या कारण है ? तो वे क्षणिकवादी उत्तर देते हैं कि यह सव सन्तान है। पदार्थ नये-नये उत्पन्न होते हैं। पर उनके सन्तान होते हैं और इसी कारणसे स्मरण चलता रहता है। आपके शरीरमे नई-नई आत्मा उत्पन्न होती है। जो नई-नई है वह भिन्न-भिन्न आत्मा हुई। अतः यदि यह आत्मा है तव यह प्रश्न हो सकता है कि पहिली आत्मा जो नवीन ही है उसे अपनी पूर्वकी आत्माका स्मरण क्यो रहता है? जिस प्रकार भिन्न शरीरमे रहने वाली एक आत्माकी करतूतका स्मरण दूसरे शरीरमे रहने वाली आत्माको नही होता। अन्य व्यक्ति क्या सोचरहा है ? क्या आप दूसरेका कुछ अनुभव कर लेते हैं ? नही। इसी प्रकार एक ही शरीरमे रहने वाले भिन्न-भिन्न आत्मा हैं तो पहिली आत्मा-वोकी वातका स्मरण नही होना चाहिए। जव नये-नये आत्मा उत्पन्न होते हैं तो वे तो स्वतन्त्र ही हैं। जैसे भिन्न-भिन्न शरीरमे रहने वाला आत्मा स्वतन्त्र है। तो एकको दूसरेकी खवर नही रहना चाहिए। क्षणक्षणमे उत्पन्न होनेवाले उन आत्मावोकी स्मृति नही होनी चाहिए, क्योंकि कल काम किया था किसी दूसरे आत्माने और आज एक कोई नया आत्मा काम कररहा है। एक ही शरीरमे स्वरूपकी यह वात वोलरहे हैं। आज भी कहते हैं कि मैंने कल क्रिया था यह, तो क्षणिकवादमे आजका आत्मा कल था नही (यह क्षणवाददर्शनकी वात कहरहे हैं) फिर पूर्वके रूपमे यह स्मरण क्यो होता है ? इसके समाधानमे इस दर्शनमे क्या कहा कि पहिली वातका स्मरण तो इस नवीन आत्माको इसलिए होता है कि उसकी सन्तानमे वह आत्मा उत्पन्न हो गया। उस कुलमे उत्पन्न होनेसे स्मरण होता है। जैसे दीपक जलता है और प्रतिसमय प्रतिक्षण नया-नया वूँद जलता है तो नया-नया वूँद जलकर भी दीपक अपना काम निरन्तर करता है। दीपक प्रकाशमान है, उसमे यह अन्तर नही आ पाता और क्रिया करनेमे वह दीपक एक सा ही रहता है, तो नये-नये वूँदोका नया-नया दीपक वनकर भी, (एक चिमनीकी वात कह रहे हैं, एक दियाकी वात कह रहे हैं) नये-नये वूँदोके

नये-नये दीपक लगातार बनते हुए भी उनकी सन्तान एक है इसलिए उन प्रकाशमय क्रियावोंमे अन्तर नही पडता। इसी तरह एक शरीरमे नयी-नयी आत्मा प्रतिक्षण उत्पन्न होती है तब भी सन्तान होनेके कारण उनमे, उनकी क्रियामे अन्तर नही पडता। यह उनका समाधान है। दूसरी बात पूछी गई है कि यह क्यो स्मरण होता है कि मैंने कल यह किया था, क्षणिकवादके दर्शनकी बात चलरही है, प्रश्न—जब नया आत्मा उत्पन्न होता है तो वहाँ उनके क्रममे अन्तर नही पडा तो न सही, सन्तान है, मगर इस रूपसे क्यो स्मरण होता है कि कल मैंने यह किया था। उत्तर उसका यह दिया है कि जो आत्मा नष्ट होता है वह नष्ट होते हुए अपना आकार नवीन आत्माको सौंप करके नष्ट होता है। देखो सीधी बात नही माननेपर कितनी बातें माननी पड रही हैं। नष्ट होने वाला आत्मा उत्पन्न होनेवाले आत्माको अपना सर्वस्व आकार सौंप करके नष्ट होता है। जब अपना सर्वस्व सौंप दिया तो दूसरी आत्मा भी उसकी ही तरह इस आकार रूपमे ही भाव बनाता है। पर इन दोनो प्रश्नोंका हल वस्तु-सिद्धान्त से यह है कि आत्मा एक द्रव्य है और वह भाववान है। यह सीधा उत्तर है।

परिणमनमे और उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे अविनाभाव सम्बन्ध—भाव होते हैं तब तो उसमे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य माना जाता और उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो तो भाव माना जाता। तो परिणमनस्वभाव है द्रव्यका और इसी कारण वह परिणमन करता है। उस परिणमनके साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अन्वय व्यतिरेक है। परिणमन हो तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य जरूर हो। उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो तब ही परिणमन बन सकता है। परिणमन न हो तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य कुछ नही हैं व उत्पाद व्यय ध्रौव्य नही हो तो परिणमन भी कुछ नही है। इस तरह परिणमनके साथ जिन्होने अन्वय व्यतिरेक पाया है ऐसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य करि सहित समस्त पदार्थ भाववान होते हैं।

परिणमनस्वभावकी श्रद्धा ही समस्याका हल—पदार्थोंका यह परिणमन-स्वभाव मान लेनेमे कितनी बातोंका हल होता है। अनेक समस्याओंका इसमे हल होता है। किसीने किसी वस्तुका कुछ कर डाला इसका भी हल होता है। इसमें कितना अज्ञान दूर होता है और मोक्षमार्गमे इस वस्तुस्वरूपके यथार्थज्ञानसे कितनी उन्मुखता होती है। विचारो तो शांतिके लिए, मुक्तिके लिए क्या करना है? मात्र भीतरमे सत्य ज्ञान करना है। इसके अतिरिक्त अधिक क्या करना है। भैया, ज्ञानके बिना मुक्ति नही होती है।

तप सयम क्या है—अब तप सयमका भी मर्म क्या ' सो सुनो, हमारा जीवन सब बातोपर निर्भर है, खाना, पीना और ठडी गर्मी इत्यादिकी वेदनाका निवारण करना हैं, इन्ही सबसे जीवन चलता है और पहिले बँधे हुए ,कर्मोंका विपाक भी चलरहा है।

उस विपाकमे कुछ सोचना है, कुछ बोलता है, कुछ कायप्रवृत्ति करता है ऐसी स्थितिमें वह ज्ञानी पुरुष क्या करे ? विरक्त पुरुष तो जो कुछ करता है बस वही सयम है। देखकर चलना, समितिपूर्वक कार्य होना, पापोका त्याग करना यह सब प्रवृत्ति होती है और यह किया जाता है। यह तो हुई प्रवृत्तिकी बात।

परीषहादि सहनेमे आशय—लोग जान समझकर गर्मीमे पर्वतपर तपते, ठडके दिनोंमे नदियोंके तटपर ध्यान लगाते, वर्षाऋतुमे पेडोंके नीचे तप करते और-और भी तरहसे तप करते, तो, यह सब क्यो किया जाता है ? यह सब इसलिए किया जाता है कि आगमसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान, वस्तुस्वरूपविषयक यह ज्ञान कष्ट आनेपर, कर्मोका विपाक आनेपर विचलित न होजाय, यह आत्मा सक्लिष्ट न होजाय, यह अपने उपार्जित ज्ञानको न खो बैठे, इसके लिए प्रयोगात्मक एक दृढ विश्वास किया जात है। अनशन आदिका अभ्यास क्यों करना चाहिए ? अनशन इसलिए किया जाता है कि कदाचित् कितने ही दिन आहारका योग न हो तो उनकी समता न बिगडे, उनकी ज्ञानपद्धति न टूटे। इसी तरह अन्य अन्य तपस्याओंकी बात समझो। एक बात तो यह है, दूसरी बात यह है कि इन जीवोंके साथ जो कर्मविपाक चलरहे हैं उसमे अबुद्धि पूर्वक और कुछ बुद्धिपूर्वक भी रागद्वेषविषयक भाव चलते है। उन तपस्याओमे यह उपयोग निर्मलताकी ओर बढता है, विषय कषायोकी ओर नही लगता, विषय कषायों की ओर उन्मुख नही होता है, तब आत्मध्यानके लिए रास्ता मिलता है, इसलिए तप सयम आदि किए जाते हैं। पर इनका भी मूल उद्देश्य विश्वासमे प्राप्त किये गये ज्ञान भावकी रक्षा करना है।

मोक्षमार्ग क्या है ?—यथार्थ दर्शन होना, यथार्थ ज्ञान होना व ऐसा ही ज्ञान बनाए रहना इसीका नाम मुक्तिमार्ग है। जहा यह देखरहे हैं कि परवस्तु अपने-अपने स्वरूपमे है, परिणमन स्वभावके कारण अपने आपमें परिणमते रहते हैं। किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ रच भी सम्बन्ध नही है। वहाँ ऐसा देखनेपर मोहभाव नही रहता। भैया, जो पदार्थ विभावरूप भी परिणमते है, विकाररूप भी बनते हैं उनके अन्दर ही ऐसी योग्यता है, ऐसी कला है कि वे अनुकूल निमित्तको पाकर अपनेको अपनी योग्यतासे इस प्रकारका बना लेते हैं। देखो तो, जगतमे जितने भी पदार्थ है वे सब अपना-अपना सत्त्व लिए हुए है।

राग और आसक्ति क्या—घरमे जिन स्त्री, पुत्रोंमे राग किया जारहा है, वे क्या चीज हैं ? आशक्ति की जारही हैं, वे क्या चीज हैं ? जिनका विषय करके आत्मा रागी बनरहा है, मोही बनरहा है, उनका इस आत्माके साथ क्या सम्बन्ध है ? कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं है। ये राग करनेवाले जीव एकाकी नाटक खेलरहे हैं, वहासे

इन्हें कुछ नहीं मिलता है। दूसरे लोग कुछ राग नहीं उत्पन्न करते, दूसरे लोग किसीकी परिणति नहीं बनाते, पर यह अपने आप ही अपनी धुन बनाकर आपही रत होरहा है।

प्राणी स्वयंके विकल्पोंसे ग्रस्त—एक छोटीसी घटना है कि तीन चोर चोरी करने जारहे थे, रास्तेमे उन्हें एक नया आदमी मिला। उस नये आदमीने पूछा कि भाई कहाँ जारहे हो? तो वे बोले चोरी करने, मुफ्तमे ही हजारों, लाखों रुपया चुरा लावेंगे तो बोला कि हमें भी साथमे ले चलो। सो चोरी करने एक गाँव गए। किसी धनिक बूढ़ेके घरमे वे घुस गए और चोरी करने लगे। उस बूढे आदमीकी नींद खुल गयी। खाँस दिया तो तीन चोर निकल कर भाग गए। अब एक अनसिखा चोर रह गया। उसे कहीं छिपनेकी जगह समझमें न आयी सो जो मकानकी ग्यारी होती है, उसमें स्थान रहता है, वहीं जाकर बैठ गया। उस बूढेने हल्ला मार दिया, सभी गाँवके लोग जुड गए। कोई पूछता है कि कितने चोर थे? तो बोला भाई हमे नही मालूम। किसीने पूछा कि क्या ले गये? तो बोला कि मैंने कुछ नहीं देखा। किसीने पूछा कि किधरसे आए थे? तो बोला हमे क्या मालूम। दसों आदमियोंने दसो तरहके प्रश्न किए। जब बुड्ढा बहुत ही परेशान हो गया तो झुंझलाकर बोला कि मैं क्या जानूँ, यह तो ऊपरवाला जाने। उस बूढेके मनमें ऊपरवालेका अर्थ भगवानसे था, पर ऊपर बैठा हुआ नया चोर कहता है कि हूँ, हमीं क्यों जानें, वे साथ वाले तीनों चोर क्यों न जानें? बस वह पकड लिया गया। अरे पूछनेवाले अपना परिणमन कररहे थे, उत्तर देनेवाला अपना परिणमन कररहा था, पर उस चोरने अपने आपही भाव बनाकर अपना अर्थ लगाकर अपने आपही अपने स्वभावकी बात बोल दी।

पर द्रव्यराग उत्पन्न नहीं करते—ठीक नवीन उस चोरकी ही तरह ये जगतके रागी मोही जन, कुटुम्बके लोगोंको, मित्रोंको, स्त्री पुत्रादिकको देखकर अपने भाव लगाकर, विकल्प बनाकर अपने आपमें ही अपना काम करते हैं। और रागी होते रहते हैं। यह एक तरहका नाटक है, दूसरा कोई नाचमे मदद नही देता, याने परिणति नहीं करता है। स्वयं अपनेको रागरूप परिणमाता व ज्ञानरूप परिणमाता है। पर शान्ति तो ज्ञानरूप परिणमे तब मिलेगी। यह सब ज्ञानमे आता है तो मोह नष्ट होता है और मुक्तिका मार्ग प्राप्त होता है।

भाववान द्रव्योंका अबाधित परिणमन—इस प्रकरणमे यह कहा जारहा है कि सभी द्रव्य भाववान होते हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं। कितनी जल्दी परिणमते हैं? क्या प्रत्येक मिनटमे? क्या प्रत्येक सेकेण्डमे? अरे एक-एक सेकेण्डमे असंख्यात आवलियाँ होती हैं और एक-एक आवलीमे अनगिनते समय होते हैं। प्रत्येक समयमे

उसका एक परिणमन चलता है। तो यह परिणमनचक्र प्रत्येक पदार्थमें बड़ी तेजीसे चलरहा है। सो सभी द्रव्य भाववान हैं।

क्रियावान द्रव्य—भैया, पुद्गल व जीव क्रियावान हैं, पहिले तो यह बतलाते हैं, फिर आगे कहेंगे कि जीव भी क्रियावान होते हैं। यद्यपि जीवमेंभी क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर की बात आती है फिर भी क्रियावान तो दोनों है फिर भी मुख्यता पुद्गलकी रक्खी गयी है। जीव भी क्रियावानहैं, पुद्गल भी क्रियावान हैं, किन्तु बतलानेके समय पुद्गलको मुख्य रूपसे बतला रहे हैं और जीवोंके पीछे कुछ अपि अर्थात् भी शब्द लगाकर बतलावेंगे। जैसे किसीको कहे कि अमुकचन्दको भोजन कराओ और अमुकको भी करावो। तो पुद्गलको क्रियावान बतानेके लिए पुद्गल द्रव्य क्रियावान है मुख्यरूपसे वर्णन किया और "जीव भी क्रियावान हैं" ऐसा कहकर उसको गौणरूपसे क्रियावान विवृत किया गया।

क्रियावती शक्तिकी व्यक्तता—जीव व पुद्गलकी क्रियाओंपर कुछ सोचिए। देखो भैया! पुद्गलकी क्रिया तो कुछ व्यक्त मालूम होती है पर जीवकी क्रिया व्यक्त नही मालूम होती है। दूसरी बात, जीव तो किसी समय अर्थात् मुक्त होनेपर निष्क्रिय हो जाते हैं, फिर क्रियाकी व्यक्ति नही चलती, और पुद्गलमे ऐसा अनन्तकाल तक नहीं होगा कि किसी पुद्गलके लिए यह बात कही जासके कि पुद्गल सदाको निष्क्रिय हो गया। इसी कारण क्रियातत्त्व की प्रसिद्धिमे पुद्गल द्रव्यका यहा मुख्यरूपसे वर्णन किया जारहा है। पुद्गल द्रव्य जिसमे कार्माणवर्गणायें भी हैं, परिस्पन्दस्वभाव होनेके कारण भेद द्वारा भिन्न हो जाते हैं और संघातके कारण वे जुड जाते हैं, ऐसी स्थितिमे उनमे क्रिया होती है।

परिस्पद शक्तिमे भेद संघात का कार्य—कोई स्कध जो कि अनन्त परमाणुवों का पिण्ड है, उसमे अगर भेद होता है, वे कुछ अलग-अलग हो जाते हैं तो उसमे कारण है परिस्पद। परिस्पद होता है तो उनका न्यारापन होता है। अभी देखो, लकडी भी कटती है तो टुकडे होते समय परिस्पद होता है कि नही? यह मोटे रूपसे देखते हैं। बल्कि मोटी चौकी जो अपनेमे ऐसी लग रही है कि वह हिलती डुलती नही, फिर भी अनेक परमाणु निकल रहे है। उसमे भेद होते रहते हैं इसका कारण परिस्पद है। वह अपनेको नही मालूम पड रहा है। मोटे रूपसे ऐसा लगता है कि यह चीज तो ज्योंकी त्यो अवस्थित है, पर परिस्पद है तो ऐसा चल रहा है। संघातसे मिलता है संयोग और फिर भेदोमे भी व भेदसंघातोमे भी यह भेद और संघात चलता है। भेदके कारण जो उनमे उत्पाद है, जो उनमे व्यय है, जो उनका अवस्थान है, ध्रौव्य है उनमे यह पुद्गल क्रियावान होता है। जीव भी परिस्पदस्वभावी है। कर्म और नोकर्म तो पुद्गल ही हैं वे भिन्न होते है व संयुक्त भी होते हैं। सो उनमे भेद व

सघात होता है। कर्म नोकर्म पुद्गलोसे जीवका सयोग होना है और न्यारापन भी होता है। इस कारण जो उनमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता है उसमे जो जीव है वह भी क्रियावान है।

जीवकी क्रिया सकारण—यहाँ यह वात आयी है कि जीवमे जो क्रिया चलती है उसका कारण है, अकारण क्रिया नही है। अकारण क्रिया हो तो सदैव क्रिया होगी। सो इस कारण यह कहा गया है कि कर्म और नोकर्मके उपसर्गमे भेद होता है और सघात होता है। जीवमे कोई भी क्रिया हो, कर्म व नोकर्मके भेद और सघात हुए विना जीवकी क्रिया नही चलती। जैसे हम आप इतना डोलते चलते है, इसमे कारण, कर्म पुद्गल नोकर्म पुद्गलका उदय होता याने नवीन कर्मका भी सघात होता रहता है। यह तो एक मोटी वात है। इसके साथ अनन्त कर्म पुद्गलका भेद और सघात निरतर चलता रहता है। और स्कधोमे तो भैया, उन्हीके समुदायमे अनेकोका भेद व अनेकोका सघात होता है। यह नही है कि हजार परमाणुवोंके पिण्ड मे से कोई स्थिर रहा करे ऐसे परमाणु तो भिन्न हो और उससे लगाव विलगावके परमाणु अलग हो। पुद्गलोमे ऐसा नही है। वहाँ सव एक प्रकारके है। कोई विगड जाय, कोई लग जाय, कोई हट जाय, मगर यह जीवोका जो भेद सघात कहा जारहा है वहाँ जीव तो एक हैं। जीवके साथ अनेक कर्म और नोकर्मका भेद होरहा है, सघात होरहा है, याने विशिष्ट सयोग वियोग होरहा है। सयोग वियोगके कारण और परिस्पदके कारण जीवकी क्रिया होती है। इसी तरह जीव भी क्रियावान है। जैसे इस जीवित अवस्थामे मनुष्य ही को लो। मनुष्य है, इसमे जो क्रिया हो रही है सो कर्म नोकर्मके पुद्गलका आवागमन चलता ही रहता है, सो क्रिया होरही है और मरनेके वाद विग्रहगतिका समय आता है तो वहाँ भी कर्म नोकर्म पुद्गलोंके भेद सघात होते है। जव निरतर उदय चलरहा है तो यह भेद ही तो है। वद्ध जो कार्माण-वर्गणायें हैं उनका यहाँसे निकल जाना उदय कहलाता है। माने वे कार्माणवर्गणाये अन्य जगह पहुँच ही जायें ऐसा नही है। अन्य जगह जाँय, अन्य जगह जानेका नाम निकलना नही, कर्मत्वकी जो परिणति है उसका हट जाना, इसी को कहते हैं कर्मका निकलना। और ऐसी स्थिति होते समय उसका निमितमात्र पाकर यह जीवमें जो क्रिया चलती है वह क्रिया भेद सघातमे चलती है। इसी तरह ससारी जीवमे भेद सघात चलता है।

जीव पुद्गलके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंमे भेद सघात व क्रिया नहीं—इन दो द्रव्योंके अलावा अन्य द्रव्यका भेद सघात नही है। धर्म द्रव्यके साथ भेद सघात नही लगा है, अधर्म द्रव्यके साथ भी भेद सघात कोई नही पाया जाता है। आकाश द्रव्यका

भी भेद सघात नही है। जैसे जीव और कर्मका बन्धन अथवा पुद्गल और पुद्गलका बन्धन हो वैसा या अन्य प्रकारका बन्धन धर्म अधर्मके साथ हो ऐसा नही है। आकाश द्रव्यका भी भेद सघात नही है, काल द्रव्यका भी भेद सघात नही है। इस तरह धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारोंमे क्रिया नही होती। ये द्रव्य क्रियावान नही है।

समानजातीय व असमानजातीय द्रव्यपर्याय—क्रियावान द्रव्य ये दो ही है। इसलिए इनमे समानजातीय द्रव्य पर्याय और असमानजातीय द्रव्यपर्याय होता है। अनेक द्रव्योंके सम्पर्कमे होनेवाली परिणतियो कहते है द्रव्यपर्याय। जैसे जीव और अनन्त कर्मवर्गणायें व नोकर्मवर्गणायें है इनमे होनेवाले बन्धनके कारण जो व्यजनपर्याय होती है उसको असमानजातीय द्रव्य पर्याय कहते हैं, यह है एक चेतन और बाकी अचेतन। तो ये परस्पर विजातीय होगये, एक जातिके नही है। इनमें होनेवाले प्रदेश-परिणमनको असमानजातीय द्रव्यपरिणमन कहते है। और स्कधोंमे समान जातीय द्रव्यपर्याय है। वहाँ पुद्गल-पुद्गल मिलकर एक स्कधको प्राप्त है। वे समान-समान जातिके हैं। उस परिणतिको समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। जिस कारण समान-जातीय द्रव्यपरिणमनमे और असमानजातीय द्रव्यपरिणमनमे ही क्रिया चलती है। और अन्यमे नही चलती है, इसी कारण क्रियाका कारण बताया है भेद और सघात इसीको गाथामे भी लिखा है कि ये सब जीव और पुद्गलमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य जो होता है वह परिणमन भेद और सघातसे होता है। परिणमनके कारण तो भाववती परिणति हुई और भेद सघातके कारण इसमे क्रियावती परिणति हुई। इस तरहसे इस प्रकरणमे आए हुए द्रव्योंमे से विशेषता इस प्रकार बतायी गयी है कि समस्त द्रव्य हैं, उनमे क्रियावानकी विशेषता और भाववानकी विशेषता इस तरहसे दो द्रव्योंमे पायी जाती है।

द्रव्योंका स्वरूपावलोकन—यहाँ तक यह बताया गया है कि छहों द्रव्योंमे से जीव और पुद्गल तो क्रियावान हैं और भाववान भी हैं, किन्तु बाकी के चार द्रव्य केवल भाववान हैं। इस वर्णनके पश्चात् अब कुन्दकुन्दाचार्य देव यह बतलाते हैं कि इन छहो द्रव्योमे गुणविशेष हैं जिनके कारण ये छहो द्रव्य भिन्न-भिन्न लक्षित होते हैं।

विशेषगुणोंसे विशेषताकी सिद्धि—द्रव्य सामान्यसे देखा जाय तो सब द्रव्य हैं, सबमे अस्तित्व है, वस्तुत्व है, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व है, प्रदेशवत्त्व है, प्रमेयत्व है। इस प्रकार सामान्य गुणसे तो द्रव्य सब समान हुए, किन्तु इन द्रव्योंमे भिन्नता व भेद कैसे लक्षित होता है? द्रव्योमे से विशेषता कैसे आती है? इन बातोंको १३० वीं गाथामे बतलाते हैं कि यह द्रव्योंके विशेष गुणकी विशेषतासे होता है।

लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं हवदि विण्णादं ।
ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तममुत्ता मुणेयव्वा ।। १३० ।।

लिंग किसे कहते हैं ? —जिन लिंगोंके द्वारा द्रव्य जीव और अजीव इस तरह ज्ञात होता है वह तद्भावविशिष्ट होता हुआ मूर्त है और अमूर्त है। लिंग शब्दका क्या अर्थ है कि निज द्रव्यका आश्रय करके रहनेवाले जिन चिन्होंसे द्रव्य जाने जाते हैं उन चिन्होंको लिंग कहते हैं। अर्थात् असाधारण गुण कहो, लक्षण कहो, लिंग कहो एक ही अर्थ है। लक्षण वही होता है जो अपने लक्ष्यमे तो पूरे रूपसे रहे और अलक्ष्यमे जरा भी न रहे, वही चिन्ह कहलाता है, वही लक्षण कहलाता है और वही असाधारण गुण कहलाता है। लक्षणको अव्याप्ति अतिव्याप्ति व असम्भव दोपसे रहित होना चाहिए। अव्याप्तिका अर्थ है पूरे लक्ष्यमे न रहना, चाहे ऐसा कहलो कि जो लक्ष्यके एकदेशमे रहे, चाहे ऐसा कहलो कि जो पूरे लक्ष्यमे न रहे। अतिव्याप्तिका क्या अर्थ है कि अति के माने अधिक और व्याप्ति माने व्यापक रहना, अर्थात् जो लक्ष्यके अलावा अलक्ष्यमे भी रहे, उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। लक्ष्यके माने जिसका लक्षण किया जाय, और लक्षणके माने वह चिन्ह जो अन्य द्रव्योंमे विवक्षित पदार्थको जुदा करदे याने जुदा बता दे।

जीवका यथार्थ लक्षण —जैसे जीवका लक्षण क्या है ? चैतन्य। चैतन्य सब जीवोंमे पाया जाता है और किसी भी अजीवमे नही पाया जाता है। पुद्गलका लक्षण क्या है मूर्तिकता, मूर्तिकता पुद्गलमे पायी जाती है, अन्य द्रव्योंमे नही पायी जाती है।

सदोष लक्षण विचार —इसके खिलाफ यदि कहे कि जीवका लक्षण क्या है ? तो जो चले, उठे, बैठे, सुखी दुखी हो, राग करे, वह जीव है। सो क्या ये जीवके लक्षण नही हैं ? नही नही है। क्योंकि यह लक्षण अव्याप्ति दोषमे दूषित है। खान, पान, राग द्वेष आदि जीवके स्वरूपमे नही हैं। मुक्त जीवोंमे कहाँ राग है और उत्कृष्ट सन्यासियो मे कहाँ राग है ? सो जीवका राग द्वेप लक्षण नही है क्योंकि इसमे अव्याप्ति दोप आता है। जैसे पूछा जाय कि पशुवोंका लक्षण क्या है ? तो कह बैठे कि पशुवोंका लक्षण सीग है। तो क्या यह लक्षण सही बन गया ? नही, पशुके सींग होते हैं पर सीग पशुका लक्षण नहीं। किसी-किसी पशुके सीग नही पाये जाते है। जो लक्षण पूरे लक्ष्यमे नही रहा वह लक्षण कैसे हुआ ? लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमे रहे। सीग सब पशुवोंमें (लक्ष्यमे) नही रहता, अत यह लक्षण अव्याप्त है। अब यह पूछे कोई कि गायका लक्षण क्या है ? उत्तर दे कोई कि गायका लक्षण सीग है। तो क्या यह उत्तर सही है ? नही। इसमे अतिव्याप्ति दोप आता है, क्योंकि गायके अलावा भैंस आदिके भी सीग होते हैं। जो लक्ष्यके

अलावा अलक्ष्यमे भी रहे वह लक्षण अतिव्याप्त कहलाता है। जैसे पूछें कि जीवका लक्षण क्या है ? तो कहे कि अमूर्तपना। याने जिसमे रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि न हो उसे जीव कहते हैं। यह सही है क्या ? सही नहीं है, क्योंकि अमूर्तिपना जीवको मिल गया मगर जीवके अलावा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य,आकाश द्रव्य और काल द्रव्य ये भी तो अमूर्तिक हैं। इस कारण यह लक्षण अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है, जैसे पूछें कि गायका लक्षण क्या है ? कहे कि सींग। तो क्या यह लक्षण सही हो गया ? नहीं। सींग यद्यपि गायके है पर अन्य पशुवोंके भी सींग पाये जाते हैं। लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमे पाया जाता हो और किसी भी अलक्ष्यमे पाया न जावे।

लिंग या गुणका क्षेत्र—लिंग, गुण वह होना चाहिए जो निज द्रव्यका आश्रय करके तो रहे, और परका आश्रय न करे। भैया, द्रव्य पहिचाना जाता है ऐसे ही गुणमे कि जो गुण निजमे तो रहे और परमें न रहे। उसीसे पहिचान होती है। सो वह गुण कितना है। द्रव्य तो एक चीज हुई और गुण उसमे अनेक हुए, अथवा प्रतिनिधिरूप मुख्य एक ही गुण मानलो तो जो द्रव्य है वह गुण नही है और जो गुण है वह द्रव्य नही है। यद्यपि वह गुण द्रव्यमे तन्मय है, गुण ही द्रव्य तो है भी द्वैतभाव समझमे आगया क्योंकि द्रव्य और द्रव्यका लक्षण। तो इसमे लक्ष्य और लक्षण भेद है, इसने द्वैतभाव आगया। इस कारण लक्षण तो गुण हुआ और द्रव्य गुणी है। जो लक्ष्य है वह द्रव्य और जो उसका लिंग है वह गुण है। सो इस तरह लिंग (लक्षण) लिंगी (लक्ष्य) मे अतद्भाव हैं, तो भी लिंग लिंगीकी प्रसिद्धिमे याने गुण और गुणवानकी प्रसिद्धिमे ये गुण लक्षणपनेको प्राप्त होते ही हैं।

आत्माका पहिचान क्षेत्रादिसे नहीं, किन्तु असाधारण भावदृष्टि से—इसलिए जितने द्रव्योंकी पहिचान है सब अपने चिन्हसे होती है। अब अपने आत्माको पहिचानो तो द्रव्यमे याने पिण्डदृष्टिमे अनुभवात्मकरूपमे नही पहिचान सकते। इस पिण्डकी दृष्टि से अनुभव नहीं होता। पहिचान तो बहुत हो जायगी जैसेकि अन्य द्रव्योंकी पहिचान होती है। पिंड सभी होते हैं, क्षेत्रसे नही पहिचान सकते हैं। आकार सभीमे होता है। हम अपने आकारको इस तरह सोचे कि पैरोंसे लेकर सिरतक इतना लम्बा हूँ, इस पीठसे वक्षस्थलतक इतना चौडा हूँ, तो क्या ऐसा ही सोचनेसे आत्माकी पकड हो जायगी ? आत्माकी पकड ऐसे नहीं हो सकती है। यह प्रदेश आत्माका असाधारण गुण नही है। प्रदेश तो औरोंमे भी पाये जाते है। कालदृष्टिसे आत्माको देखो, यहाँ क्रोध, मान, माया लोभ हैं, यह भाव है, परिणमन हैं, यह मैं हूँ, इससे भी आत्मा नही पहिचाना जा सकता है क्योंकि वे सब तो अध्रुव हैं जिनको निगाहमे रखे हैं। अध्रुवसे ध्रुव नहीं ज्ञात होता है। उससे यह आत्मा पकडमे नही आता है किन्तु जब भावदृष्टि बनाएँ, जब अभेदभावकी दृष्टि करें याने यह मैं प्रतिभासमात्र रहूँ तो आत्माकी पकड़

होती है, अनुभूति होती है। इसीको ही ज्ञानानुभव कहा जाता है, इसीको ही आत्मानुभव कहा जाता है। आत्माका अनुभव इस असाधारण गुणके स्वरूपकी दृढ प्रतीति और ज्ञप्तिक्रियामे ही हो सकता है। भैया, जीवका ज्ञान गुण जीवका असाधारण गुण है। तदात्मक जीव है फिर भी विश्लेषणात्मक दृष्टिमे यहाँ यह वर्णन चलरहा है कि जो गुण है वह द्रव्य नही है क्योकि द्रव्य और गुण एक हो जायें तो लक्ष्य और लक्षणका भेद समाप्त हो जाय कि कौन लक्ष्य और कौन लक्षण ? असाधारण गुणोंके माध्यमसे ही हम यह जीव है, यह अजीव है आदि भेद उत्पन्न करते हैं। असाधारण गुणका काम ही है कि वहाँ भेद करो। क्योकि वह द्रव्य भी स्वय उन उन गुणोंमे तन्मय है, सो वह अपनेमे अपनी विशेषता रखता है।

सत् मे विभिन्न दर्शन—जिस शैलीसे यहाँ पदार्थोका वर्णन किया जारहा है उसमे सबसे पहिले तो एक सत् माना है। सत् कहो, द्रव्य कहो, अर्थ कहो एक ही बात है। वैसे चार शब्द आया करते हैं, द्रव्य, पदार्थ, अस्तिकाय और तत्त्व। जीवके बारेमे भी जीव द्रव्य, जीव पदार्थ, जीव अस्तिकाय और जीव तत्त्व, ये चारो नाम क्यो रखे गये हैं ? अलग-अलग चीजें तो नही हैं। एक सत् को ही हम किस निगाहमें देखें कि वह हमे जीव द्रव्य नजर आयगा, उसही सत्को हम किस निगाहमें देखे कि वह हमे अस्तिकाय नजर आयगा, उसही को हम किसी निगाहमे देखें तो जीव पदार्थ नजर आयगा, उसही सत्को हम किस और निगाहमे देखें तो हमे जीव तत्त्व नजर आयगा। उन दृष्टियोका निर्णय करलो।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सत्का अवलोकन—सत् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमय है। द्रव्यका अर्थ है पिण्ड, क्षेत्रका अर्थ है प्रदेश, कालका अर्थ है परिणमन और भावका अर्थ है गुण। इस सत् को जब हमने पिंडकी दृष्टिसे देखा अर्थात् जो गुण पर्यायका पिड है वह द्रव्य है। जैसे जीवमे अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय हैं, उन सबका जो समुदाय है सो जीव है। ऐसा जो देखा तो इस द्रव्यदृष्टिसे उस देखे हुए जीवका नाम है जीव पदार्थ याने पिण्डरूपमे देखे गए जीवका नाम है जीव पदार्थ। फिर जब हमने क्षेत्रदृष्टिसे देखा याने जीवके असख्यात प्रदेश हैं सो प्रदेशकी दृष्टिमे देखें तो इस क्षेत्रदृष्टिमे देखे गए जीवका नाम है जीव अस्तिकाय। जब कालकी दृष्टिमे इस जीवको देखते हैं तो कालके माने है परिणमन, पर्याय, तो इसका नाम हुआ जीवद्रव्य। द्रव्य उसे कहते हैं जो परिणमन करता था, परिणमन करता है और परिणमन करता रहेगा। द्रव्य शब्दमे परिणमनकी मुख्यता है। जब हमने कालकी दृष्टिमे इस जीवको देखा तो इसका नाम पडा जीव द्रव्य। जब भाव दृष्टिसे देखने चले तो अपनी शक्तिसे तन्मय है। जीवकी शक्ति है चैतन्य स्वभावकी दृष्टिसे जीवको निरखा तो उसका नाम पडा जीवतत्त्व। यदि हम जीवतत्त्वका अनुभव करते

हैं तो हमे आत्मानुभूति होती है। जीव तत्त्व कहो, ज्ञायक स्वभाव कहो, ज्ञानमात्र कहो, उसका जब हम परिज्ञान करते हैं तो उस परिज्ञानके आगे हमे ज्ञानतत्त्वका अनुभव होता है।

आत्मानुभूतिमे प्रथम प्रयत्न—आत्मानुभूतिके प्रयत्नमे सर्वप्रथम प्रयत्न होता है भेद विज्ञानका। सर्व पदार्थोंके स्वरूपको जाने बिना और उनमे यह पहिचान किये बिना कि यह मैं जीव हूँ और इस मुझसे अतिरिक्त सब अजीव है। हितके मार्गमे कैसे बढ सकते हैं? आत्मानुभवके लिए क्या यह प्रयत्न नही हो सकता है कि यह मैं जीव हूँ, बाकी सब अजीव हैं। यह मैं आत्मा हूँ बाकी सब अनात्मा हैं, ऐसी प्रतीति करलें। यह अपने आपका स्वरूप तब तक ज्ञात नही हो सकता जब तक ये दो बातें समझमे नही आजाती, एक सामान्यकी बात, एक विशेपकी बात। सामान्य गुण यह बतलाता है कि यह मैं हूँ, अपने स्वरूपसे हूँ, परके स्वरूपमे नही हूँ। अपनेमे परिणमता हूँ, परमे नही परिणमता हूँ। मैं मैं ही हूँ, अपने लिए हूँ, अपनेमे करता हूँ। करना क्या है? परिणमना। करना शब्द एक व्यवहारका शब्द है, व्यवहार चलानेका शब्द है। और परिणमना शब्द वस्तुके स्वरूपको बताने वाला है।

अस् और भू धातुकी शब्दशास्त्रमे विशेषता—अभी शब्दशास्त्रमे भी देखो तो अस् और भू धातु इन दो धातुओंका ही प्रयोग करके बडे-बडे ग्रथ बनाये जा सकते हैं और बडी व्याख्या, भाषण, निर्माण भी कर डालो, कोई भी क्रिया ले लो। कोई बात बताना है। जैसे किसीको मदिर जाना है, तब तो उसका कथन यह हुआ कि उसका मदिरके लिए गमन होता है। ऐसे ही सभी शब्द बदले जा सकते हैं। केवल अस् और भू धातुका सबसे अधिक प्रयोग किया जा सकता है। और और क्रियायें रखलो पर अस् और भू धातुओंको न रखो तो काम नहीं चल सकता है।

पराश्रय बुद्धि ही अज्ञान—लोक व्यवहारमे कहते हैंकि इस जीवने क्रोध किया, किन्तु भैया! क्रोध नही किया, क्रोधरूप परिणम गया। भीटको कलईने श्वेत कर दिया, ऐसा कहा जाता है, किन्तु कलईने अपने आपको ही श्वेत किया है, भीटको कलईने श्वेत नही किया है। कलई जो पहिले एक ढेलेके रूपमे थी वही बाल्टीमे पानीमे मिलाकर पतले रूपमे परिणम गई है। और वही भीटके आकारमे फैल गई है। जो पहिले ढेलेके रूपमे कलईका टुकडा था अब वही टुकडा फैलकर विस्तृत हो गया। अत विचारिये कि कलईने कलईको सफेद किया अथवा कलईने भीटको सफेद किया? अरे भाई, कलई तो स्वत श्वेत रूपमे है, वही श्वेतरूप उसका विकसित हो गया है। ठीक इसी प्रकार भैया जीवने क्रोध नही किया, किन्तु किसी भिन्न तत्त्वका निमित्त पाकर अपने त्रैकालिक स्वभावका आश्रय छोडकर अपनी योग्यतासे यह आत्मा क्रोधरूप हो गया है। वस्तुत जीवने क्रोध किया नही है। पदार्थमे करनेका प्रयोजन

नहीं, पदार्थ है और जो है वह द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमता है। जो जैसा है वस्तुत वैसा वस्तुत्वगुणके कारण परिणम गया। परिणमनमें करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। चीज है परिणमती है किन्तु परिणमन स्वभावको (पदार्थके) न जानने वाला लोक करनेके नामको परिणमनकी सज्ञा देता है इस प्रकार कोई उपादानको कर्ता कहता है, कोई निमित्तको कर्ता कहता है। अरे भाई ! न कोई उपादान कर्ता है, न निमित्त कर्ता है, किन्तु पदार्थमें ऐसा होता है, जो होता है वहाँ करनेकी बात क्या है ?

आश्रयरहित दृष्टि सर्वत्र यथार्थ—इस अगुलीको टेढी कर दिया, यो करनेकी बात व्यर्थ कहते हैं। अरे टेढी हो गई, परिणम गयी। किसी अन्य पदार्थको निमित्त पाकर टेढी हो गयी। केवल एककी बात देखो तो सर्वत्र यथार्थ बात ज्ञानमे दौडती चली जायगी। द्रव्य परिणम गया, कोई पूछे कि क्यो परिणम गया ? स्वभाव तो नही था इस प्रकार विकाररूप परिणमनेका। अरे भाई, यह कह दो कि इसका निमित्त पाकर यो परिणम गया। परिणमनमे करनेका नाम तो वस्तुके निर्णयमे न बोलो। परिणमनका नाम बोलो। कोई यह नही कहता कि निमितकी सन्निधिके अभावमे भी परिणम गया। क्या प्रकृति क्रोधरूप परिणम गयी ? हाँ, प्रकृतिका निमित्त पाकर आत्मा कर्म रूप परिणम गया। करना न तो उपादानमे घटित होता है न निमित्तमे घटित होता है। कोई किसी रूप परिणम गया, कोई किसी रूप परिणम गया। परिणमना ही परिणमना देखते चले जावो। करनेकी कोई बात नही है। इस ही परिणमनको व्यवहारमे "करना" शब्द द्वारा बोला करते है।

परिणमन द्रव्यशक्तिका परिचायक—द्रव्यमे जो गुण हैं उन गुणोका पता परिणमनसे मालूम होता है, जीवमे ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति अनादिसे अनन्त काल तक है। यदि ऐसा कहे कि वह अपरिणामी है तो इतने शब्दोंमे हम ज्ञानशक्तिका क्या अन्दाजा करेंगे, किन्तु जब ज्ञानशक्तिकी पर्यायका वर्णन करते हैं तब जानते हैं कि ज्ञानशक्ति वह है जिसका विकास जाननरूप होता है। परिणतिमे जो जानते है, ग्रहण करते हैं ना, उसे कहते है जानन, और जाननकी शक्ति है ज्ञानगुण। सो, ज्ञानके परिणमनके द्वारसे ही हम ज्ञानशक्तिका ज्ञान कर सकते हैं। बहुत सुगम ज्ञेय द्रव्य पुद्गलको ले लीजिए। पुद्गलमें रूपशक्ति है, पर उस रूपशक्तिका ज्ञान इन्द्रियो द्वारा नही किया जा सकता है। किन्तु, रूपपर्यायका ज्ञान इन्द्रियो द्वारा किया जा सकता है कि यह नीला है, यह पीला है, यह रँगा है, यह पर्याय है। रूपशक्तिका ज्ञान जब करना होता है तब यू बताया जाता है कि यह काला, पीला, नीला, लाल, परिणमन रूपका विकास है और ये जिस शक्तिके विकास हैं उस शक्तिको रूपशक्ति कहते है, और वस्तुभेदोंमे चलो तो यो मालूम पडेगा कि रूपपर्याय तो मूर्तिक है पर रूपशक्ति अमूर्तिक है। रूपशक्तिका ज्ञान ज्ञानपरिणमनसे होता है इसी कारण

हम जिस द्रव्यको जितने प्रकारसे जानन पर्यायमे देखते है, हम उसमे उतनी शक्ति वताते हैं। कोई भी पर्याय किसी भी पर्यायमे विशेप समझमे आये तो एक नई शक्ति और वना लेते है। पदार्थमे अनन्त शक्तियाँ है। कोई परिणति तुम विलक्षण जानो तो झट उसकी शक्ति मान लो। जो शक्ति है वह गुण है और उसका परिचय हमे पर्याय मुखेन होता है। उसी के द्वारा हम ज्ञान करते है। जो जाने वह ज्ञानशक्ति है। जो देखनेका काम करे वह दर्शनशक्ति है। जो अनाकुलताका काम करे वह आनन्दशक्ति है। इस तरह पुद्गलमे जो कृष्णादिरूप परिणमे वह रूपशक्ति है। जो खट्टा, कडुवा, मीठा आदि परिणमे वह रस शक्ति है और जो ठडा, गर्म, चिकना आदि परिणमे वह स्पर्श शक्ति है, जो सुगन्ध दुर्गन्धरूप परिणमे वह गन्धशक्ति है।

गुणोकी अभेदात्मकतासे द्रव्योंमे भेद—पर्यायज्ञानके द्वारा हम द्रव्योंके गुणोका ज्ञान करते हैं। ये ही गुण अभेदात्मकतासे एक असाधारण स्वभाव वनकर द्रव्यके दो भेद कर देते हैं कि यह जीव है और यह अजीव है। क्योंकि, वह द्रव्य स्वय उन द्रव्यो करके विशिष्ट है इसलिए वह स्वय ऐसी विशेपता रखता है क्योकि जिस-जिस द्रव्यका जो-जो स्वभाव है उस-उस द्रव्यका उस-उस स्वभावके वाचक शब्दोंकरि विशेपितत्व पाया जाता है।

भेदाभेदवाद-समस्याकी विवेचना—जीव हैं, सव चैतन्यस्वरूप हैं। उनके जाननेकी पद्धति एक अभेदवाद और एक भेदवाद है, सव तत्त्वोको पदार्थोको उनके एक साधारणस्वरूपसे देखने पर अभेदवादका दर्शन वना है कि सव कुछ एक अद्वैत है, चाहे ब्रह्माद्वैत कहो, चाहे ज्ञानाद्वैत कहो, चाहे चित्राद्वैत कहो, यह तो है अभेदवादका काम और भेदवादमे चलो तो व्यक्तिवाद या विशिष्टाद्वैत आता है, और उस व्यक्तिवादका और भी सीमातीत भेद करलें तो कुछ स्वरूप विलक्षण नजर आता है।

समवाय आदि सामान्य पदार्थमे अभिन्नता—स्वरूपभेदसे गुण अलग हो जाता है, क्रिया अलग हो जाती है। द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेप, समवाय, व अभाव ये ७ तत्त्व अलग हो गये। क्योकि कुछ तो भेद समझमे आया ना। जव कि जैन सिद्धान्त यह कहता है कि नही, सर्वत्र एक-एक ही विशेप द्रव्य है। गुण, क्रिया, सामान्य, विशेप, समवाय और अभाव ये पृथक् चीजें नही हैं। केवल एक चीज है, वह है द्रव्य। उसकी जो विशेषता है वह है गुण। द्रव्यकी परिणतिका नाम है क्रिया। उस द्रव्यमे अन्य द्रव्यके साथ जो मेलपना है उसका नाम है सामान्य, और सव द्रव्योको जुदा-जुदा कर देने वाली जो विशेपता है उसका नाम है विशेप। सव गुण तन्मयतासे रहते हैं इसका ही नाम है समवाय। आत्मामे अन्य चीज नजर न आये उसका नाम अभाव है। कही ऐसा नही है कि सामान्य पदार्थ अलग है, समवाय अलग हैं, गुण और क्रिया अलग हैं।

तद्भाव और अतद्भावकी समस्याओंका हल—भेदवादके लिए वैशेषिक बढ़े, तो अभेदके लिए अद्वैतवादी बढ़े। परन्तु तद्भाव और अतद्भावका परिचय करना सब समस्याओंका हल करना है। वैशेषिक दृष्टिसे गुण क्रिया अलग-अलग माना है। जो गुणका स्वरूप है क्या वह क्रियाका स्वरूप है? सो तो मानते हैं, कि नहीं है, किन्तु अतद्भाव होनेसे भिन्न-भिन्न है, प्रदेशकृत भेद नहीं, इसलिए सब एक है। जो गुण है वह द्रव्य नहीं है और जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। केवल अतद्भावकी अपेक्षा है। यह उस पदार्थके स्वरूपकी विशेषता है जिससे पदार्थ अपने स्वभावमय होते हैं। तो स्वभावमय अपनेको देखना, परसे हटना, अपने आपमें लीन होना, यही एक आनन्दका उपाय है। यहाँ तक द्रव्योंका मूर्तविशेष व अमूर्तविशेष गुणविशेषके कारण सिद्ध करते हुए इसी प्रकरणमें मूर्तगुणकी और अमूर्तगुणकी विशेषता भी बताई है। अब मूर्त गुण और अमूर्त गुणोंका लक्षणसम्बन्ध आख्यान करते हैं।

मुत्ता इ दियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविहा।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेयव्वा ॥१३१॥

मूर्त अमूर्तकी पहिचान—इसमें मूर्तगुणका और अमूर्त गुणका लक्षण सम्बन्ध बताते हैं। मूर्तगुण तो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होता है किन्तु अमूर्त इन्द्रियोंके द्वारा विषयभूत नहीं होता है। इसलिए मूर्त और अमूर्तको इन्द्रिय व अनिन्द्रियका विषयपना कहा गया है। जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहणके योग्य हैं सो मूर्त है। अमूर्तपदार्थ व सूक्ष्म स्कंध इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें नहीं आते मगर सूक्ष्म स्कन्धमें भी योग्यता है कि वे कभी इन्द्रियगोचर हो सकते हैं। जो इन्द्रियग्राह्य हैं वे मूर्त हैं। यह मूर्तगुण कैसा होता है और अमूर्तगुण कैसा होता है? मूर्तगुण तो पुद्गल परिणामात्मक होता है और वे नाना प्रकारके हैं। अमूर्त द्रव्यमें अमूर्तगुण होता है। पुद्गलद्रव्यके सिवाय जितने भी बाकी द्रव्य हैं वे सब अमूर्त हैं। पुद्गलमें इस समय गुणके पर्याय तो मूर्तिक हैं यह स्पष्ट है पर उन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो शक्ति है उस शक्ति को भी तो मूर्त कहा गया है। शक्ति तो इन्द्रियग्राह्य पुद्गल द्रव्यमें नहीं है, जो गंधशक्ति है, वर्णशक्ति है, रसशक्ति है, स्पर्शशक्ति है वह इन्द्रिय- ग्राह्य नहीं है। पर जिस शक्तिकी परिणति इन्द्रियग्राह्य है वह मूर्त है, तो उन गुणोंको भी मूर्त कहते हैं। क्योंकि अमूर्तगुणमें मूर्तविकास नहीं हो सकता है इसलिए मूर्तविकासके स्रोतभूत उन शक्तियोंको भी मूर्त कहते हैं।

शक्तियाँ इन्द्रियगम्य नहीं, व्यक्तियाँ इन्द्रियगम्य—शक्तियाँ जो इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं हैं वे भी ज्ञानद्वारा ग्राह्य हैं। काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, जो गुण पर्यायें हैं वे पर्याय इन्द्रियों द्वारा जानी जाती हैं किन्तु इन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो रूप आदि शक्ति है वह शक्ति इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जानी जाती है। परन्तु, मूर्त

पर्यायका स्रोत है मूर्त और अमूर्त पर्यायका स्रोत है अमूर्त। अमूर्तमे केवल ज्ञानादिक पर्यायमे आती है वे अमूर्त द्रव्यकी होती है यहाँ गुणशब्द केवल गुणके लिए नहीं है और न केवल पर्यायके लिए है किन्तु सारे कथनमे गुण भी और पर्याय भी सब एक दृष्टिमे रहते हुए वर्णन हैं। जो स्पष्ट पकडमे आ जाय वही वर्णन लिया जाता है। इस तरह मूर्तगुण तो केवल पुद्गलद्रव्यमे है और अमूर्तगुण है सो वाकी जीवादिक ५ द्रव्योंमे है।

द्रव्यके गुणोंका दिग्दर्शन—यह वर्णन करके अब मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उस पुद्गल द्रव्यके गुणोको बताते है। स्पर्श, रस, गध, वर्ण, ये इन्द्रियग्राह्य हैं। मनके द्वारा तो इन चारोंके बारेमे विशेषज्ञान किया जा सकता है विशेष ज्ञान क्या है कि वह इन्द्रियविषय नही है, वह मनका विषय है और जो उन पर्यायोके बारेमे विशेष वितर्क चलता है वह श्रुत है। इसलिए वह मनका विषय है तो वह स्पर्श, रस, गध, वर्ण इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य है उनमे प्रकट होता है। उनकी उनमे शक्ति है। इस कारण कितने ही स्कधोके गुण इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमे भी आते है फिर भी एक द्रव्यमे लेकर और अनेक द्रव्योके पिण्ड तक अर्थात् परमाणुसे लेकर और अनेकद्रव्यात्मक स्थूल पर्यायो तक, स्कधतक परिणामोमे सामान्यरूपसे ये विशेष गुण पाये जाते हैं। परमाणु है उनमे भी रूप रस, गध, स्पर्श है। यही मूर्तिपना है और वह पुद्गल द्रव्यमे पाया जाता है। वे मूर्तिस्वरूप है, शेष द्रव्योमे मूर्तिकता सम्भव नही। रूप, रस, गध, स्पर्श ये पुद्गलको ही जताते है। जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाया जाय उसे पुद्गल कहते हैं।

मूर्त अमूर्त द्रव्योमे विशेषता—पुद्गलका लक्षण है पूरण और गलन। जो गल जाय और मिल जाय सो पुद्गल है। परमाणु परमाणु मिलकर पिंड बन जाते है। अमूर्त चीजें मिलकर पिण्डपर्याय नही बनते, पर अनेक पुद्गल मिलकर स्कध बनता है। जैसे यह चौकी है, अनेक पुद्गल परमाणुओका पिण्ड है। कोई ऐसा नहीं है जो दो जीवोंसे मिलकर बनता हो। परमार्थत मिलकर तो परमाणु भी एक बनता नही है, पर जो पर्याय व्यजनपर्याय है उसकी बात कहरहे है।

व्यजन पर्यायमे भी द्रव्योंकी स्वतत्रता—जीव, पुद्गलकर्म और नोकर्म, इन तीनोके पिण्डमे व्यजनपर्याय बन जाती है पर परमार्थसे वह भी जुदा-जुदा है। पर वहाँ दृष्टि न देकर बोल रहे हैं, जैसे मनुष्य बन गये, पशु बन गये, पक्षी हो गये, यहांपर भी जीव अजीव मिलकर एक पर्याय बन जाते हो सो नहीं हो सकता है। उनका सम्बन्ध भी नही होता। वे सब जीवोकी पर्यायें है, वहाँपर भी व्यक्तरूपसे भिन्न-भिन्न है। यद्यपि एक शरीरके स्वामी अनन्त निगोदिया जीव हैं, पर उन अनन्त निगोदिया जीवोकी परिणति भी प्रत्येक जीवोमे पूर्ण रूपसे भिन्न परिणमती है।

पूरण और गलन पुद्गलद्रव्यमें पाये जाते हैं, जीवमें नहीं पाये जाते हैं। एकमेकहो गये, भिन्न-भिन्न हो गये, ये बातें पुद्गलमें हे।

प्रत्येक जीवकी भिन्नता—देखो भैया, जीवके साथ जीवका तो बिल्कुल ही सम्बन्ध नहीं है। व्यवहारमें भी सम्बन्ध नहीं, पुद्गल पुद्गलमें तो व्यवहार सम्बन्ध है कि कोई पुद्गल मिल गये, लो पिण्ड हो गया। अब इसको उठाकर धरेंगे तो सभी एक साथ चलेंगे। यह पिण्डपना पुद्गलमें है पर जीवका जीवके साथ इतनी भी बात नहीं है जितनी कि पुद्गल पुद्गलमें मित्रता है। जीवका जीवके साथ जरा भी सम्बन्ध नहीं है, मगर मोही जीवोंके लिए जीवका परिग्रह बहुत विकट परिग्रह लगा है। अचेतन परिग्रहसे तो थोड़ा-बहुत गम खा सकते है पर चेतनसे नहीं, जिस चेतनका रंच भी सम्बन्ध नहीं। यह जो दृश्य है वह तो पुद्गल है। जिसमें पूरण और गलन हो उसे पुद्गल कहते हैं। उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य हैं।

शब्दका स्वरूप तथा द्रव्य, गुण और पर्यायोंका विश्लेषण—कोई प्रश्न करे कि जैसे स्पर्शादिक इन्द्रियग्राह्य गुण है वैसे शब्द इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर वह क्यों गुण नहीं कहलाता है? उत्तर—शब्द भाषावर्गणाके अनेक द्रव्योंसे मिलकर पुद्गल पर्याय है, ऐसी ही विचित्रता है, यह शब्द कर्णद्वारा तो विषय होता है किन्तु यह गुण नहीं है, द्रव्यपर्याय है। शब्द पुद्गल द्रव्यमें सदा नहीं पाये जाते हैं जैसे कि रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श गुणकी रूक्ष, स्निग्ध शीत और उष्ण ये चार पुद्गलकी खास पर्यायें हैं, हल्का और भारी, कोमल और कठोर ये पर्यायें नहीं हैं, मगर जो स्कंध बन गया उसमें हल्का भारी कोमल कठोर पाया जाता है सो यह स्कन्धकी परिणति है। हल्का-भारी सापेक्ष परिणति हे। यह एकको परिणति नहीं है। द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है किन्तु सापेक्ष परिणति है। इसी प्रकार कोमल और कठोर। यह भी पुद्गल द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है परन्तु पुद्गलोंकी मिली जो पर्याय होती है वहाँ कोमल कठोर भी सापेक्ष परिणति हो जाती है। पुद्गलकी जो चार पर्याय हे वे और रूपकी जो ५ पर्याय हैं काला, पीला, नीला, लाल, सफेद और गन्धकी दो पर्यायें हैं सुगन्ध और दुर्गन्ध तथा रसकी ५ पर्यायें हैं, खट्टा, मीठा, कड़ुवा, चरपरा और कषायला ये गुण पर्यायें हैं, और शब्द जो सुननेमें आते हैं, ये गुणपर्याय नहीं हैं, द्रव्यपर्याय हैं, द्रव्यका संयोग-वियोग होनेपर, द्रव्यमें क्रिया होनेपर, परिस्पन्द होनेपर शब्दपर्याय उत्पन्न होती है और गुणपर्याय परिस्पन्द बिना होरही है। शब्द-इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर भी गुण नहीं है किन्तु पर्याय है। शब्दको अनेक-द्रव्यात्मक रूपसे माना है। इस तरह पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाये जाते हैं।

भावात्मक साधना द्वारा भावात्मक अनुभूति—वस्तुका विस्तृत स्वरूप भेद विज्ञानमें काम आता है। मैं आत्मा एक ज्ञानस्वरूप हूँ, सब पुद्गलोंसे भिन्न हूँ। जब

भी ज्ञान और आनन्दकी अनुभूति होती है, तब भावात्मक साधनामे भावात्मक आत्माकी भावात्मक ही अनुभूति होती है उसका किसी भी पुद्गलस्कन्धसे सम्बन्ध नही। कभी शरीरमे फोडा-फुन्सी हो जाय और उसके कारण बडा दर्द होवे, पीड़ाका अनुभव हो, तो वह पीडा भीतर हो रही है, वह भावात्मक है, पुद्गलपरिणामात्मक नही है। दर्द होरहा है, दु ख होरहा है, वह भावात्मक चीज है, लेकिन कोई कहे कि फोडा नही हुआ तो इतनी वेदना क्यो उठी? उत्तर—यह फोडा ही तो वेदना नहीं है। यह फोटेकी वेदना नही है, भीतर की है। मगर, भीतरकी वेदना इस प्रकारके ढगकी है कि शरीरमे फोडाका आश्रय करके उसका विकल्प करके वडी वेदना वनती है, पीडा वन जाती है। वेदना भीतरमे निकलती है इसलिए समयसारमे वेदनाका वर्णन किया है। उसमे लिखा है कि यह ज्ञान वेदा जाता है सो यही ज्ञानकी वेदना है, यह अचल ज्ञान है, स्वय वेदा जाता है, परन्तु मोही जीव उस फोडाके रूपको ही भ्रमवश वेदना कहते है। वेदना विद्धातुसे वना है जिसका अर्थ जानना है।

सुख-दु ख मात्र ज्ञानवेदना—जो ज्ञान वेदा जाता है वह वेदना कहलाता है। सुख दु ख क्या है ? ये सव ज्ञान होनेकी कलाएँ हैं। कैसा ज्ञान कर लिया कि सुख-शान्तिका अनुभव हुआ और कैसा ज्ञानकर लिया कि दु खका अनुभव हुआ। सुख-दु ख इन्ही दो प्रकारकी ज्ञानकी कलाओपर निर्भर है। अभी किसी शहरमे किसीका वडा व्यापार चलरहा हो और जिसमे लाखोका टोटा आ गया हो और उसके ज्ञानमे यह न आया हो व टोटेके स्थानपर यदि मुनाफा उसे वताया गया हो तो वह वडा सुखका अनुभव करता है। और यदि चाहे हुआ हो मुनाफा, पर उसे पता लग जाय कि टोटा पड़ गया तो वह दु खी हो जाता है। भाई, ये सुख-दु ख उसे क्या वनने आये ? अथवा क्या किसी कम्पनीसे सुख-दु ख आये ? वस्तुत ये सुख-दु ख वन या कम्पनी आदिमे नही आए, किन्तु उसने अपनेमे स्वय किसी कारण इस प्रकारका ज्ञान वनाया कि दु खी हो गया। यह दु ख-सुख सामग्री व निमित्तपर निर्भर नही, किन्तु ज्ञानपर ही निर्भर है।

सयोग व स्वभावका ज्ञान दु ख और सुख—किसी जीवके इष्टका वियोग हो गया, परिवारका मरणरूप वियोग होगया तो उसके वारेमे वड़ी आकुलताएँ होती हैं। समझाने वाले लोग यह कोशिश करते हैं व ऐसी ज्ञानकी वातें करते हैं जिसमे उनके दु खकी ओर झुकानेवाले ज्ञानकी दिशा वदल जाय। ऐसा करनेके लिए उनके अनेक उपाय होते हैं। जैसे मनोरजनके साधनोमे उसे ले जाना, आदि-आदि इन सव उपायोमे प्रयोजन मात्र उसकी दिशाको वदलनेका होता है, वे जानते हैं कि यह मोही वियोगजन्य ज्ञान करके दुखी है, यदि इसे वियोगके स्वरूपका ऐसा ज्ञान पिलाया जाय जिसे पीकर इसका मोह निर्मोहरूपमे वदल जाय तो वह सुखी हो जायगा। अत वे समझाने वाले

उसे समझाते है कि वह तुम्हारा कुछ नही था। सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं। अपनी-अपनी करनीसे सब सुख-दु ख पाते हैं। अपनी ही करनीसे चौरासी लाख योनियोंमे भ्रमण करते रहते हैं। किसी जीवका किसी जीवसे क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार वह ज्ञान को बदल देनेसे ही निर्मोहताके ज्ञानमे सुखी हो जाता है। देखो भैया, एक ज्ञानसे ही सुख हो जाय और एक ज्ञानमे ही दु ख हो जाय। सुख और दु खका मात्र एक ज्ञानकी विभिन्न परिस्थिति ही कारण है। सुखी होनेके लिए केवल अपने ज्ञानके ढगको बदलना है। और कुछ बाहरी चीजोको उठाकर नही रखना है। किन्ही बाहरी चीजोका सचय नही करना है, किसीका सुधार बिगाड नही करना है। केवल ज्ञानके ढगको बदलना है। जो मोहके ढगका ज्ञान है उसे निर्मोहितामे बदलना है। ये पर पदार्थ मेरे है, मैं अमुकमे यो करता हूँ, मैं अमुकमे यो कर दूँगा, इस प्रकारसे सयोगी पदार्थोके स्थाईपनेका ज्ञानसम्बन्ध चल रहा है, वही ज्ञान दु खका कारण होरहा है। अत शान्तिके लिए ज्ञानकी दिशा बदलना है। इस मिथ्या ज्ञानको बदले बिना दु ख नही मिट सकता है। कितना ही प्रयत्न करते जाओ, बिना मिथ्यात्वके बदले दु ख नही मिटाया जा सकता। कितना ही प्रयत्न करते जावो बिना मिथ्यात्वके बदले सकटोमे मुक्ति नही प्राप्त हो सकती है। अच्छा, बतलाओ भैया! कि आपके पास कितने लाख रुपये हो जायें तो आपको सुख मिल सकता है, मिलजुल कर, कमेटी बनाकर निर्णय करके बता देना। अरे भैया, सुख धन वैभवमे नही मिल सकता है। सुख तो आत्माके आनन्द गुणका परिणमन है। इस प्रकारका ज्ञान करो कि ज्ञान परिणति आनन्दरूप बन जाय तो सुख प्राप्त हो जायगा।

ज्ञान और आनन्दका अविनाभाव सम्बन्ध—ज्ञान और आनन्द आत्माके अविनाभावी हैं। सुख लेना है, आनन्द लेना है, तो हमे ज्ञानका सत्य उपयोग करना चाहिए। अपने ज्ञानका सही-सही उपयोग करलो, लो दु ख मिट गया। मिथ्या ज्ञान है तो दु ख होगा। इस कमरे मे कुछ अँधेरे-उजेले मे साँपके आकारकी एक रस्सी पडी है, उसके देखते ही यह ध्यान बन जाय कि यह साँप है, ऐसा मिथ्या ज्ञान हो जाय तो व्याकुल हो जायेंगे ना। तब हम विचारते हैं कि कही ऐसा न हो जाय कि घरके किसी व्यक्तिको यह काट ले। सो लोगोको बुलाने लगे, इस प्रकारका ध्यान बन गया, लो दु ख हो गया। कुछ क्षण पश्चात् सोचा कि जरा देखें तो कि वह कौनसा साँप है? कैसा है? किस जातिका है? आगे बढकर देखने लगे तो ऐसा बोध आया कि यह तो सर्प प्रतीत नहीं होता। जरा और आगे बढे तो निश्चय हुआ कि यह तो कोरी रस्सी है। रस्सीका सही-सही ज्ञान हो जानेमे सकट मिट गए। देखो पहिले भी क्या साँप का सकट आया था? अरे केवल अपने भाव बनाकर सकट बना लिया था।

परिस्थितियोका मिथ्याज्ञान ही दु ख—मानलो कि कैसी भी परिस्थिति हो,

कुछ आर्थिक परिस्थिति खराब हो, कैसी ही कठिनाइयोंका गुजारा होरहा हो, पर कठिनाइयोंकी ओर मेरा लक्ष्य न हो तो मुझे दु खका अनुभव नही होता। किन्तु, यदि ऐसा सोचें कि आगे कैसा गुजारा होगा, बस, इस कल्पनाजगतके हो जानेपर अपने ऊपर मोहीजन दु खका बोझा लाद लेते है।

पारिवारिक समस्याओंका चिंतासे सुलझनेका अभाव—परिवारकी हम क्या चिंता करें। स्वय उनके साथ कर्म है। उनका जैसा पुण्य पाप है तैसी हो उनमें लोक व्यवस्था बनेगी। उनपर मेरा क्या अधिकार है एक तो यह बोध करना योग्य है और दूसरा यह बोध्य है कि हम कदाचित् कितने ही धनी हों तो भी काम चल सकता है और धनी न हो तब भी काम चल सकता है। दूसरोंको भी तो देखते हो कि वे कम धनी है, अथवा गरीब है तो क्या उससे उनका गुजारा नहीं हो रहा है ?

सुखाकाक्षीके परिस्थितियोंकी उपेक्षा—तीसरी बात यह सोचो कि जैसा भी गड़बड़-सड़बड़ काम चलता हो, कितनी भी तकलीफ हो, कितने भी सकट आते हों पर तुम्हारा काम यह है कि तत्सम्बन्धी सत्यज्ञानका उपयोग रखो, सत्य श्रद्धान रखो व सारी बाते सही-सही जानो। यह निश्चय हो कि मेरा स्वभाव केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने का है, इसके आगे मेरा स्वभाव नही। मेरा खाने-पीनेका स्वभाव नही, कोई भी अन्य स्वभाव नहीं। लोग कहते हैं कि लोककी सारी चीजें मिट जावेंगी, उनकी हम क्या फिक्र रखें ?

ज्ञानके विकासमे मनुष्यभवकी विशेषता—मेरा मुख्य काम तो आत्मकल्याणका है जो किसी भवमें नहीं हो सकता। आत्मकल्याणका समर्थ साधन केवल एक मनुष्यभव है, इसीमे मैं आत्महित कर सकता हूं। देखो भाई, सम्यग्दर्शन किसीभी जीवके उत्पन्न हो सकता है। चाहे तिर्यंच हो, चाहे नारकी हो, चाहे देव हो, चाहे मनुष्य हो, सैनी हो, सबके सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, आत्महितका मूल सिद्ध हो सकता है पर सम्यग्ज्ञानका अधिक विकास मनुष्य ही कर सकते हैं। सम्यक्चारित्रको मनुष्य ही उत्पन्न कर सकता है। सो परम हित मनुष्य ही कर सकता है। मनुष्यभव एक ऐसा भव है कि चाहे कितना ही आत्महित करलो। मेरा जीवन आत्महितके लिए है। ऊंची व्यवस्था बनाने, ऊंचा हिसाब-किताब रखनेके लिए नही है।

परमे कर्तृत्ववृत्तिकी उपेक्षा—चौथी बात यह है कि कमाई अपने करनेसे कहीं बढ नही जाती है, धन नहीं बढ जाता है। वह तो बढना होगा तो बढेगा। चिंता करो तो क्या, न करो तो क्या। ऐसे कुछ ज्ञान विकासके द्वारा हम अपने ऊपरका बोझा कम करें और आत्महितके मार्गमे अधिक लगें।

आत्महितकी प्रेरणा - यह मैं ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ, इस मुझको ऋषिजन कहते है चिन्मात्र। पक्षियोंके बच्चे होते हैं उनको बुन्देलखण्डमे चेनुवा बोलते हैं।

छोटा बच्चा हो, जिसके पर न आये हो, शरीरका ढाँचा मात्र आ गया हो उसे चेनुवा बोलते हैं। ऐसा वह बच्चा है कि चल नही सकता है। कोमल शरीर है तो उसे चेनुवा कहते हैं। चेनुवाके माने क्या है? इसका भाव यह है कि शरीरकी दृष्टि तो गौण करदें, फिर देखें तो कहेंगे कि यह तो केवल जीव ही जीव है, चिन्मात्र है, शरीर नहीं है। यद्यपि शरीर है पर वह काम नही कर सकता है सो कहते हैं लोग कि अभी तो केवल इसके जीव ही जीव है, ऐसा नजर करते हैं। तो व्यवहारमे ऐसा बोला ही जाता है। जैसे किसीसे कोई काम कराओ, आधा वृथा काम कर लिया तो उसे बोलते हैं कि इसने तो काम किया ही नहीं। काम किया है पर "नही किया" ही बोलते हैं। इसी तरह उस चेनुवाके माने चिन्मात्र है, कुछ शरीर नहीं है, वह चेनुवा शब्द चिन्से बना हुआ है। निजमे इस चिन्मात्र को देखो पर्यायको गौण करके सब चैतन्यात्मक पर्यायोंके स्रोतभूत जो एक चैतन्य शक्ति है वह मैं हूँ। मैं इतना गुप्त हूँ कि कि शरीरकी पर्तको छोडकर चलूँ, भावकर्म तोड कर चलूँ, जो नाना विकल्प हैं, कल्पनाएँ हैं उनको तोड-फोड कर चलूँ और जो शुद्ध परिणमन है ज्ञान विकास, यदि उससे भी पार हो कर चलूँ तो उस ज्ञानके द्वारा अपना चैतन्य स्वरूप आत्मतत्त्व मेरी पकडमे आता है। ऐसा यह मैं चैतन्यतत्त्व स्वय प्रभु हूँ। इस मर्मको भूल गया तो नाना प्रकारकी खोटी परिणतियाँ होरही हैं। अब यह करने चलो कि सब बातोकी उपेक्षा करते जाओ, लडाई-झगडा छोडो, राग-द्वेष छोडो, कुछ विशेष लक्षण अपनेमे लावो, अपने स्वयके ज्ञानका अभ्यास करो और अपना निर्णय करलो कि वास्तवमे मैं क्या हूँ? जो मैं हूँ उसे दुनिया नही जानती है। जब मुझे दुनिया नही जानती है तो किससे मेरी शत्रुता और किससे मेरी मित्रता। अर्थात् कौन मेरा शत्रु और कौन मेरा मित्र? वे सब कुछ नही। और, यदि दुनिया मुझे जान जाती है तो जब चिन्मात्र ज्ञायकस्वभावमात्र आत्मतत्त्व हू। ऐसे मुझको किसीने पहिचान लिया तो बस, यही उसका मोक्षका मार्ग है। मुझसे फिर नाता कैसा? वे नाता तोडकर ही बढ रहे हैं, उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध क्या? उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नही है। मैं एक आत्मतत्त्व हूँ, सहज परमात्मतत्त्व हूँ। इस तरहकी अपने आपसे पहिचान हो, अपने-आपमे लगन हो तो अपना कल्याण है। नही तो ससारमे भटकना ही बना रहेगा। यहाँ वस्तुस्वरूपका वर्णन चल रहा है। इस गाथामे मूर्त व अमूत गुणोका विचार करके अब मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उसके गुणोको विवृत करते हैं—

वण्णरसगंधफासा विज्जते पुग्गलस्स सुहुमादो।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो ॥ १३२ ॥

पुद्गल द्रव्यमे सूक्ष्मसे लेकर स्थूल तक अर्थात् सूक्ष्मसे हुए परमाणु और

स्थूलमे हुई पृथ्वी तक सबमे वर्ण, रस, गंध और स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श, रस, गंध और वर्णमे ये इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हैं।

वर्णादिगुणोंकी तारतम्यताका द्योतक श्रुतज्ञान—इन्द्रियोंमे जाने हुए वर्ण गुणके तारतम्यको श्रुतज्ञान बतलाता है। उसका रंग विशिष्ट काला है, उसका रूप कम काला है, इस प्रकारका ज्ञान करना श्रुतज्ञानका विषय है। या यूं समझलो कि जैसे एक छोटा बालक या तत्काल पैदा हुआ बालक आंखे खोलनेपर सब कुछ देखता तो है, पर देखे हुए पदार्थोंको वह कह नहीं सकता। कि यह काला है, यह पीला है, न काले, पीलेका उसे विकल्प है। अन्य वर्णादिके विशेषोंका कथन करना श्रुतज्ञानका कार्य है, और वर्णादिका सामान्य ज्ञान, यह मतिज्ञानका विषय है। श्रुतज्ञान सविकल्प होता है। स्पर्शादिका ज्ञान जो मतिज्ञानने जताया, उसका विशेष श्रुतज्ञानने जाना। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य है। इन्द्रियोंसे ग्राह्य होनेके व्यक्तिकी शक्ति होनेसे वह परमाणुतक भी जो अतिसूक्ष्म है, मूर्त माना गया है।

इन्द्रिय आग्राह्य परमाणु मूर्तिमान क्यों?—परमाणु यद्यपि इन्द्रियग्राह्य नहीं है, पर परमाणु स्कन्धमे हो जानेपर इन्द्रियग्राह्य हो जाता है। इन्द्रियग्राह्य हो जानेकी उसमे शक्ति है। इस कारण गृह्यमाण हुआ हो या अगृह्यमाण हुआ हो, समस्त पुद्‌गल द्रव्य मूर्तिक ही होते है।

विश्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थोंका समूह—सूक्ष्म और स्थूलका आशय यह है कि सबसे सूक्ष्म परमाणु है, परमाणुसे सूक्ष्म और कुछ नहीं। और उससे स्थूल है कर्म, कार्माण-वर्गणायें व ज्ञानावरणादिककर्म ये स्थूल चीजें हैं, इनसे स्थूल है चार इन्द्रियोंके विषय, रस, गंध, स्पर्श और वर्ण। उससे स्थूल है छाया। छाया यही जो यहाँ पड रही है, उससे स्थूल है पानी। और पानीसे स्थूल है यह पृथ्वी, पिंड आदि। इन सबमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार चीजे पायी जाती है। जैसे कि सिद्ध भगवानमे जो अनंत-ज्ञानादिक चतुष्टय है वे यथा सम्भव सब जीवोंमे साधारण हैं। ठीक इसी प्रकार स्पर्श, रस, गंध वर्ण, ये चारों सब पुद्‌गलोमे पाये जाते हैं। किसीमे जघन्य डिग्री है तो किसीमे उत्कृष्ट डिग्री है, मुक्त जीवोंमे जो अनन्त ज्ञान आदि चतुष्टय हैं वे इन्द्रिया-गोचर है, ज्ञानगम्य है। इसी प्रकार शुद्ध परमाणु द्रव्यमे जो वर्णादिक चार गुण हैं वे भी अतीन्द्रिय ज्ञानके विषय है, अनुमानगम्य है और आगमगम्य हैं।

पुद्‌गलादि द्रव्योंका तुलनात्मक अध्ययन—यहाँ पुद्‌गलका वर्णन चल रहा है। इस वर्णनमे आध्यात्मिकता प्रकट होती जाय इस शैलीसे तुलना करते जाइये। जिस प्रकार वर्णादिक सब पुद्‌गलमे हैं उसी प्रकार ज्ञानादिक भी सब जीवोंमे हैं। जैसे मुक्त जीवोंमे अनन्तज्ञान पाया जाता है पर उसे सीधा नहीं बताया जा सकता। वह अनु-

मान गम्य है। इसी तरह जो परमाणुमे रूप, रस गध, वर्णादिक पाये जाते हैं वे अतीन्द्रिय ज्ञान गम्य हैं।

द्रव्योका सामान्य निरूपण—अब द्रव्योंका सामान्य निरूपण किया जाता है। जैसे यह परमाणु है, स्निग्ध, रूक्ष गुणके कारण स्कध पर्यायके वन्धनमे आता है तो अशुद्ध हो जाता है,इन्द्रियगम्य हो जाता है। परमाणुके वर्णादिकचारो गुण इन्द्रियगम्य नही हैं, केवल ज्ञानसे जाने जाते हैं। पर वे ही परमाणु जव वन्धनमे आ जाते हैं तो वे परमाणुके चारो गुण इन्द्रियगम्य होजाते हैं। इसी प्रकार ससारी जीवके ज्ञान, दर्शन, शक्ति और सुख ये अतीन्द्रिज्ञानगम्य हैं। रागादिकके निमित्तसे, कर्मवन्धनके वशसे ये त्रिपुटीके पिण्ड वन जाते हैं, याने कर्म, भावकर्म व द्रव्यकर्मकी त्रिपुटीरूप हो जाते हैं और इसी वजहसे जीव अशुद्ध हो जाते हैं। और वे अनन्तज्ञानादिक शक्तियाँ विकृत हो जाती हैं। और जव रागादिक स्नेहरहित शुद्ध आत्माका ध्यान हो तो वह शुद्ध हो जाता है, शुद्ध आत्मतत्त्वके ज्ञानसे शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार वर्णादिक जो चार प्रकारके हैं उनमे स्निग्ध आदिके एकपनेका अभाव होगा तो वन्धन होता किन्तु एकत्व मात्र होनेपर वध नही होता। परमाणुकी अवस्थामे आयेंगे तो वे शुद्ध हो जाते है। उपरोक्त विवेचनासे हमे यह सोचना है कि हम किस प्रकारका ध्यान करें कि शुद्ध हो जायें। किसका ध्यान करनेसे हम शुद्ध वन सकते हैं? अरे भाई, शुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध वन सकते हैं। अशुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध नही वन सकते हैं।

शुद्धके उपयोगसे, आलम्वनसे ही शुद्धि—हम शुद्ध होनेका प्रोग्राम वनायें और अशुद्ध तत्त्वका उपयोग करें तो हम शुद्ध नही वन सकते हैं। प्रोग्रामके अनुसार उपयोगमे ही हम शुद्ध हो सकते है। कैसे शुद्धके ध्यानसे हम शुद्ध वन सकते हैं? सिद्धभगवान व अरहंत देव है, इनका जो विशुद्ध परिणमन है, या उसके अनुकूल जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, उसीके ध्यानसे हम शुद्ध हो सकते हैं,किन्तु सिद्ध भगवान और अरहन्तदेव परद्रव्य हैं, अपने कार्यके लिए जो यावन्मात्र पर हैं उन्हे हम अशुद्ध मानते है। अत पर तत्त्वका जो जीव आश्रय करेगा वह शुद्ध कैसे वनेगा? सिद्ध भगवान यद्यपि परमात्मासिद्ध है किन्तु वे है तो पर अत पर पदार्थरूपी सिद्ध या अरहत प्रभुका ध्यान किया तो ध्यान करनेवाला ध्याता और जिसका ध्यान किया वह ये दोनो भिन्न-भिन्न परतत्त्व हो गये।

लम्बाई खीचकर अपना उपयोग वहाँ रखे। ऐसी स्थितिमे सत्यता नहीं प्रकट होती। पुण्य तो वढ़ेगा मगर आत्मत्वसिद्ध नही होगा। शुद्धके ध्यानसे ही शुद्धका उपयोग होता है। फिर भी जितने अशमे राग है उतने अशमे वन्ध है और जितने अशमे उसके शुद्ध आत्मस्वरूपका सस्कार है, भावना है उतने अशमे विकाश है। यहाँ जो जीव शुद्ध होना चाहता है वह परका ध्यान न करे। परके ध्यानसे

मान गम्य है। इसी तरह जो परमाणुमें रूप, रस गंध, वर्णादिक पाये जाते हैं वे अतीन्द्रिय ज्ञान गम्य हैं।

द्रव्योंका सामान्य निरूपण—अब द्रव्योंका सामान्य निरूपण किया जाता है। जैसे यह परमाणु है, स्निग्ध, रूक्ष गुणके कारण स्कंध पर्यायके बन्धनमें आता है तो अशुद्ध हो जाता है, इन्द्रियगम्य हो जाता है। परमाणुके वर्णादिकचारों गुण इन्द्रियगम्य नहीं हैं, केवल ज्ञानसे जाने जाते हैं। पर वे ही परमाणु जब बन्धनमें आ जाते हैं तो वे परमाणुके चारों गुण इन्द्रियगम्य होजाते हैं। इसी प्रकार संसारी जीवके ज्ञान, दर्शन, शक्ति और सुख ये अतीन्द्रिज्ञानगम्य हैं। रागादिकके निमित्तसे, कर्मबन्धनके वशसे ये त्रिपुटोके पिण्ड बन जाते हैं, याने कर्म, भावकर्म व द्रव्यकर्मकी त्रिपुटीरूप हो जाते हैं और इसी वजहसे जीव अशुद्ध हो जाते हैं। और वे अनन्तज्ञानादिक शक्तियाँ विकृत हो जाती हैं। और जब रागादिक स्नेहरहित शुद्ध आत्माका ध्यान हो तो वह शुद्ध हो जाता है, शुद्ध आत्मतत्त्वके ज्ञानसे शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार वर्णादिक जो चार प्रकारके हैं उनमें स्निग्ध आदिके एकपनेका अभाव होगा तो बन्धन होता किन्तु एकत्व मात्र होनेपर बंध नहीं होता। परमाणुकी अवस्थामें आयेंगे तो वे शुद्ध हो जाते हैं। उपरोक्त विवेचनासे हमें यह सोचना है कि हम किस प्रकारका ध्यान करें कि शुद्ध हो जायें। किसका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते हैं? अरे भाई, शुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते है। अशुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध नहीं बन सकते हैं।

शुद्धके उपयोगसे, आलम्बनसे ही शुद्धि—हम शुद्ध होनेका प्रोग्राम बनायें और अशुद्ध तत्त्वका उपयोग करें तो हम शुद्ध नहीं बन सकते हैं। प्रोग्रामके अनुसार उपयोगसे ही हम शुद्ध हो सकते हैं। कैसे शुद्धके ध्यानसे हम शुद्ध बन सकते हैं? सिद्धभगवान व अरहंत देव है, इनका जो विशुद्ध परिणमन है, या उसके अनुकूल जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, उसीके ध्यानसे हम शुद्ध हो सकते है, किन्तु सिद्ध भगवान और अरहंतदेव परद्रव्य है, अपने कार्यके लिए जो यावन्मात्र पर हैं उन्हें हम अशुद्ध मानते हैं। अतः पर तत्त्वका जो जीव आश्रय करेगा वह शुद्ध कैसे बनेगा? सिद्ध भगवान यद्यपि परमात्मासिद्ध है किन्तु वे हैं तो पर अतः पर पदार्थरूपी सिद्ध या अरहंत प्रभुका ध्यान किया तो ध्यान करनेवाला ध्याता और जिसका ध्यान किया वह ये दोनों भिन्न-भिन्न परतत्त्व हो गये।

लम्बाई खींचकर अपना उपयोग वहाँ रखे। ऐसी स्थितिमें सत्यता नहीं प्रकट होती। पुण्य तो बढ़ेगा मगर आत्मत्वसिद्ध नहीं होगा। शुद्धके ध्यानसे ही शुद्धका उपयोग होता है। फिर भी जितने अंशमें राग है उतने अंशमें बन्ध है और जितने अंशमें उसके शुद्ध आत्मस्वरूपका संस्कार है, भावना है उतने अंशमें विकाश है। यहाँ जो जीव शुद्ध होना चाहता है वह परका ध्यान न करे। परके ध्यानसे

थोडा ही करते हैं। आत्महितके लिए जैसा ज्ञान गृहस्थका है वैसा ही ज्ञान साधुका है। अन्तर केवल चरित्रका पड जाता है। उसमे आनन्दका अन्तर हो जाता है।

ज्ञानसामान्यमे ज्ञानकी वृद्धि और विशेषज्ञानमे ज्ञानकी घटती—आत्मीय ज्ञान गृहस्थको झलक मात्र ही होता है, वह छक कर आनन्द लूट नहीं पाता है। और, साधु छककर आनन्द लूट सकता है। इस आनन्दके उदाहरणके लिए एक घटनापर विचार करो, जैसे कोई गरीब मनुष्य बाजारसे एक आनेका पेडा ले आया जो परिमाण मे बहुत थोडा आया उसने उसे खा कर पेडाके स्वादका आनन्द लिया और दूसरे एक सेठने २ रु० के पेडा मगाये जो मात्रामे अधिक आये। अब उसने छक कर खाये। दोनोंके पेडा खानेमे मात्राका अन्तर है, पेडा नामके पदार्थके स्वादके परिचयका अन्तर नहीं। अब साधारण व्यक्ति व धनिक व्यक्तिके न छकनेका व छकनेका अन्तर पडा। इसी प्रकार साधु आत्मतत्त्वका दर्शन करते समय जो अनुभव करता है उसको बहुत आनन्द आता है पर एक गृहस्थ कभी अपने आत्मतत्त्वका जो अनुभव करता है वह छककर नहीं अनुभवता है। आया और गया, फिर उसका उपयोग बदल गया। तो अपने आपमे अन्त प्रकाशमान अनादि अनन्त अहेतुक जो ज्ञान स्वभाव है, चैतन्य स्वरूप है, उस चैतन्य स्वरूपका ज्ञान करे व आत्मबल लगाकर अर्थात् ज्ञान सामान्य बनाकर रहे तो ज्ञानका बल बढता है। और, अगर ज्ञानका विशेष बनाया अर्थात् विशेष जानकारीमे उपयोगको खीचा तो ज्ञानका बल घटता है।

लोकव्यवहार और मोक्षमार्गमे सामान्यकी स्थिति—भैया! इस लोकमे देखो तो विशेषका बडा महत्त्व माना जाता है। अहो, यह विशिष्ट पुरुष है। सामान्यका महत्त्व इस लोकमे नहीं है। जैसे कहते हैं ना, लोग कि अरे यह तो सामान्य पुरुष है। परन्तु मोक्षमार्गमे सामान्यका बडा महत्त्व है, विशेषका कुछ महत्त्व नहीं। विशेषको बताया है रागद्वेषका साधन और सामान्यको बताया है सम्यक्त्वका आश्रय।

सामान्यज्ञानकी कारणसहित प्रेरणा—भैया! ज्ञानसामान्य बनानेका उद्योग करो अर्थात् कोई विशेष पदार्थ, कोई व्यक्तिगत पदार्थ ज्ञानमे न आने दें और ज्ञानका ही जो स्वरूप है ज्ञानमात्र, बस उसको ही अपनी दृष्टिमे अधिक रखें। तो यह ज्ञान यदि सामान्यपद्धति अगीकार करता है तो उसे ज्ञानानुभूति होती है। और, ज्ञानानुभूतिका आनन्द ही कर्मोंकी निर्जरा करता है। क्लेश कर्मनिर्जरा नहीं कर सकते किन्तु आत्मीय आनन्दसे ही कर्मोंकी निर्जरा है। और इसी कारण बडी-बडी तपस्यायें—चाहे ग्रीष्मकाल हो, चाहे शीतकाल हो, जो की जाती हैं, उन तपोमे भी वह योगी खेदको नहीं प्राप्त होता, किन्तु अन्तरगमे आत्मीय आनन्दसे भरा रहता है। इसलिए गर्मीमें पाषाणमे शिलापर भी तप करते हैं फिर भी उन्हें वहाँ आनन्द प्राप्त होता है। मोहमे कोमल गद्दोपर तकियोंमे पडे हुए लोगोको भीतरमे आत्मीय आनन्द नहीं है,

वे शोक और सतापमे जर्जरित ही होते रहते हैं। उन सेठोंके डाक्टर भी लगे हैं। क्या हो गया है? हार्टट्रबुल हो गया है। हो क्या गया है? कुछ भी नही हो गया है। केवल यह हो गया कि जो एक लाखका माल रखा था, उनका भाव गिर जानेमें टोटा पड गया है, मुनाफा नही हुआ। इसी कारणसे उनके भारी शोक और सताप छा गया है। डाक्टर लोग लगे हैं। डाक्टर आते हैं, उसको धैर्य देते हैं कि ठीक है, घबडावो नहीं, ठीक हो जावोगे। अब घबडाना लाभकारी नहीं है, ऐसा सोचकर ही उनका कुछ दिमाग बदल जाता है। डाक्टर बोल देता है कि शारीरिक डिफेक्ट कोई नही है तुम ठीक हो। ठीक है, किन्तु कोई बडा भाव हो गया बतादे तो और अच्छा हो जाता है।

ममताका अभाव ही रोगका अभाव—भैया! रोगकी असली दवा तो यही है कि ममता छूटे। शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि आये तो ठीक होता है। धनिक लोग, ये परिग्रहबुद्धिवाले जन अच्छी स्थितिमे रहते हुए भी दुःखी हुआ करते हैं और ये साधु लोग फटी हालतमे रहते हुए भी सुखी रहा करते हैं। अथवा उन साधुओंको आत्मीय आनन्द प्राप्त होता है और उन सेठोंको, धनिकोंको आत्मीय आनन्द नही प्राप्त होता है।

आत्मानुभूतिकी महिमा—आत्मानुभूतिमे ही कर्म ईंधनको भस्म करनेकी शक्ति है। और तो सब बाहरकी चीजें हैं कि बडे सुबह नहा रहे, डिगडिगा रहे, एक बार खा रहे, ये सब अपने उपयोगको स्थिर करनेके साधन हैं। भगवानसे अगर विनती करें कि मेरा उद्धार कर दो, मेरा कल्याण करदो तो क्या ऐसा नही हो सकता है कि भगवान मोक्षसे आकर हाथ पकडकर मुझे तार ले जावेंगे। वह तो उसके हृदयको निर्मल बनानेका बढिया साधन है। उन साधनोंकी उपासना करें पूजा करें और जैसा उनका उपयोग है वैसा उपयोग करें तो स्वय सिद्धि प्राप्त होगी।

ज्ञानानुगामित्व ही पूज्यत्व—लोकमें देख लो, जो अपने ज्ञानके मार्गमें चलता है उसका पचासों आदमी आदर करते है, पचासों ही लोग उस व्यक्तिकी इज्जत करते हैं। अपने आपमे अगर यह सोच लें कि देखो ये हमसे कितना अनुराग करते है तो यह ठीक थोडे ही है। अरे वे अनुराग तुमसे नहीं करते है। पचासों आदमी जो तुम्हारा आदर करते हैं वे इसलिए करते हैं कि तुम अपने ज्ञानसे सही चलते हो, तप और सयमसे चलते हो। पचासों व्यक्ति अगर तुम्हे सहयोग देते है तो केवल ज्ञानसे चलते हो, सद्भावसे चलते हो इसलिए सहयोग देते हैं। कोई आदमी यदि उल्टा चले, हिंसा करे, कुशीलसेवन करे, दूसरोका धन हडप ले तो उसका कोई भी रक्षक नही हो सकता है, उसको कोई भी सहयोग नही देगा, उसकी कोई भी मदद नही करेगा। अपने स्वरूपकी दृष्टि हो तो वह अपना आत्मस्वरूप ही रक्षक है। स्वय ही स्वयका रक्षक है। कोई दूसरा दूसरेकी रक्षा कर ही नही सकता है।

पुद्गल व जीव द्रव्यकी तुलनात्मक विवेचना—अभी पुद्गल द्रव्यकी और

आत्मद्रव्यको किन्ही दर्जोंमे समानता बताते आये हैं कि जैसे पुद्गलके चार गुण हैं रूप, रस, गध, स्पर्श, । इसी तरह इस जीवके भी चार गुण हैं ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति । जैसे पुद्गल स्निग्ध, और रूक्ष गुणके प्रसादसे अशुद्ध हो जाते हैं, स्कध हो जाते हैं, बँध जाते हैं, इसी तरह यह जीव राग और द्वेषके प्रसादसे द्विविध कर्मोके बन्धनमे बँध जाता है। जैसे स्निग्ध, रूक्ष गुण बन्ध्य न हो तो पुद्गल शुद्ध हो जाते हैं, इसी तरह राग द्वेष न हो तो यह जीव भी शुद्ध हो जाता है। राग द्वेष उत्पन्न न हो इसका अमोघ उपाय क्या है ? रागद्वेषरहित आत्मस्वभावका ध्यान। इस उपायमे चलो कि राग द्वेष मिट जावें तो दसों आदमी क्या, जगत उपासना करेगा। एक यह शुद्धदृष्टि पासमे हो तो सर्व अर्थकी सिद्धि समझिए। यदि एकका अक पासमे हो ता उसपर कितनी ही बिन्दिया रखते चले जावो, गणनामे सख्या बढती चली जायगी। यदि एकका अक पासमे नही है तो बिन्दियोंमे सख्याकी गणना करनेमे मदद नही मिल सकती है। इसी तरह हमे अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान हो, लगन हो तो फिर सत्यस्वरूप पहिचाननेके लिए कुछ भी ज्ञानका यत्न करें उससे लक्ष्य सिद्ध हो जावेगा अन्य यत्न नही करना पडेगा, इस शुद्ध स्वरूपके आश्रय से ही यथार्थ लाभ मिल सकता है। जितना व्यवहारधर्म है वह परमार्थसे आत्मपदार्थकी उपासना के लिए है। जैसे किसी नवयुवककी ससुरालके गाँवके तीन चार आदमी जारहे हो चाहे छोटी जातिके हो तो दरवाजेपर जाते देखकर उन्हे वह बुलाता है, बिठाता है, खातिरी करता है व बीच बीचमे ससुरालके घरके हाल भी पूछता जाता है कि सभी लोग मजेमे हैं ? यहाँ तक कि अपनी गृहिणी तकका भी हाल पूछ लेता है। इसी प्रकार यह जिज्ञासु अन्तरात्मा आत्मोपलब्धिके लिए ही समस्त व्यवहार धम करता है। वहाँ पर भी लक्ष्य केवल शुद्ध आत्मतत्वपर रहता है। शुद्ध आत्मा जाननेके लिए शुद्ध दृष्टि चाहिए, जहाँ वस्तुका मात्र स्वरूपास्तित्व भासे वह शुद्धदृष्टि है।

सूर्यका प्रकाश या पदार्थका प्रकाश—उद्योतके माने प्रकाश है। यह प्रकाश, जो चौकीपर पडा हुआ है, यह किसका प्रकाश है ? लोग यह कहेंगे कि यह सूर्यका प्रकाश है, मगर यह प्रकाश चौकीपर चौकीका प्रकाशरूप परिणमन है, उसका निमित्त सूर्य है। सूर्यका निमत्त पाकर यह चौकी भी प्रकाशरूप होगयी है। यह सूर्य कितना बडा है ? जितना भी बडा हो। हजारों कोसोंका हो तो उतनेमे ही सूर्यकी चीजे है सूर्यकी कोई भी चीज उसके पिडमे बाहर नही है। न प्रताप बाहर है न प्रकाश बाहर है, न गर्मी बाहर है। सूर्यका जो कुछ है वह सूर्यके ही प्रदेशोमे है। पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि सूर्यका सान्निध्यका निमित्त पाकर ये चटाई, चौकी इत्यादि सभी प्रकाशित हो जाते हैं। इसमे अनेक शकायें हो सकती है, क्योंकि एकदम देखनेमे ऐसा लगता है कि देखो सूर्यकी किरणोंने ही तो ये चीजें प्रकाशित होरही हैं सूर्यकी किरणोंको

गति भी बताई जाती है, आँखोंसे देखी जाती है, सूर्योदय हुआ तो प्रकाश चलता हुआ नजर आता है। तो वाह, वह तो सूर्यका ही प्रकाश है और इस शकाके समर्थनमें आगममें भी लिखा है कि सूर्यकी सोलह हजार किरणें हैं। इसमें तो यह बात बिल्कुल साफ जाहिर हो जाती है कि सूर्यकी किरणें चलती है। भैया, इसको युक्तियों और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षासे सोचना होगा कि सूर्य जितनेमें होगा उतनेमें ही सूर्यकी चीजें होंगी। पहिला तो नियम यह है कि वस्तु जितने प्रदेशमें है उसका सब कुछ उतने ही प्रदेशमें होगा उससे बाहर नहीं होगा। अब रहा यह कि सूर्यकी किरणें जो दिखती हैं। तो बात यह है कि जैसे यह मोटी चीज है और इसमें प्रकाशरूप परिणमनकी योजना है और अपनी उस योग्यताके कारण सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाशरूप परिणम जाता है। इसी तरह इस आकाशमें भी सूक्ष्म स्कंध फैला हुआ है और जैसे यह प्रकाशरूप परिणम जाता है वैसे ही यह सूक्ष्म स्कध भी प्रकाशरूप परिणम जाता है। परिणाम गया। जब हम सूर्यको देखते हैं तो हमारी दृष्टिकी गतिविधि ऐसी है, दर्शनविधि ऐसी है कि लाइनें यहाँ दीखती हैं। तो इतना देखनेमें जितनी सूक्ष्म स्कंधकी लाइनें आयें बस चमकदार लाइनें नजर आती हैं और इन चमकदार लाइनोंमें ये सूर्यकी किरणें हैं, ऐसा व्यवहार होता है। और इस तरह जो नियत सख्यामें सूर्यकी किरणें बताई हैं कि १६ हजार किरणें है तो उसका मतलब यह है ? कि इस दृष्टिसे १६ हजार लाइनोंमें स्कधोंको देख सकते हैं। तो किसकी दृष्टि ऐसी है। चक्रवर्तीकी जैसी दृष्टि ही इन सब लाइनोंके स्कधोंको देख सकती है। अच्छा, फिर और सोचो सूर्यकी किरणें जब सभी जगह हैं। तो वे किरणें भोगभूमिमें क्यों नजर नहीं आती है ? इसका कारण यह है कि कल्पवृक्षकी ज्योतियाँ तेज नजर आती हैं, सो सूर्यकी जो ज्योति है उसका निमित्त पाकर जो प्रकाश आया करता है वह नजर नहीं आता है। अब एक शका यह होती है कि सूर्योदय हुआ तो यह प्रकाश आता हुआ दिखता है, सो यह सब सूर्यका ही तो प्रकाश है। एकदम कैसे निषेध किया जाय ? तो आप हमें यह बतलाओ कि सूर्यका जो प्रकाश है वह सूर्यमें से एकरूप निकला कि अनेकरूप निकला ? इस सूर्यके प्रकाशको एकरूप होना चाहिए। नानारूप भी अगर मान कर भिन्न-भिन्न हो गये तो भी कुछ सीमा तक उसी रूपमें होना चाहिए। मतलब यह है कि सूर्यप्रकाश एक है तो हमें सब जगह एक रूप क्यों नहीं नजर आता, काँचपर देखते है तो तेज नजर आता है, ऐनापर देखते तो और तेज नजर आता है, काठ, ककड़पर देखते है तो बहुत कम नजर आता है। ऐसा क्यों ? इसका समाधान यह है कि यह सब सूर्यका प्रकाश नहीं है। सूर्यका प्रकाश होता तो हमें सर्वत्र एकरूप नजर आता। जिन पदार्थोंमें जितनी योग्यता है वे अनुकूल सन्निधिप्राप्त सूर्यका निमित्त पाकर तेज कम चमक रूप परिणम जाते हैं।

सूर्यका आताप या पदार्थका आताप— इसी प्रकार आताप की बात जानो सूर्यका

निमित्त पाकर काठ, पृथ्वी, शरीर, जमीन आदि सभी गर्म हो जाते हैं। गर्मीके दिनो मे आतापमे तो पैर भी नही रख सकते हैं। इसमे जो गर्मी आई है इसे बतलावो यह किस की गर्मी है। जेठके महीनेमे सर्वत्र तपन हो जाती है। घर तप जाता है, छत तप जाती है, सर्वत्र ही तपन हो जाती है फिर भी यह सूर्यकी गर्मी नही है। मकान आदिकी गर्मी है? लोग यह कहते हैं कि सूर्यकी गर्मी है। आजकल सूर्य बडा गर्म निकलता है। कहे, पर यह सूर्यकी गर्मी नही है। ये तो सूर्यका निमित्त पाकर छत, पृथ्वी, मकान आदि गर्म रूपमे परिणम जाते हैं। और, यह गर्मी जो है वह इसी पृथ्वी, छत, मकान आदि की पर्याय है। आगने पानीको गर्म किया, ऐसी स्थितिमे पानीका, गर्मपन पानीकी गर्मी का परिणमन है। आग भी पुद्‌गल है, पानी भी पुद्‌गल है, आग और पानीका परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन गया है।

निमित्तनैमित्तिक भावकी कर्तृकर्मनिषेधकता—भैया! प्रकरणमे कहनेका मतलब यह है कि शब्द कोई गुणपर्याय नही किन्तु व्यक्त द्रव्यपर्याय है। ये दृश्य सब जो है वे भी पुद्‌गल द्रव्यकी द्रव्यपर्यायें हैं। सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाश हो जाता है। अब सूर्यका निमित्त पाकर सूर्यके पासके स्कध गर्म हो गये। उनको निमित्त पाकर पासके स्कध गर्म हो गये। इस तरहसे गर्म होते हुए ये सब गर्म हो जाते हैं। लोग बिजलीकी भी गति कहते हैं। बिजलीनामक कोई ऐसा तत्त्व हो जो वही दुद यहाँ तक आता हो ऐसा नही है, किन्तु बात यह है कि उस विद्युत्का निमित्त पाकर यह तार विद्युत रूप परिणमा। ऐसे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमे होने वाली गति तीव्र होती है और एक ही कोई अशुद्ध पदार्थ चले तो उसकी गति तीव्र नही होती। मूर्त तत्त्व कोई एक यहाँसे चले और वहाँ तक पहुँचे तो उसकी गति तेज नही हो सकती। निमित्त-नैमित्तिक भावमे होनेवाला जो परिणमन है और लगातार है उसकी गति तीव्र होती है। जैसे यहाँका निमित्त पाकर यह यो परिणम गया तो निमित्त नैमित्तिक परिणमन उसी समयमे होना है ना? जिस कालमे कोई निमित्त है, उसी कालमे नैमित्तिक है। यहाँ थोडा सा फर्क भी पड जाय तो कितना पडेगा? इस कारण निमित्तनैमित्तिक भाव मे होने वाले परिणमनकी गति ही तीव्र होती है। जैसे देखते हैं ना कि यहाँ बटन दबा दो तीन मीलपर जलने वाला बल्ब तुरन्त जल गया। अगर एक चीज गमन करके चलती तो वहाँ इतनी जल्दी ना जा सकती थी। यहाँ से वहाँ तक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है इसलिए इतनी दूरका भी बल्ब जल्दी जल जाता है।

शब्दके गुणत्वका निषेध—गाथाके प्रकरणमे यहाँ शब्दके बारेमे बतला रहे हैं कि शब्द गुण नही है। जैसे पुद्‌गलमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुण है वैसे शब्द कोई गुण नहीं है। कई लोग मानते हैं कि शब्द आकाशका गुण है। आकाश व्यापक है और उसका गुण है शब्द, वह शब्द सब जगह भरा हुआ है, हम लोग बोलकर शब्द उत्पन्न

नही करते। शब्द नित्य है,गुण है, सदा रहनेवाला है, सर्वव्यापक है पर हम लोगोकी बोलीसे उस शब्दका आविर्भाव होता है! किन्तु अनेक युक्तियोंसे विचार करलो भैया! वह शब्द गुण नहीं है, वह तो अनेकद्रव्यात्मक पर्याय है। शब्दको यदि गुण मानते ही हो तो वह अमूर्तका तो गुण हो नही सकता क्योकि गुण और गुणीका एक ही प्रदेश है। जैसे ज्ञान और आत्मा एक ही प्रदेशमे है। ऐसा नहीं है कि आत्मा अलग प्रदेशोंमे हो और गुण अलग प्रदेशोंमे हो केवल गुणभेदका कथन समझनेके लिए है।

गुण गुणीमे एकवेदनवेद्यता—वस्तुमे तो गुण गुणी अभेदरूप हैं। वह सव एकवेदनवेद्य है। ज्ञानका ग्रहण होता है तो आत्माका ग्रहण होता है। इसी प्रकार यदि शब्द आकाशका या अन्य किसी अमूर्तका गुण हो जाये तो एकवेदनवेद्य हो जाय अर्थात् जिस रूपमे शब्दका वोध होता है उसी रूपमे आकाशका वोध होने लगे फिर तो आकाशमे व शब्दमे अन्तर नही रहना चाहिए। पुद्गलमे शब्द प्रत्येक समय पाया जाना चाहिए। फिर शब्दमय जगत हो जायगा। अभी थोडा हल्ला-गुल्ला हो रहा हो तो कुछ झझट हो जाता है। शब्द पुद्गलका गुण हो तो कान यों ही फूट जावेंगे। जैसे पुद्गल द्रव्यका यह रूप गुण है तो यह सदा ही रहता है ना? कभी न रहे यह नही होता। अगर यह शब्द पुद्गलका गुण हो जाय तो शब्दको सदा रहना चाहिए। और, जव शब्द सदा रहेगा तो कान फूट जायगा। मनुष्य भी मारे हल्लाके कुछ न कर पायेगा। सो अच्छा हुआ यह कि शब्द गुण नही है, पर्याय है।

शब्दके पुद्गलपर्यायत्वका समर्थन—शब्द कादाचित्क है। कदाचित् होना तो पर्यायका लक्षण है। गुणका लक्षण तो नित्यपना है। वह तो सदा रहता है। यहाँ एकवेदनवेद्यका न होना और कादाचित्क होना, ये दो प्रकार एकरूपपने व नित्यपनेको विगाड देते हैं। इस कारण शब्द गुण नही है। शब्दोका उत्पाद है। उन शब्दोके आरम्भिक जो पुद्गल हैं, शब्दोंकी उत्पत्ति जिन भाषावर्गणाओंके परिस्पदसे हुआ करती है, उन पुद्गलोंके सयोग वियोगके परिस्पदसे शब्द उत्पन्न होते है अत. वे पर्याय है। शब्द अनित्य हैं, शब्द इन्द्रियग्राह्य है, शब्द पाँचो इन्द्रियोका विषय नही केवल श्रोत्रेन्द्रियका विषय है। स्पर्शन इन्द्रिय, स्पर्श पर्यायको विषय करता है। रसना इन्द्रिय रसपर्यायको विषय करता है, घ्राणेन्द्रिय गधपर्यायको विषय करता है और चक्षुइन्द्रिय रूपपर्यायको विषय करता है, कर्णइन्द्रिय भाषाजातिके पुद्गल द्रव्यको, शब्दरूप द्रव्यपर्यायको विषय करता है। शब्द तो टकराता है, वह अमूर्तका गुण कैसे हो सकता। जैसा हमने ज्ञानसे स्वय जाना, ज्ञानको जाना उसीको आत्माका अनुभव कहते हैं। ज्ञानके अनुभवको ही आत्माका अनुभव कहते है सो ये एकवेदनवेद्य है। शब्द तो कर्णइन्द्रियका विषय है, वह कर्णइन्द्रियसे जाना जाता है,क्या आकाश भी कर्णइन्द्रियसे जान लिया जायगा, यह आपत्ति आती है। सो भैया! शब्दको, पुद्गलका सीधा परिणाम

क्यों न जान लिया जाय, अमूर्त आकाशका गुण क्यों माना जा रहा है ?

शब्दके पुद्गलगुणत्वका निषेध—और भी देखो, शब्द पुद्गलका भी गुण नहीं है। शब्द तो अनित्य है, नष्ट होता है। जो नष्ट होने वाला है वह गुण कैसे हो सकता है, रूपादि तो हमेशा रहता है। देखो ना, प्रत्येक समय स्कंधोंमें रूप नजर आरहा है ऐसा कभी नहीं होता कि लो, इसमें रूप नहीं रहा, अब आ गया, यह अन्तर नहीं रहता।

शब्द क्या ?—यहाँ कोई यह कहे कि शब्द भी तो इन्द्रियग्राह्य है तो वह भी गुण हो जाना चाहिए। इन्द्रियग्राह्य होनेपर भी शब्द गुण नहीं है। इसके दो कारण हैं। एक तो शब्द नित्य नहीं है। गुण जितने होते हैं वे नित्य होते हैं, शब्द हुए अर्थात् भाषावर्गणायें परिणति हुई और मिट गई। जो शब्द बोला वह शब्द बादमें रहा रहता है ? इस कारणसे शब्द गुण नहीं है। दूसरी बात यह है कि शब्द जो है वह अनेकद्रव्यात्मक पुद्गलपर्याय है। शब्द कोई एक द्रव्य नहीं है, किन्तु अनेक भाषा वर्गणाओंके पुद्गलोंकी एक विशिष्ट व्यंजन पर्याय होती है वह शब्द है। यह पुद्गलकी द्रव्यपर्याय है, गुणपर्याय तक भी नहीं है।

शब्दके पर्यायत्वकी विवेचना—शब्द भाषावर्गणाओंके परिणमनसे बना है। यह पुद्गल द्रव्य पर्याय है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, अन्धकार छाया और उद्योत, ये सब पुद्गलकी गुणपर्यायें नहीं हैं, द्रव्यपर्यायें हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं। बन्धकी बात सोचो रस्सी बँध गयी, यह रूपपर्याय है, कि रसपर्याय है, कि गन्धपर्याय है, कि स्पर्शपर्याय है ? इनमेंसे कोई पर्याय नहीं। सूक्ष्म है, छोटा है, यह सूक्ष्मपर्याय भी रूप, रस गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्यायें नहीं। स्थूल है,यह भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्याय नहीं। संस्थान है, आकार है, यह तिखूटा है, चौखूटा है, गोल है आदि ये भी कोई गुणकी पर्याय नहीं। न वह रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है। अच्छा भेदकी बात सुनो, बँधी हुयी चीज अलग हो गई, रस्सी बँधी है, छोड़ दिया, अगुली बँधी है, हटा दिया। क्या यह किसी गुणकी गुणपर्याय है ? अन्धकार हो गया, यह जो अन्धकार हो गया यह रूपकी पर्याय है, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धकी पर्याय है कि स्पर्शकी पर्याय है ? आप थोड़ा ऐसा कह सकेंगे कि अन्धकार रूपगुणकी पर्याय है। अन्धकार हो गया तो काला हो गया, काला हो जानेपर पीली वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, सफेद वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, तो रूप अलग चीज है और अन्धकार अलग चीज है। कोई चीज सफेद है, सफेद वर्तन है क्या वे काले हो गये ? नहीं, ऐसा नहीं है। तो अन्धकार किसी गुणकी पर्याय नहीं है। छाया को, हाथका निमित्त पाकर छाया हो गयी है तो यह बतलावो छाया किसकी पर्याय है ? रूपकी पर्याय है, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धको पर्याय है, कि स्पर्शकी पर्याय है। जो वस्तु सामने है वह निमित्तमात्र है। यह छाया सामनेकी वस्तुका परिणमन नहीं है, वह तो छाया

जिसपर है उसकी परिणति है। तो यह छाया क्या हाथकी परिणति है ? नहीं।

परिणतिका क्षेत्र—एक कानून बनालो कि जिसकी जो परिणति है वह उसके प्रदेशोंमे रहती है। जिसका जो चीज बतलावोगे वह उसके प्रदेशमे ही होगी, उसके प्रदेशसे, बाहर न उसका गुण हो सकता और न किसी प्रकारका पर्याय हो सकता।

पदार्थोंकी विचित्रता—यहां कोई जिज्ञासा करे कि यदि शब्द पुद्गलपर्याय है तो पृथ्वी आदिकी तरह यह ज्ञान मे आ जाना चाहिए। सो भैया ! यह सब पदार्थोंकी विचित्रता है कितने ही पदार्थ ऐसे है जो सब इन्द्रियोंके विषय नहीं होते। जैसे जल अग्नि, वायु क्या ये सब इन्द्रियोंके विषय भूत हैं ! ये घ्राण इन्द्रियोंके विषयभूत नहीं हैं, पर पत्थर काठ आदि स्कन्धको देखते हैं तो ये चारों इन्द्रियोके विषय हैं। हवाको देखो यह स्पर्शन इन्द्रियसे ही समझमे आता है। ये सब विषय तो है, किन्तु कौन बात किस इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है यह निर्णय कर लेना चाहिए शब्द भी एक विषय है सो शब्द सब इन्द्रियों द्वारा ज्ञानमे आ जाना चाहिए ऐसी बात नही है। वह केवल श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हैं। गुणपर्याय श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य नही होती।

सर्व पुद्गलोंमे चारो गुणोंकी अनिवार्यता—कितने ही लोग यह ग्राह्यता देख कर ऐसा कह डालते हैं कि हवामे तो सिर्फ स्पर्श है, अग्निमे मात्र रूप है व स्पर्श है, जलमें स्पर्श रस वर्ण है, पृथ्वीमे रस, गंध, वर्ण, स्पर्श चारों है। उसपर भी जल मे तो हमे रस ही नजर आता है, हवामे स्पर्श ही नजर आता है और पृथ्वीमें गन्ध ही नजर आता है। परन्तु भैया ! ऐसी बात नही है। जितने भी पुद्गल है उनमे चार गुण पाये जाते है। उनमे से चाहे हमे चारो नजर आवे या न आवे। ये चारों पाये जाते हैं यह कैसे जाना ? तो बतलाते है कि उनके साधनोंमे जब चारो गुण नजर आते हैं इसलिये उनके कार्योंमे भी चारो गुण समझना चाहिए। यहाँ एक मोटा दृष्टात दे रहे है। जैसे कहते हो कि हवामे रूप नहीं है तो जरा हवाके साधनपर दृष्टि दो। एक जौ का अनाज होता है, जिसके खा लेनेसे भारी हवा बनती है। गेहूँ मे इतनी हवा नहीं बनती है। जौ जानते हो ना भैया, उसमे भारी हवा होती है। जौ खा लिये, अब पेटमे हवा बनने लगी। इस हवाका कारण जौ था सो जौ मे देखो रूप भी है, रस व स्पर्श भी है। सो जिसके कारणमे चारो गुण है उसके कारण जो बनता है उसमे यदि एक नजर न आया तो, इसके माने यह नही कि यह है, और यह नही है, उसमे चारो गुण हैं। यह सब वर्णन पुद्गलका है जिससे भिन्न हम अपनेको निरखते है।

मैत्रीभंगका कारण व अहितपनेका परिचय—यदि किसी मित्रकी मित्रता तोडना है, तो यह अन्दाज होते ही कि यह मित्र अब मेरे कामका नहीं है, उसमे अहितपना जानकर हम दोस्ती तोड देते हैं। दोस्ती हम रात दिन पुद्गलोंसे करते चले आये है, उन पुद्गलोंको हटाना है तो यह समझ लेना आवश्यक होगा कि पुद्गल मेरे

रूपिनम्प नही है। क्या पुद्गलो मे कोई ऐसी गुंजायश है कि वे मेरे कभी हो सकें। क्या पुद्गल मेरा सुधार विगाड कर सकते हैं ? क्या ये पुद्गल मुझे शरण हो जायेंगे ? ये सभी बातें विश्वास मे आना चाहिये। पुद्गलोंमे जो पुरानी मित्रता है, पुराना संग है, अनादि काल मे यह मित्रता चली आरही है ये सब समझमे आते हैं परन्तु इनमे कुछ तत्त्व है नहीं। इनमें मेरा कुछ भी सम्वन्ध नही है। ये तो अपने आपमे ही विराजमान अपने आपमे ही परिणम रहे है। मैं तो अपनेमे ही रहकर एकाकी नाटक अपनी ओरसे कररहा हूं। यदि घडी सुन्दर है तो कही घडी वेचारी अपनी जगहमे उठकर मेरे दिलको कोई धक्का नही देती, मुझे हिलाती नही, पर हम ही घडीके बारेमे कल्पनाएँ करके लट्टू हो रहे है। घडीकी हममे कोई बात नही होती, हम ही कल्पना बनाकर अपने आपमे खुश होरहे है, प्रेरित अथवा खुश होनेमे यह घडी निमित्तभूत भी नही है, वह तो एक आश्रयभूत पदार्थ है। जिसे नोकर्म भी कह सकते है।

निमित्त व आश्रय—जितने रागादिक परिणमन होते है उनका निमित्त कर्म-विपाक है। कर्म भी उनका निमित्त नही, उदयागत कर्म निमित्त है। पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर यह रागरूप परिणमन होता है। रागरूप परिणमन भी इसी विधि-पूर्वक होता है कि इसको कुछ न कुछ आश्रय होवेगा ही इस कारण जब कर्मोदयका निमित्त पाकर यह आत्मा रागरूप परिणमन करती है तो उसका रूपक क्या बनता है ? उसका रूपक परको आश्रय बना कर विकल्परूप बनता है। यदि ज्ञानरूप परिणमन है तो ये वाह्य पदार्थ कितने ही वने रहे उनसे राग नही हो सकता।

आश्रयकी अनियमितता एव दृष्टान्त—भैया! दृष्टान्त बहुत विख्यात है कि कोई वेश्या गुजर गई थी। लोग उसको जलानेके लिए ले जारहे थे। उसे देखकर कामी पुरुष तो यह ख्याल करते थे कि अगर अभी और यह जीवित रहती तो मैं और अनुराग करता, पर ज्ञानी यह सोचता है कि चौरासी लाख योनियोंमे भ्रमण कर बडी कठि-नाईसे मनुष्यभव इसने पाया और दुर्लभ नरजन्मको यो ही व्यर्थ गमा दिया। वेश्या है तो क्या हुआ, सज्ञी पचेन्द्रिय तो है किसी समय पतित भी सम्हलकर ज्ञाता बन सकता है। इस जीवने श्रेष्ठ मनुष्यभव पाया, पर मनुष्यभव पाकर भी अपने जीवनको व्यर्थ गवाँ दिया। कुत्ते व स्याल सोचते हैं कि यह तो चली गयी, इसको लोग आगमे फूके डालते हैं। यदि इसे न जलायें तो हमारा १५-२० दिनका भोजन बन जायगा। ये वृथा ही इसे जलानेके लिये ले जारहे है। इस प्रकारकी विविध कल्पनाएँ करते है ये सब विचित्र कल्पनायें क्यो हुई ? यो हुई कि योग्यता व कर्मविपाक जुदा-जुदा है। वेश्या तो मात्र आश्रयभूत पदार्थ है। इस प्रकरणमे जिन पुद्गलोंसे मोह हटाना है उन पुद्गलोंकी दो चार गाथाओंमे चर्चा चल रही है।

सर्व भौतिकोंमें रूपरसगधस्पर्शमयता—भैया! जितने भी पुद्गल होते हैं वे रूप,

रस, गध स्पर्श इन चारो गुणोसे तन्मय होते है। इस सम्बन्धमे न्याय दर्शन यह कहता है कि पृथ्वीमे रूप, रस, गध स्पर्श ये चारो होते है किन्तु पृथ्वीमे मुख्य है गध और जलमे गन्ध नही होती रस, स्पर्श और वर्ण ये तीन होते है, उनमे भी रस मुख्य है। कोई जल दुर्गन्ध देने लगता है तो उस दुर्गन्धको जल नही देता है, किन्तु जलमे जो पृथ्वीके पुद्गल है वे सडते है उनकी दुर्गन्धि होती है और अग्निमे दो गुण है स्पर्श व रूप, उसमे भी रूपको मुख्यता है अग्निमे गध नही, रस नही, क्योंकि अग्निका रस तो किसीने चखा ही नही और गध भी नही है। कभी किसी जलती अग्निमे गध भी विशिष्ट आती हो तो यह ईधनकी गध है। जैसे कपडा जलता है तो भट कहते हैं कि उन्नाद आ रही है अर्थात् कपडेकी गध आरही है। तो वह अग्निकी गध नही है वह पृथ्वीकी गन्ध है। कपडा पृथ्वी है। जितनी पिण्डात्मक चीजें है सब पृथ्वी हैं। हवामे केवल स्पर्श है। हवामे गध नही, रस नही, कभी हवामे गध भी आती है तो वह हवाकी गध नही है, वह गध है पृथ्वीकी। पृथ्वीके छोटे-छोटे स्कध हवाके साथ आते है और उनसे गध आती है। एक दर्शनमे कहा है कि पृथ्वीमे गध, जलमे रस, अग्निमे रूप व वायुमे स्पर्श ही है जैन सिद्धान्त यह कहता है कि चाहे हवा हो, अग्नि हो, जल हो, पृथ्वी हो, चूँकि ये पुद्गल है सो इनमे चारो गुण पाये जाना आवश्यक है।

गुणोमे मात्र व्यक्ति अव्यक्तिका भेद—किसीमे किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है और किसीमे किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है। जैसे चौकी है जमीन है, भीट है, कागज है ये पृथ्वी कहलाते हैं। पेड है, यह शरीर है अपना, ये सब भी पृथ्वी कहलाते है, पिण्डात्मकदृष्टिमे, भूतचतुष्टयकी छटनीमे। लोक कहते है ना, मर जानेके बाद कि लो यह मिट्टी हो गई या मिट्टीमे मिल गयी। ये पुद्गल है। इन पृथ्वीरूप पुद्गलोमे चारो चीजें व्यक्त है। इसमे रूप भी नजर आता है, गध भी नजर आता है रस व स्पर्श भी समझमे आता है। जलमे गध अव्यक्त है और रूप तो सामने से दिखता है। यह सफेद जल है, यह नीला जल है और रस तो प्रधान गुण है। जलमे रस गुण तो व्यक्त है और वाकी गुण रूप, गध और स्पर्श अव्यक्त है कोई कुछ व्यक्त भी हैं। अग्निमे दो गुण अव्यक्त है और दो गुण व्यक्त है, अग्निमे गन्ध और रस ये दो अव्यक्त है, प्रकट नही है और दो व्यक्त है—रूप और स्पर्श। हवामे स्पर्श तो व्यक्त है हवा लगती है और वाकी तीन गुण अव्यक्त है। व्यक्त और अव्यक्तमे अन्तर रहता है। पर जो पुद्गल होते हैं उनमे चारो गुण ही हैं। ऐसा जैन सिद्धान्तमे वताया है।

अव्यक्त होनेपर भी गुणके सद्भावमे युक्ति—प्रश्न-यह तो तुम्ही कहते हो कि इनमे गुण व्यक्त तो नही है, मगर है जरूर। कोई युक्ति वतलाईये। जिससे समझमे आवे कि इसमे भी यह गुण पाया जाता है, मगर है अव्यक्त ? सो उत्तरमे कहते है, उपादानकारणसदृश हि कार्यं भवति। चू कि कार्य उपादान कारणके सदृश होते हैं सो

जो गुण उपादानमे होते हैं वे गुण उसके कार्यमे भी होते हैं।

जलमे अव्यक्त गुणोकी सिद्धि – पृथ्वीमे तो वे सभी चारो गुण हैं। प्राय सभी लोग मानते हैं और जलकी यह बात है कि जलमे एक गुण अव्यक्त है। कौनसा ? गंध, किन्तु जलकी उत्पत्तिका एक यह भी सिद्धान्त है कि चद्रकान्त मणिमे जल उत्पन्न होता है। और चद्रकान्त मणि है पृथ्वी, अथवा कुछ भी सही, रूप, रस, गध, स्पर्श इन चारोका पिंड है, जिसमे चारो गुण व्यक्त है उस चद्रकातमणिमे जल झरता है तो उसमे भी चारो गुण हैं क्योकि यह न्याय है कि जितनी भी क्रियाये होती हैं वे उपादानका अनुविधान करती हैं। जैसे घडा बना तो मिट्टीका जितना गुण है वह वह घडेमे आगया। जो उपादान है, जिसमे कि वह चीज निकली है उसमे जो बातें पायी जाती हैं वे सब उनके कार्यमे भी पायी जाती हैं। और ये चीजे निमित्त और उपादानका निर्णय देती हैं। निमित्त वह कहलाता है कि जो क्रियारूप न परिणमे जिसमे उपादानके गुण न आवे और जो अपने गुण उपदानको नही दे सके फिर भी जिसकी उपस्थितिमे ही कार्य हो क्रियारूप तो उपादान ही परिणमता है, पर क्रियारूप परिणमते हुएमे निमित्तकी सन्निधि सहायक है, याने अनुकूल पदार्थकी उपस्थितिका निमित्त पाकर उपादान अपना परिणमन बनाता है इसी सम्बन्धको सहायता समझें। कोई पदार्थ अपना गुण पर्याय या द्रव्यादिक कोई अश परमे देदें ऐसी सहायता नही करते किन्तु निमित्त सम्बन्ध देखकर सहायताका उपचार किया गया है अर्थात् परका निमित्त पाकर उपादान विभावरूप परिणम जाता है। तो चद्रकात मणिमे चारो गुण व्यक्त हैं और उस चद्रकात मणिमे जल उत्पन्न होता है सो उसमे भी चारो चीजें अवश्य हैं। अब उस जलमे एक गुण अव्यक्त और तीन गुण व्यक्त हो गये।

अग्निमे अव्यक्त गुणकी सिद्धि—भैया ! जैसे जलमे चारो गुण हैं इसी प्रकार अग्निकी बातें देखो अग्नि बाँसोमे भी उत्पन्न होती है। बाँसकी रगडसे अग्नि उत्पन्न हो जाती है, सो उस अग्निका साधन बाँस हुआ और उस बाँसमे चारो गुण व्यक्त हैं रूप, रस, गध और स्पर्श। जिसमे चारो गुण पाये जाते हैं ऐसे बाँसमे उत्पन्न हुई जो अग्नि है, उसमे भी ये चारो गुण होने आवश्यक है सो होते ही हैं। उनमेसे अग्निमे गध और रस ये दो अव्यक्त है और रूप व स्पर्श व्यक्त हैं और मुख्यतासे तो रूप व्यक्त है।

वायुमे अव्यक्त गुणकी सिद्धि—वायुकी बात देखो। ये जो जवा होते हैं जो खाये जाते हैं, उनसे वायु बनती है। वह वायु ऐसी ही होती है जैसी कि चलने वाली वायु लगती है। जौमे चारो गुण पाये जाते है रूप, रस, गध और स्पर्श। अत ये चारो गुण वायुमे भी पाये जाने आवश्यक है। पर वायुरूप कार्यमे एक गुण है व्यक्त और तीन गुण है अव्यक्त। समस्त कार्य उपदान के अनुविधायी हैं, इस युक्तिसे यह बात सिद्ध हुई है कि जितने भी पुद्गल हैं उन सबमे रूप, रस, गध

और स्पर्श ये चारो गुण पाये जाते हैं। किसी पुद्गलमे कोई गुण व्यक्त है और कोई गुण अव्यक्त है सो यह उनके परिणामकी विभिन्नताका परिणाम है।

पर्यायविचित्रता स्वभाववैचित्र्यका अहेतु—यदि ऐसी विचित्रताके कारण नित्य द्रव्यके स्वभावमे विघात हो जाय तो सबका अभाव हो जायगा, किन्तु ऐसा नही हो सकता। ऐसा नही है कि हवामे तीन गुण अव्यक्त हो गये तो हवा जिन द्रव्योंमे बने हैं उन द्रव्योंके स्वभावमे भी गुणोंका अभाव आ जाय, पर्यायकी विभिन्नता होनेसे स्वभावमे अन्तर नही होता है आत्मामे देख लो पर्यायोका कितना अन्तर है? रागद्वेष बढते हैं, मोहका नाच होता है, क्षोभोकी विचित्रताका लेखा क्या, आनन्दका परिणमन कभी सुख रूप है, कभी दु खरूप है, कभी आनन्द है, परकी ओर झुकाव है, इतना मलिन परिणमन होरहा है पर मलिन परिणमन होकर भी उसमे आत्माके स्वभावमे क्या अन्तर हो जाता है? अन्तर नही है। जो पदार्थ सत् है, जिस स्वभावरूप है वह सभी पर्यायोंमे उसी स्वभावरूप रहता है चाहे जितना ही विचित्र, विरुद्ध विभाव हो जाय, चाहे कितना ही द्रव्योंमे साकर्य हो जाय, वही जीव है, वही पुद्गल है, वही धर्म, अधर्म, आकाश और काल भी है तो भी किसी भी द्रव्यके स्वभावमे परिवर्तन नही होता।

एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धनमे स्वभावघातका निषेध—कितने ही पुद्गलोका एक क्षेत्रावगाहका बधन भी है। एक क्षेत्रावगाह कैसा कि जैसे जो प्रदेश आत्माका है वह समस्त प्रदेश कर्मोंसे पूरित है, सर्व परमाणुवोमे पूरित है। दूध और पानीकी तरह नही दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमे नही है। यह मोटा दृष्टान्त लिया जाता है कि दूध और पानी एक क्षेत्रमे है, वह एक क्षेत्रमे नही है। दूधके छोटे-छोटे अणुरूपकी बूँदें न पानीमे प्रविष्ट हैं और न पानीकी छोटी छोटी बूँदे दूधमे प्रविष्ट हैं। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। यदि एक गिलासमे दूध व पानी एक कर दिए गये है तो लोग मोटे रूपमे कहते है कि गिलासमे दोनोका एक क्षेत्रावगाह है, मगर उनकी एक क्षेत्रावगाह नही है, प्रदेशभेद है वहाँ। एक क्षेत्रावगाह तो यह जीव व कर्मका है। ये छहो द्रव्य एक जगह अवस्थित है वहाँ भी एकक्षेत्रावगाह है। पुद्गलमे एक क्षेत्र बहुत सूक्ष्म उन परमाणु स्कधोमे होता है जहाँ एक प्रदेशमे अनेक परमाणु ठहरे हुए हैं। उन परमाणुओका एक क्षेत्रावगाह है किन्तु दूध पानीमे दूधकी यूनिटमेयाने विन्दुमे पानीकी यूनिट-(विन्दु) नही है और पानीकी यूनिट दूधमे नही है तथा दूध-दूध रूपमे है और पानी-पानी रूपमे है। इस तरह उनका परस्परमे क्षेत्रावगाह नही। सूक्ष्मतासे देखो दूधकी नन्ही-२ बूँद जो कि पतली सीककी नोकमे भी नही आसकती उतनी बूँद भी पानीमे नही मिली है। और न उतनी भी पानीकी बूँद दूधमे मिली है। पर इस शरीर और कर्मका आत्मामे एकक्षेत्रावगाह है। जो प्रदेश जीवका है वही कर्मका है ऐसा एक क्षेत्रावगाह भी है तो भी वहाँ जीवोके स्वभावका विघात नही हो सकता।

जीवतो स्वभावमें ही है, अगर द्रव्यके स्वभावका प्रतिघात होने लगे तो यह द्रव्य टिक ही नहीं सकता, आज कुछ न दीखता। यह कभीका विप्लव हो जाता। सो किसीका कोई गुण व्यक्त है और कोई गुण अव्यक्त है। इससे उन चीजोंका मूलभूत जो पुद्गल द्रव्य है उसके स्वभावमें विघात नहीं होता। अर्थात् प्रकृतमें पुद्गलका स्वभाव है रूप, रस, गंध और स्पर्शके चतुष्टयका, सो उसमें अन्तर नहीं होता कि कोई गुण कभी न भी हो, इससे शब्द पुद्गलकी पर्याय ही है ऐसा निश्चय करो। शब्द गुण नहीं है और गुणपर्याय भी नहीं है। अगर शब्द कोई गुण होता तो एक रूप रहता और गुण-पर्याय होता तो कुछ न कुछ शब्द सब अणुवोंमें सदाकाल बना रहता, किन्तु ऐसा है कहाँ। इस कारण शब्द पुद्गलद्रव्यकी व्यञ्जन पर्याय है।

अब पुद्गल द्रव्यके गुणों व पर्यायोंका वर्णन करके बाकी बचे हुये जो शेष अमूर्त द्रव्य हैं उन सब द्रव्योंके गुणोंको बतलाते हैं। इसमें दो गाथाएँ एक साथ चलेंगी इसे "युगल" बोलते हैं।

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं।
धम्मेदरदव्वस्स गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥१३३॥
कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणादो ॥१३४॥

आकाश द्रव्यका गुण है अवगाह। धर्म द्रव्यका गुण गमनहेतुत्व है। अधर्म द्रव्यका गुण स्थितिहेतुत्व है। काल द्रव्यका गुण वर्तना है। आत्मद्रव्यका गुण उपयोग है। इस प्रकार अमूर्त पदार्थोंके संक्षेपमें गुण कहे गये।

आत्माके मोहका विषय—आत्माके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंके वर्णनका प्रयोजन यह है कि हमें जिन द्रव्योंसे पृथक् होना है उनका भी तो परिज्ञान आवश्यक है। उन पर पदार्थोंमें से यह जीव धर्मद्रव्यमें मोह नहीं करता, अधर्मद्रव्यमें मोह नहीं करता, कालद्रव्यमें मोह नहीं करता, पुद्गलद्रव्यमें मोह करता है और कुछ रूपमें आकाश द्रव्यमें मोह करता है। इसमें क्षेत्रावगाहका मोह हो जाता है। असलमें आकाशका मोह कोई नहीं करता, किन्तु जितने आकाशमें मोह करने योग्य चीज उसको कल्पनामें आगयी, उतने आकाशके क्षेत्रमें मोह करता है, तो वह वस्तुतः क्षेत्रमें मोह नहीं करता है वह मोह पुद्गलमें करता है। अव्वल तो यह जीव पुद्गलमें मोह करता है जीवमें भी मोह करता है तो जीवके विभावपर्यायमें। तो जीवके बारेमें-जीवकी जो यह प्रकृति है, कहीं कहीं इसके स्वरूपरक्षणकी रुचिमें इसको पुद्गल ही कह बैठे। ये सब पुद्गल हैं, अजीव हैं। समयसारमें तो कहा ही है कि ये सब जीव नहीं हैं। नारकी, हैं मनुष्य हैं, तिर्यञ्च हैं, क्रोध है, मान है आदि ये सब जीव नहीं हैं। अर्थात् जीव तो एक ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायकस्वभाव है इस ज्ञायकस्वभावके अतिरिक्त जितने भी उपाधि

और औपाधिक भाव हैं वे सब पुद्गल हैं पौद्गलिक हैं। अर्थात् पौद्गलिक कर्मके विपाकमें उत्पन्न हुए जितने भी भाव हैं वे सब पौद्गलिक हैं।

मोहका विषय पौद्गलिक तत्त्व—भैया! तात्पर्य यह है कि जीव जितना भी राग करता है यह पुद्गलमें राग करता है। और, फिर कोई ज्यादा बुद्धिमान आदमी हो तो वह आकाश, धर्म, अधर्म इत्यादिमें भी मोह कर लेता है तो वह मोह विकल्पका मोह है। जो जानता ही नहीं है, जिसे खबर ही नही है वह आदमी धर्मादिक द्रव्यो का उपयोग ही क्या ला सकता है, उनका तो अज्ञानरूप व्यामोह है। मगर जो शास्त्र जानने वाले हैं, बुद्धिमान लोग हैं, उनको धर्म, अधर्म आकाश, कालमें मोह हो जाना यह कभी हो सकता है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालके सम्बन्धमें जो जानकारी की जाती है, जो विकल्प किए जाते हैं उन विकल्पोंको माना कि यह मैं आत्मा हूँ। सो उन विकल्पोंमें जो आत्मत्वबुद्धि है वह आत्मबुद्धि मोह कहलाता है, और इसी कारण देखा होगा कि आकाश आदिकी चर्चा अगर 2 व्यक्ति करते हैं और उनमें मतभेद हो जाय स्वरूपके बारेमें, तो उनमें लड़ाई तक हो जाती है, गाली गलौज भी हो जाती है एक दूसरेको कहे कि तू मिथ्यादृष्टि है, तू अज्ञानी है, तेरी समझमें नहीं आता है। इतनी गाली हो जाना, एक धर्म, अधर्म, आकाशकी चर्चा करनेमें विवाद खड़ा हो जाना और लड़ाईका रूप आ जाना, यह सब क्या है? आकाश आदिका ही मोह है, जिसके कारण विवाद खड़ा हो गया। लेना देना कुछ नही है, भैया! आकाश तो अमूर्त है मगर उसकी भी चर्चा करनेमें बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। यह क्या है? मोहका परिणाम है। यह विकल्प भी तो पौद्गलिक है।

जानकारीके मोहका परिणाम—ज्ञान बहुत गहरी चीज है उसके होते हुए ज्ञानकी थाह लेना बहुत कठिन है। इसी तरह मोहकी थाह निकाल लेना भी कठिन है। मोह रह जाय और मोही अपनेको सम्यग्दृष्टि मानता रहे, ऐसा हो सकता है उस मोहकी जड़का वह पता नहीं निकाल सकता है। वस्तुके स्वतन्त्र स्वरूपकी चर्चा करनेमें कोई मतभेद हो जाय तो वहो उस मतभेदके आधारपर गाली गलौज या लड़ाई झगड़ेका रूप खड़ा हो जाय। क्यों ऐसा हो गया? मोह होनेसे अर्थात् वस्तुके सम्बन्धमें जो जानकारी है, ऐसा विकल्प है, उस विकल्पमें आत्मबुद्धि लगी है। उस विकल्पके खण्डन होनेको अपना खण्डन मानते हैं मोहीजन। जैसे मोही मिथ्यादृष्टि जीव शरीरके नष्ट होनेको अपना नाश मानता है इसी प्रकार पढे लिखे मोहीजन अपनी समझमें आया हुआ जो विकल्प है उस विकल्पके खण्डित होते समय अपनेको ही खण्डित होना हूँ ऐसा समझते हैं। इन्ही कारणोंसे कटु विवाद खड़ा हो जाता है। जरा गम खा जानेमें तो बड़ी कठिन समस्या भी हल हो जाती है। भैया! चर्चामें यदि अपनी बात नही रह पाती है तो न रह पाने दो, वह तो विकल्प है, अध्रुव है, क्लेश

देने वाली चीज है। इस विवादमे यदि लोगोकी निगाहमे सच्चा तत्त्व नही आता हो न आने दो, उपेक्षा करदो। शान्तिमे ही तो लाभ है।

मात्र विकल्पका ही मोह—कभी-कभी अपनी बडी खराब परिस्थिति हो जाती है तो वहाँ भी हम अपने आपके विकल्पोंमे ही अपने बाधक बने हुए हैं। दूसरे लोग समझाते हैं, बताते हैं फिर भी समझमे नही आता है। कोई कुछ समझाता है भी तो किसी दृष्टिमे यह ठीक है ऐसा मानकर एक सान्त्वना नही दे सकता कि भाई इसकी भी बात ठीक है, इस दृष्टिमे ठीक है हाँ ऐसा तो है कुछ। दृष्टियाँ लगाकर उसकी बातको ठीक कहे और अपने विकल्पोका खण्डन होते समय धैर्य बनाये रहे यह कितना कठिन रहता है, तो मोही जनोको बातका भी मोह है, और विकल्पोका भी मोह होता है। इन्ही विकल्पोके मोहमे वे सब द्रव्य आ जाते हैं धर्म द्रव्यका क्या मोह है? जो विकल्प किया है उस विकल्पमे मोह है इसीको बस द्रव्यका मोह कहते हैं। भैया! लोक व्यवहारमे लोग बोलते भी हैं। जैसे कोई केलेवाला ठिलियामे केले बेचता है, बोलता है कि केले खरीदो तो मकान पर बैठे हुए आदमी जिनको केलोकी जरूरत है पुकारते है कि ए केला, केलेवाले नही कहते। ओ केला! यहाँ आओ, ऐसा कहते हैं कि नही भैया! और वह केला बेचने वाला समझ जाता है तभी वह केले बेचने वाला ठेलिया से नही कहता कि वहाँ जा। उसने उसकी भाषाको समझ लिया। उसके भाव उसने समझ लिये। केले देनेवाला केले देने लगता है तो जैसे उस केला और केलावाले मे अभेद हुआ, इसी तरह धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा मूर्त पदार्थ व अमूर्त पदार्थके बारेमे सोचो तो जो विकल्प हुए उन विकल्पोंमे अहबुद्धि हो तो यही उपचारसे उस विषय का मोह कह लाया। धर्म द्रव्यके विकल्पमे मोह होना ही धर्मादिक द्रव्यका मोह है। साक्षात्मे तो अमूर्तमे क्या, मूर्तमे भी मोह नही होता।

विकल्पकी रुचि महासकट—द्रव्यके सम्बन्धमे जो हमने जानकारी बनायी उसमे राग करना, विकल्प करना, मैं बुद्धिमान हूँ, यह खूब समझता हूँ, यह ठीक है यही मैं हूँ, ऐसा स्पष्ट न कहकर भी मौज मानना विकल्पोंमे अपनेको व्यवस्थित समझना ये सब बातें भैया, मोहकी ही तो हैं। नही तो उन विकल्पोमे अपने आपपर सकट समझना चाहिए था। ये विकार विकल्प ही तो बडे सकट है, कितने विकट सकट छाये हैं,कैसे-कैसे रागद्वेषके विकल्प, कैसे अन्य तरहके विकल्प, कितने सकट है। इन सकटोंमे रहते हुए भी इन सकटोके बीच, नीचे, मर्ममे, निज ज्ञायकस्वभाव गुप्त है, सुरक्षित है। इन विकल्पोंमे हटें और ज्ञायक स्वभावकी ओर लगें, ऐसा भाव होना चाहिए था। पर, ऐसा भाव न होकर हम विकल्पोंमे एकमेक हो जाते हैं। यह क्या है? मोह। वैसे तो धनादिका भी मोह कोई नही करता। धनका मोह करना भी औपचारिक कथन है। कोइ भी पुरुष हो, जो कि धनार्थी है, वह धनविषयक विकल्पमे

मोह करता है धनमे मोह नही करता है। जो कहते हैं ना, कि इसको धनका मोह है उसका अर्थ मानना चाहिए कि वह धनको विषय बनाकरके जो ये विकल्प बनोए हुए हैं उन विकल्पोमे उसे मोह है, धनमे मोह नही है। असली स्थिति यह है।

विकल्पमे ही मोहकी सभवता—जैसे किसीके प्रति कहा जाय कि इसका कुटुम्ब मे मोह है, तो यह बात सत्य नही है। वह कटुम्बमे मोह नही कररहा है। मोह की बात कररहा है अर्थात् कुटुम्बको विषय बनाकर जो उसने अपनेमे विकल्प किये हैं उन विकल्पोमे उसे मोह है और उन विकल्पोके मोहका उपचार विषयमे किया गया है। यह बात तो मौलिक पदार्थोमे भी इसी तरह है और इसी तरह पढे लिखे लोग जो धर्म, अधर्म अस्तिकायका विचार बनाते हैं, विकल्प बनाते है उन विकल्पोमे मोह, करें तो उसका भी उपचार धर्म द्रव्यमे करना चाहिए। इस तरह यह जीव करता तो है मोह विकल्पोमे मगर जो भी विषय होते हैं उन सबमे मोहका उपचार किया जाता है। हमे जिन पदार्थोसे हटना है उनकी यह चर्चा चलरही है। अर्थात् ज्ञानानन्दघन निज आत्मद्रव्यके अतिरिक्त सब शेष द्रव्योकी चर्चा की जारही है।

द्रव्योंके विशेष गुण—आकाशका तो गुण समस्त द्रव्योको अवगाह देना है धर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके गमनका हेतु होना है अधर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके ठहरनेका कारण होना है, काल द्रव्यका गुण सब द्रव्योंके वर्तनाका कारण होना है और आत्माका गुण उपयोग है, इस प्रकार जितने अमूर्त पदार्थ हैं उन पदार्थोंके सक्षेपमे गुण बताये हैं। मूर्त पदार्थका गुण रूपरसगन्धस्पर्शमयता है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है। यह सब द्रव्योके विशेष गुणोका वर्णन है।

द्रव्योके सामान्य गुण—सामान्य गुण तो ६ हैं, जो कि सब पदार्थोमे पाये जाते हैं (१) प्रत्येक पदार्थ हैं, (२) अपने स्वरूपमे हैं परके स्वरूपसे नही है। (३) प्रत्येक समय परिणमते रहते हैं (४) अपने ही स्वरूपमे परिणमते है परके स्वरूपमे नही परिणमते है। अपने ही गुणोमे परिणमते हैं परके गुणोमे नही परिणमते हैं और अपने ही प्रत्येक गुण अपने उसही गुणके रूपमे परिणमते है, अपने दूसरे गुणरूप नही परिणमते हैं। (५) वे अपने प्रदेशोमे हैं। (६) किसीका किसी ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। यह सभी द्रव्योके गुणोका वर्णन है।

परमार्थसे आकाशादिकी विशेषता—आकाश, द्रव्यका असाधारण गुण क्या है? एक साथ समस्त द्रव्योके साधारण रूपसे अवगाह होनेका कारण बनना। यह आकाश द्रव्यका गुण है जो देखा जाता है या होता है उसको गुणरूपसे यहाँ बताया है। आकाश द्रव्यका काम सब द्रव्योको अवगाह देना है। पर, परमार्थसे आकाश द्रव्यका काम क्या है कि अपना वर्तन करे अपना परिणमन करे। इसी प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश व कालका भी कार्य अपना परिणमन है।

मन है। अन्य पदार्थोंके किसी कार्यमें निमित्त हो जाने रूप लक्षण बताना औपचारिक वर्णन है। पुद्गलको छोडकर शेष द्रव्य सब अमूर्त हैं और जीव भी अमूर्त है पर जीव तो स्वय यही है जो जान रहा है इस कारण अपने लक्षणका तो पता बन जाता है पर आकाशादि तो भिन्न हैं, अमूर्त है इस कारण अपने अनुभवमे नही आता है। दूसरेका जीव भी अपने अनुभवमे नही आता किन्तु अपना जीव अपने अनुभवमे आता है अपना परिचय होनेपर समानताकी बात सोचकर दूसरे जीवोका भी ज्ञान होता है। सो जैसे अमूर्त पदार्थ आकाश, धर्म, अधर्म, काल है और उनका हमे परिचय नही होता इसी तरह हमे सब जीवोका भी परिचय नही होता। किन्तु, खुदका परिचय यो विशद हो जाता है कि खुद जीव है ना, वह अमूर्त है तो भी स्वय है और स्वयमे परिणमता है तथा स्वयके परिणमनका ज्ञाता है इस कारण स्वय स्वयके परिचयमे आता है। अमूर्तका, परजीवका तो हमे परिचय भी नही मिलता पर निजके नाते हमे अपना परिचय मिलता है। वस्तुत हमे मूर्तका भी परिचय नही मिलता।

अमूर्तके इन्द्रिगम्यताका अभाव—भैया ! अमूर्त पदार्थोको हम इन्द्रियो द्वारा जान नही सकते। हमारे जाननेके साधन तो अभी इन्द्रियाँ हैं। इस कारण हमे अमूर्तोका विशेष परिचय नही। उनके कार्योंको समझकर या थोडा बहुत किन्ही युक्तियोंसे सोचकर हम अमूर्त पदार्थोके बारेमे ज्ञान किया करते है।

आकाशका परिचय—चीज कहाँ रखी जाती है किस जगह है ? ऐसा चिन्तन करनेपर अवगाहनका हेतुभूत जो है वह आकाश है ऐसा कुछ मालूम पडता है। सो अवगाहको आकाशमे देखकर आकाशका लक्षण अवगाहनहेतुत्त्व कहा गया है। इन अमूर्त पदार्थोमे से एक आकाश ऐसा पदार्थ है कि जिसके बारेमे हम विशेष अनुमान कर सकते हैं धर्म, अधर्म और काल की अपेक्षा। कुछ ऐसी पहलेमे भावना पडी है, कि यही तो है आकाश जो पोल है, जहाँ कुछ नही है। ऐसी पहलेसे भावना बनी आरही है तो हमे आकाशका कुछ अधिक अनुमान हो जाता है इन अमूत पदार्थोमे, इस आकाशका विशेष गुण क्या है ? एक साथ समस्त द्रव्योंका साधारण अवगाहहेतुपना होना। यह अन्य द्रव्योमे असम्भव है। अन्य द्रव्य अवगाह नही देते, इस कारणसे अवगाहनका हेतुपना होना इस आकाशका निश्चय कराता है।

धर्म द्रव्यका परिचय—धर्मद्रव्यका विशेष गुण क्या है ? गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलमे एक समयमे गतिका साधारणहेतुपना होना है। साधारण शब्द सब जगह दिया है। धर्मद्रव्यका लक्षण सामान्यरूपमे गमनहेतुपना है,गमन गोल हो, चौकोर हो, इन कामोका कारण धर्म द्रव्य नही है, किन्तु सामान्यगतिका कारण है, वह गति चाहे निमित्तप्रसगमे किसी रूप हो। यह विशेषगुण धर्मद्रव्यका यो कहलाता है कि यह गुण अन्य द्रव्योमे असभव है, ऐसा जो गमनहेतुपना लक्षण है यह धर्म द्रव्यका

अवगम कराता है। ऐसी भी बात सोची जाय कि समस्त पदार्थ जितनेमें है अर्थात् लोकाकाशमें है, जितने आकाशमें ये सब द्रव्य पाये जाते हैं उतने आकाशसे बाहर ये द्रव्य नहीं है, कुछ ऐसा होना प्राकृतिक है कि सबके सब यहाँ न वहाँ तक है तो उस अवस्थामें अवधिसे दूर वे नहीं हैं। तो कोई उसमें बाह्य निमित्त है या कारण होना चाहिये ना, ऐसा अनुमान करके यह बात जानी जाती है कि ऐसी कोई अमूर्त चीज जो उसके बाहर नहो, लोकाकाशमें ही हो वही गमनका कारण है ऐसे पदार्थका नाम धर्म द्रव्य सिद्धान्तमें प्रसिद्ध है।

अधर्म द्रव्यका परिचय— अधर्म द्रव्यका विशेषगुण क्या है? स्थितिपरिणमन-हेतुत्व अर्थात् चल करके ठहरनेके कार्यमें लगे हुए समस्त जीव पुद्गलोंको एक समय में साधारण रूपसे स्थितिका कारण बनना यह अधर्म द्रव्यका विशेष गुण है। यह अन्य द्रव्योंमें नहीं पाया जाता है। जो-जो द्रव्य अपने परिचयमें है उनमें यह खूबी नहीं दिखती है कि वे स्थितिके साधारण निमित्त हो सकें। इसलिए स्थितिहेतुत्व अधर्म द्रव्यका निश्चय कराता है, कुछ कुछ अन्दाज भी होता है। इसका अवगम कठिन है ऐसी बुद्धि जो आती है वह श्रद्धाकी ओर बढ़ाती है श्रद्धासे हटाती नहीं है जैसे कि कर्मोंकी रचना, निषेकोंकी रचना इनकी परिस्थिति और समय-समयकी व्यवस्थाके वर्णन से, कार्यपरिणतिके दिग्दर्शनके अनुकूल उदयके फिट बैठनेके अवगमसे तीनों लोकमें उनके मापके वर्णनमें इत्यादि अनेक सूक्ष्म तत्त्वके वर्णनमें दुर्गम तत्त्वोंका जब अन्दाज होता कुछ ज्ञान होता है तो सर्वज्ञ आप्तकी ओर श्रद्धा बढ़ता है। ऐसे, यदि आप्त नहीं होते तो कैसे यह ज्ञानपरम्परा रहती। आप्तनिरूपित अधर्मद्रव्य युक्तिगम्य भी है।

यहाँ अधर्म द्रव्यका लक्षण बताया जा रहा है कि जीव पुद्गलके एक साथ स्थापनमें हेतुपना अधर्म द्रव्यका लक्षण है।

काल द्रव्यका लक्षण— काल द्रव्यका लक्षण है समस्त शेष द्रव्योंके परिणमनों में समय-समयमें वर्तनमें हेतुपना होना। यह परिणमनका हेतुपना भी कालद्रव्यको छोड़कर अन्य द्रव्योंमें असम्भव है। जो भी अन्य द्रव्य परिचयमें आते हैं उनमें यह विशेषता नहीं नजर आती सो अनुमानित होता है कि परिणमनका जो हेतु है वह काल द्रव्य है। काल द्रव्यके बारेमें आगे गाथा आवेगी और काल द्रव्य का अस्तित्व है इसका वर्णन न्यायशैली व सिद्धान्तप्रतिपादनसे किया जायगा।

जीवका परिचय--जीवका विशेष लक्षण है चैतन्य परिणाम यह जीव भी अमूर्त है अपन जीव हैं स्वय ना? इस कारण अपना पता रहता है। देखो भैया स्थूल है द्रव्य कर्म और सूक्ष्म है भाव कर्म। तो भी द्रव्यकर्मका परिचय नहीं हो पाता है और भावकर्म का परिचय होता है क्योंकि भाव कर्म स्वय की बीती हुई दशा है और द्रव्य कर्म हमसे पृथक् पदार्थ है सो द्रव्यकर्मको किसने समझा कि यह अमुक है द्रव्यकर्म, यह देखली गई

कर्मकी गांठ, ऐसा परिचय क्या किसीने किया ? इस प्रकार कुछ भी द्रव्य कर्मके सम्बन्धमें परिचय नहीं है। यद्यपि कर्मोको मूर्त कहते है, वे अमूर्त नहीं है तिस पर भी हम द्रव्यकर्मका परिचय नहीं। भावकर्मका परिचय, गुस्सा आ गया, छल कपट घमंड आदि हुआ, इच्छा हुई, विषयवासना हुई इन सब बातोका पता पड जाता है। इनमे बीतने वाली ये बाते है, इनमे तन्मय है इस कारण भावकर्मका परिचय अच्छी तरहसे करते है, परन्तु द्रव्यकर्मका परिचय नही कर सकते है। इसका कारण यह है कि द्रव्यकर्म पर है व इन्द्रियग्राह्य नही है।

अमूर्तोमे मात्र मेरी गम्यता—इन अमूर्त पदार्थोका हम परिचय नही कर पाते और अन्य जीवोका भी परिचय हम नहीं कर पाते, हाँ अपना परिचय जरूर हो जाता है कि यह मैं खुद हूँ, "अहं" यह अहंप्रत्ययवेद्य हूँ, मैं हूं इस प्रकारके ज्ञानमे वेद्य हूँ, मैं अपने आपको समझ लेता हूं ना जीवका लक्षण है चैतन्यपरिणमन, यह आत्मा आकाशवत् अमूर्त है, अन्तर मात्र आकार और असाधारण गुणका है।

आकाशकी निराकारता—जैसा आकाशका चिन्ह बताया है समस्त द्रव्योको साधारणरूपसे अवगाह देनेका निमित्त होना। यह बात अन्य द्रव्योमे नही पायी जाती है क्योंकि अन्य सब द्रव्य प्रमाणगत है। सब जगह ही नहीं है, उनका आकार है। धर्म द्रव्य है वह ३४३ घन राजू प्रमाण आकारवाला है, अधर्म द्रव्य भी इतना है। जीव है वह अपने २ धारण किये इस शरीरके अवगाहके प्रमाण है या मुक्ति होने पर जिस शरीरसे मुक्ति होती है उसकी अवगाहना प्रमाण है, अरहत अवस्थामे समुद्घातके समय उससे भी अधिक प्रमाणवाला है पर अधिकसे अधिक प्रमाण वाला यह जीव ३४३ घन राजू प्रमाणका है। इस प्रमाणसे अधिक विस्तारवाला नहीं हो सकता है। यह प्रमाण लोकपूरण समुद्घातमे होता है तो इन द्रव्योमे भी आकार है मगर आकाश निराकार है। आकाशके बारेमे यह क्या बताया जा सकता है कि पूर्वमे कैसा आकार है, पश्चिममे कैसा आकार है, गोल है कि चौकोर होगा। अतमे आकाश का आकार कैसा है ? गोल है कि चौकोर है ? फिर उस कोनेके बाद क्या आकाश नहीं है ? अरे आकाश सर्वगत है इसकी सीमाके बारेमे किसी प्रकारकी कल्पना नही की जा सकती है, अवगाहनका सम्पादन करना आकाशका काम है यह लक्षण आकाश का निश्चय कराता है।

धर्मद्रव्यकी सिद्धिमे एक प्रधान युक्ति—धर्म द्रव्यका काम गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोको लोकपर्यन्त हमेशा गमनका हेतुपना होना है। यह लक्षण धर्म द्रव्यको प्रसिद्ध करता है, यह लोक पर्यन्त शब्द जो यहाँ पूज्यश्री अमृतचन्द्रजी सूरीने कहा है इससे धर्मद्रव्यके अन्दाजमे विशेष सहयोग मिलता है कि यह व्यवस्था क्यो है कि समस्त द्रव्य कुछ हदतक है और उसके बाद ये सब नही है इसका कोई कारण है ? और

वह कारण है लोकाकाशके बाहर धर्मद्रव्यका अभाव। यद्यपि पर पदार्थ अपने-२ मे परिणमते हैं और अपने ही कारणसे सब कुछ करते हैं, मगर उन सबके परिणमन की क्रियामे, विकारमे, विभावमे कोई अन्य उपाधि हेतुभूत होता है। कितनी बातें स्पष्ट समझमे आती हैं, कितनी ही नही आती है, कोई बात कम समझमे आती है, जो जो बोलनेमे बातें गुजरती हैं जैसे रसोई बनाना, पढना, लिखना, यह करना, वह करना आदि भाव ज्यादा समझमे आते हैं, जीवमे विकार होना, जीवके परिणमनकी विधि होना इनमे भी युक्ति ठीक समझ जाते हैं कि हां कोई निमित्त है पर और सूक्ष्म चीजोमे, अमूर्त चीजोंमे यह परस्परका ऐसा निमित्त बना हुआ है कि जिसका समझना यद्यपि दुर्गम है पर कुछ न कुछ युक्तिमे ऐसा भान होता है कि कोई चीज है। धर्म द्रव्यको सीधा नही कहे कोई किन्तु वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि आकाशमे कुछ श्रेणियाँ ऐसी हैं, कोई ईथर जैसा होना है कि जिसके होनेके कारण चीजें चलती है, शब्द चलते है जो भी गति करनेवाली चीजें हैं वे चलती है। ऐसा अदाज तो वैज्ञानिकोको भी हो गया है। तो यहाँ आचार्य देवने धर्म द्रव्यका वर्णन किया है कि वह धर्म द्रव्य समस्त जीव पुद्गलोमें गतिका कारण है लोक पर्यन्त ; लोकसे आगे नही।

गतिहेतुत्वका अन्य द्रव्योमे अभाव—यह गतिहेतुत्व कालका लक्षण क्यो नहीं हैं। यो नही है कि काल अप्रदेशी है। और, भैया ! पुद्गल भी अप्रदेशी है, शरीर भी अस्तिकाय नही है। पुद्गलको अस्तिकाय किस अपेक्षासे कहा उसका काय केवल एक प्रदेशका है बहुप्रदेशका नही है पर व्यवहारमे हम पुद्गलको एक पिंडके रूपमे देखते हैं और हमे एक चीज मालूम भी होती है ? अगर चौकीका कोना सरकायें तो सारी चौकी सरक आती है, किसी पुद्गलपिंडको किसीने हटाया तो वह पुद्गल बिखरा हुआ नही नजर आता है इसलिए व्यवहारमे स्कध एक चीज है और प्रदेश वाला है, अनन्त परमाणुवाला है, आकाशके बहु प्रदेशमे रहनेवाला है ऐसे स्कंधोको अस्तिकाय कहते हैं पर उनमे वस्तुत अस्तिकायपना नही है। कोई प्रश्न करे कि जीवका लक्षण क्यो नही गतिहेतुत्व होता ? कहते हैं कि जीव केवल लोकके असख्यातभाग मात्र विस्तृत है समुद्घातके अतिरिक्त अन्य समयोमे यह जीव देहप्रमाण लोकके असख्यात मे भागप्रमाण है, यह सर्वत्र नही है जिससे कि यह जीव अन्य द्रव्योंके गमनका हेतु बन जाय। धर्म द्रव्य समस्त लोकमे है इससे उसमे गमनहेतुपनाका अनुमान हो सकता है। आकाश क्यो गमनका हेतु नही बना? उत्तर—वह लोक है और यह अलोक है ऐसे लोक और अलोकमे आकाशके जो भेद पडे हैं वे क्या आकाशके कारण पडे है? आकाशके कारण लोक अलोक भेद नही है किन्तु जहाँतक धर्म द्रव्य है वहाँ तक लोक माना गया है याने इस कारण जहाँ तक जीव पुद्गलका आवास रहता है वहाँ तक लोक है। और अलोककी सीमा अचलित है इसलिए आकाशका भी गुण गमनहेतुत्व नहीं है।

आकाश तो सर्वत्र है, लोकके बाहर भी है वहाँ तो जीवादिक नहीं हैं। सो यह लोक अलोकका विभाग धर्मद्रव्यको ही सिद्ध करता है।

स्थितिहेतुत्वका अन्य द्रव्योंमे अभाव—अधर्म द्रव्यका हेतु क्या है? इसके उत्तर मे कहते हैं कि एक बारमे स्थितिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोको लोकपर्यन्त ठहरनेमे जो हेतुपन है वह अधर्म द्रव्य है। यह गुण भी पहिलेकी भांति काल द्रव्यमे नही है, जीवमे नही है, आकाशमे नही है, धर्मका काम अधर्मसे उल्टा है, पुद्गलमे तो हो ही कैसे सकता, इसलिए यह स्थितिहेतुत्व लक्षण अधर्म द्रव्यको सिद्ध करता है।

वर्तनाहेतुत्वका अन्य द्रव्यमे अभाव—भैया! अब काल द्रव्यको कहते है कि इन समस्त द्रव्योकी पर्यायमे प्रतिसमय उनकी वर्तना चलती उसमे जो हेतु होता है वह काल द्रव्य है। उन पदार्थोमे समय समयकी वर्तना स्वत असम्भव है याने कारणातर-साध्य है। भैया! इतना तो व्यवहार कालके बारेमे आप जानते ही हैं कि पदार्थोंका परिणमन, समय गुजरता है तो होता है समय नही गुजरता तो कैसे बदलना होता। कालकी बात कही जारही है,यदि समय नही गुजरता, सेकेन्ड आदि समय नही गुजरता तो पदार्थोंका परिणमन कैसे होता? रोटीको पकाई जाती है सेकी जाती है। मिनटोंमे ही रोटी पक जाती है तो मिनटोका समय गुजरता तो जाता है सो देखलो वर्तनामे काल निमित्त है ना, निमित्त जितना होता है वह बाह्य होता है। उपादान-भूत पदार्थोंमे दूर होता है, उपादानमे उनके ही कारण उनकी योग्यतासे वहाँ परिणति होती है, यह बात उपादानमे यथार्थ है, पर बाह्य पदार्थोका जब मेल देखते है और अन्वय व्यतिरेक देखते हैं तो उनमे निमित्तका अनुमान होता है।

यहा ऐसा देखो कि यदि समय नही गुजरता तो यह बात पुरानी नही पडती। यह जो पुरानापन हुआ इसका निमित्त काल है। बदलनेमे यद्यपि यह ही इस प्रकार की दशाको प्राप्त होता है, पर यह भी यथार्थ है कि यदि समय न गुजरे तो उनकी यह अवस्था न हो। व्यवहारकालके कारण समयमे यह निमित्त व्यवहारपना विशद प्रतीत होता है, सो भैया, द्रव्य तो कोई भी निमित्त नही होता, पर्याय ही निमित्त होता है यह व्यवहारकाल निश्चलकालका पर्याय है, कालद्रव्यकी पर्याय है। वह एक-समयमे होता, यह विशेपता अन्य द्रव्योंमे नही है। इतना यहाँ विज्ञात कर लेना है कि समय गुजरता है वह पदार्थके परिणमनका निमित्त होता है। पदार्थोका परिणमन उनमे ही स्वय है, पर सर्वतोमुखी चारों ओरकी बातका जब विचार करते है तो यह बात भी यथार्थ जचती है कि समय गुजरता है उसको निमित्त पाकर यह भी परिवर्तित होता रहता है इस कारण समयनामक विशिष्टवृत्ति कालका निश्चय कराता है।

चैतन्य परिणामका अन्य द्रव्योंमे अभाव—भैया! जीवका निश्चय कराने वाला

चैतन्य परिणाम है क्योंकि बांकीके सब द्रव्य अचेतन हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य चेतनेवाले नहीं हैं। इस कारण चैतन्यपरिणमन इन द्रव्योंमें असम्भव है सो यह उपयोग चेतन द्रव्यका निश्चय कराता है। इस प्रकार गुण विशेष का ज्ञान कर लेना चाहिए। यहाँ तक असाधारण गुणोंका संक्षिप्त वर्णन किया है।

पदार्थोंकी साधारण-साधारणगुणात्मकता—पदार्थ जितने है। वे सब स्वयं अपने-अपने असाधारण व साधारण गुणस्वरूपको लिए हुए हैं। साधारण गुणोंका भी अस्तित्व पृथक् ऐसा नहीं है कि कोई गुण स्वतन्त्रतासे फैला हुआ है, अपनी अलग सत्ता कायम किए हुए है और वह सबमें पाया जाता है, सबको व्याप कर रहता है ऐसा नहीं है किन्तु वे सब गुणरूप है, ये गुण साधारण हैं और ये गुण असाधारण हैं ऐसा पदार्थोंके नाते कोई विभाग नहीं है। पर पदार्थ हैं और वे इतने गुण रूप हैं फिर जब हम सब पदार्थोंमें दृष्टि लगाते हैं तो यह कहते हैं कि हमें अनेकों गुण तो साधारण नजर आ रहे हैं इसमें भी है और उसमें भी है। सब पदार्थों में नजर आते है सो ६ तो साधारण गुण हैं और ये गुण तो इन ही पदार्थोंमें प्रतीत हुए सो ये असाधारण गुण हैं।

गुणोंकी स्वतंत्रसत्ताका अभाव— इन साधारण गुणोंको यों नहीं मान लेना कि जैसे समवाय एक है, सर्वव्यापक है और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें वह रहता है यों माना है ऐसे समवाय की तरह ये साधारण गुण नहीं है। भेदवादमें पदार्थ ६ माने गये हैं। द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। द्रव्य तो व्यक्तिगत हैं समवाय, 'सामान्य,गुण, अभाव आदि ये सामान्य हैं, एक हैं, सर्वव्यापक हैं। लक्षणतः विचारो तो द्रव्यको छोड़कर बाकी सब पदार्थ सर्वव्यापक है। जैसे जीवमें गुण ज्ञान है और द्रव्य है जीव। विशेषवादमें जीव और ज्ञान भिन्न भिन्न है, किन्तु ज्ञानके समवायसे जीव ज्ञानी कहलाता है। जीवनामक पदार्थ अलग है और ज्ञाननामक पदार्थ अलग है, जीव ही ज्ञान नहीं है ये तो दो भिन्न-भिन्न सत् अलग हैं, जीवका सत् अलग है और ज्ञान का सत् अलग है और इनका समवाय करनेवाला समवायनामक पदार्थ अलग पहिले से ही है। प्रश्न-जीवमें ज्ञानका समवाय कब तक रहेगा ? उत्तर मिलता है अनन्त काल तक साथ रहेगा। अनन्त कालसे जीव और ज्ञानका समवाय है और अनन्त कालतक रहेगा। फिर हैं कैसे अलग ? तो उसका उत्तर होता है कि भले ही चाहे अनन्त काल तक रहे, पर उनकी सत्ता न्यारी न्यारी है। जीवका काम और है, ज्ञानका काम और है। जिसे जैनसिद्धान्तमें कहते हैं अतद्भाव कहा उसे विशेषवादमें पृथग्भाव कहा है। अतद्भावका तात्पर्य लक्षणभेदसे है, प्रदेशभेदसे नहीं, सो भैया ! यों समवायकी तरह ६ गुणोंको नहीं मानना, किन्तु जैसे विशेष गुण अपने ही प्रदेशमें है जीवका चैतन्य नामक विशेष गुण चैतन्यके ही प्रदेशमें है, इसी प्रकार साधारण गुण भी उस वस्तुके

प्रदेशमे है।

साधारण गुणोकी भी पृथक् सत्ताका अभाव – इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्त्व, प्रमेयत्व ये समस्त साधारण गुण भी उसके, उसके ही प्रदेशमे है। दूसरेके गुण दूसरेके ही प्रदेशमे रहे ऐसा कोई यहाँ गुण नही है। जो सर्वव्यापक हो,एक हो और सबमे पाया जाता हो ऐसे किसी सत् की व्यवस्था नही है किन्तु जिस पदार्थमे जो गुण है वह उस ही प्रदेशमे है, उससे बाहर नहीं है। हाँ कुछ गुण जैसे जीवमे मिले, इसी प्रकार धर्मद्रव्यमे मिले सब द्रव्योमे मिले। इस कारण उन गुणोका नाम साधारण गुण रख लिया गया हैं।

पदार्थोंकी परिपूर्णता व गुणपर्यायमयता—भैया प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणोमे तन्मय हैं, अपने प्रदेशोमे हैं उनका परिणमन, उनकी स्वयकी क्रिया, उनकी स्वयकी परिणति उनमे ही है, उनके बाहर नही हैं। इस कारण प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है, अपनी ही पूर्ण सत्ताको लिए है। प्रत्येक समय द्रव्य पूरे हैं, अधूरे नही है। साधारण गुण व असाधारण गुण उन्ही प्रत्येकमे स्वयमे है। जब जीव रागी हो तो उस समयमे भी पर्याय उसकी पूरी हैं, आधी नही है, द्रव्य भी पूरा है। कोई पर्याय इस तरह नही होतीकि भाई अभी तो हम आधे ही बन पाये हैं अब आधे दूसरे समयमे बनेंगे। प्रत्येक समय मे पर्याय पूर्ण है। बस पदार्थ है और वे स्वयकी वृत्तिसे वर्तते रहते है इतनी ही तो बात है। इस तरह वस्तु स्वरूपको जब यथार्थ रूपमे देखते हैं तो वहाँ मोह नही ठहर पाता। यहाँ तक उन अमूर्त द्रव्योंका वर्णन हुआ।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा पुणोय आगास।
देसेहिं असखादा णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥१३५॥

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये प्रदेशवान पदार्थ हैं, क्योकि इनमे अनेक प्रदेश पाये जाते है। परमार्थमे तो प्रत्येक पदार्थ अखण्ड हैं द्रव्य होनेसे अखण्ड क्षेत्रो हैं। किन्तु परमाणुके मापका जितना एक अखण्ड प्रदेश है, इतने-इतने होकर किस पदार्थमे कितने प्रदेश हैं इस दृष्टिसे असख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशीका वर्णन है। सो अनेक प्रदेशोका वर्णन परमाणुसे अवगाहित आकाशप्रदेशके मापके कारण उपचारित है इसी प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और जीवके भी प्रदेश उपचारित है। सो ये अस्तिकाय अनेकान्तसे एकक्षेत्री व अनेकक्षेत्री सिद्ध होते हैं।

एक पदार्थमे अनेकान्तके खोजकी जिज्ञासा—यहाँ कोई यह जिज्ञासा करे कि प्राय अनेकान्त तो माना जाता है, पर दो वस्तुओंकी अपेक्षासे माना जाता है। जैसे यह घट घट रूपमे है, पटरूपसे नही है तो यह घटका क्या अनेकान्त हुआ ? इसमे दो का मुकाबला करके अनेकान्तको द्विष्ठ बतलाया है कि अपनी अपेक्षासे है परकी अपेक्षा नही है, ऐसी बातमे स्वय एक पदार्थकी चर्चा तो नही होती है। एकही पदार्थमे

"है" और नही ये दोनो बातें घटित होना चाहिए।

एक वस्तुमे द्रव्य दृष्टिसे अनेकान्तका विधान—उक्त जिज्ञासाका समाधान सर्वदेश वर्णन करनेपर होगा और उसमे ही एक क्षेत्र व अनेकप्रदेशीका भी समाधान होगा। भैया! पदार्थ जाना जाता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे। कोई पदार्थ हो, वह अपने द्रव्यसे है, परके द्रव्यमे नही है, यह तो अपेक्षाकृत वर्णन है। अपने क्षेत्रमे है, परके क्षेत्रमे नही है, अपने कालसे है, परके कालसे नही है। अपने भावमे है, परके भाव से नही है। यह सब अपेक्षाकृत वर्णन है। अनेकात तो होगया मगर उसही प्रदेशात्मक पदार्थमे अनेकान्त तो नही हुआ तो एक ही पदार्थमे अनेकान्त घटित करनेके लिए चिन्तन तो कीजिये। द्रव्य किसे कहते हैं? गुण पर्यायका जो समूह है उसे द्रव्य कहते हैं, ऐसा वर्णन करना भेदका वर्णन है। और, द्रव्य है वह एक पूर्ण वस्तु पिण्डात्मक जिसकी इकाईको लेना है यह अभेदका वर्णन है। जैसे जीव द्रव्यको लो, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति आदि गुण और उन सब गुणोकी पर्यायें उनका जो समूह है वह जीवद्रव्य है, यह भेदवाला वर्णन हुआ और जो यह एक वस्तु है, वह हुआ अभेदरूपका वर्णन तो वही जीव द्रव्य जब भेदरूप द्रव्यमे देखा जाता है तो भेदरूप द्रव्यसे तो है और अभेदरूप द्रव्यसे नही है और जब अभेदरूप दृष्टिसे देखा जाता है तो अभेदरूप द्रव्यसे है व भेदरूप द्रव्यसे नही है। यह प्रकरण चलरहा है कि एक वस्तुस्वरूपमे उसकी ही अपेक्षा अस्ति और नास्ति आवे। जीवके चतुष्टयमे तो है और पुद्गलके चतुष्टय से नही है, यह तो अपेक्षाका वर्णन है, इसमे तो भिन्न-भिन्न द्रव्योमे अनेकान्त आया, किन्तु एक ही द्रव्यमे भेद व अभेद दृष्टिसे जो परस्पर अस्ति हुआ और नास्ति हुआ, वह एकमे अनेकान्त हुआ। भैया! पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप होते है। सो उन चारोको भी दो दो रूपमे देखें—द्रव्य दो रूप हैं एक भेदरूप द्रव्य और दूसरा अभेदरूप द्रव्य। किसी भी एक द्रव्यको ले लो। एक व्यक्तिगत जीवको ले लो, जाति रूपको नही जैसे खुदको ले लो, तो यह आत्मा अनन्त गुण पर्यायोका समूह है, अनन्त गुणवान व अनन्त पर्यायवान है। ऐसा जब देखा तो यह भेदरूप द्रव्यकी दृष्टिसे देखा। अब उस ही आत्माको अभेददृष्टिसे जब देखा तो भिन्न भिन्न गुण पर्याय फिर इसका समूह, यह नही दिखेगा किन्तु जो पिंडरूप है, एकत्वरूप है, ऐसा अभेदात्मक द्रव्य ही दिखेगा तो जब भेदरूप द्रव्यसे देखा तो यह आत्मा है, यो है जिस प्रकारसे देखा हो, और अभेदरूप द्रव्यसे नही है, जब अभेदरूप द्रव्यसे देखा तो अभेदरूप द्रव्य तो है, किन्तु भेदरूप द्रव्य नही है। तब स्वदृष्टिकी अपेक्षा ही एकमे अस्ति नास्ति आया।

एक वस्तुमे क्षेत्रदृष्टिसे अनेकान्त—क्षेत्रकी अपेक्षा देखने चले तो जब प्रतीत हुआ यह जीव असख्यातप्रदेशी है, असख्यात प्रदेशमे फैला हुआ है, तो यह हुआ भेद स्वक्षेत्र, किन्तु ऐसे अनगिनते प्रदेश जो इसमे हैं वह सब एकस्वरूप अखण्ड क्षेत्र है।

उसमे भिन्न-भिन्न खण्ड-खण्ड रूप क्षेत्र नही है, अतः इसही जीवको एक अखडक्षेत्रीय की दृष्टिसे देखा तो वह अभेद अखण्डदेशी नजर आया। और सख्यामे गिनतीमे भेद करके देखा तो, भेक्षेत्रीय नजर आया। भेदक्षेत्रीयदृष्टिसे आत्मा है तो अभेदक्षेत्रीय आत्मा नही है। जब अभेदसे देखा तो अभेदक्षेत्र दृष्टिमे आत्मा है वह भेदक्षेत्रदृष्टिका आत्मा नही है। एक ही पदार्थमे उसके ही क्षेत्रकी अपेक्षा है भी और नही भी है, यह है एक पदार्थमे उस एकके ही कारण अस्ति और नास्ति का दर्शन।

एक वस्तुमे कालदृष्टिसे अनेकान्त—अब कालदृष्टिमे देखो, काल माने पर्याय, इसे बहुत ध्यानसे सुनना। इसमे चार प्रकारका वर्णन दो पद्धतियोमे होगा। काल का अर्थ है पर्याय। एक तो जीवकी पर्यायको इस तरहसे देख सकते है-यह ज्ञान गुणकी पर्याय, यह दर्शन गुणकी पर्याय, यह चारित्र गुणकी पर्याय, इस तरह एक ही समयमे कितनी पर्याये हो गई ? अनन्त पर्यायें हो गयी एकही समयमे, इसे कहते हैं भेदरूप पर्याय। परमार्थतः क्या जीवमे अनन्त पर्याये हैं ? नही, जीव एक वस्तु है और यह परिणाम रहा है। एक समयमे पर्याय एक है अनेक पर्याये नही हैं। अनेक गुण भी नही है तो अनेक पर्यायें कहाँसे आ गयी ? गुणभेद भी व्यवहारसे है, पर्यायभेद भी व्यवहारमे है। और जो भी बना, जैसा बना, परिणमा वह एक पर्याय है। तो एक समयमे ही उस उस पर्यायको देखा यह अभेदपर्याय है। जब यह जीव भेदपर्यायसे है तो यही अभेदपर्यायकी दृष्टिमे नही है। यही जब अभेदपर्यायकी दृष्टिसे है तब भेदपर्यायकी दृष्टिका नही है। यह प्रथम पद्धति है। दूसरी पद्धतिसे देखिये जीवकी पर्याय ऊर्ध्वता विशेषकी अपेक्षा भी देखी जाती है। अनन्तकालके जितने समय हैं उतनी ही तो इस जीव द्रव्यमे पर्याये हैं। तो उन पर्यायोकी अपेक्षा देखो तो उन अनन्त पर्यायोका समूह यह जीव है। यो देखो, ज्यो उन-भिन्न-भिन्न समयोकी अनन्त पर्याये नजर आकर उस समुदायको द्रव्य माने यह तो है भेददृष्टि और वे समस्त पर्यायें भी आखिर पर्याय ही तो हैं। पर्याय जातिकी अपेक्षा देखो तो वे अनन्त व्यक्त पर्याये एक परिणमन मात्र है, यह हुई अभेदपर्यायकी दृष्टि। तो इस ऊर्ध्वताविशेपकी अपेक्षामे याने भेदपर्यायकी दृष्टिमे आत्मा है तो अभेद पर्यायकी दृष्टिमे नही है। और अभेद पर्यायकी दृष्टिमे जो आत्मा है वह भेदपर्यायकी दृष्टिमे नही है। इसी प्रकार एक जीव पदार्थमे कालकी अपेक्षा से है और नही है, ये दोनो बातें आ जाती हैं।

एक वस्तुमे भावदृष्टिसे अनेकान्त—भैया ! अब भावकी दृष्टिसे एकमे अनेकान्त देखें, भावके माने हैं गुण। इस जीवमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति, आदिक अनत गुण हैं, अनन्त भाव हैं, यो अनन्त भावभेद दृष्टिमे हुए, किन्तु परमार्थसे जीव एक है और उसका स्वभाव एक है। इस जीवको जब हम भेददृष्टिसे देखते है तो अनन्तभाववान है और जब अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो एकभाव है, एकस्वभाव है। जिसको एक शब्दमे

कहा चैतन्य स्वभाव। यो भाव भेदभाव और अभेदभाव दो प्रकारके उपयोगमे आये। अब देखिये, भेदभावकी दृष्टिसे जो आत्मा है वह भेदभावकी दृष्टिका आत्मा नही है। और अभेदभावदृष्टिसे जो आत्मा दृष्ट होता है वह भेदभाव दृष्टिका आत्मा नही है। इस तरह जो भेदभावकी अपेक्षा है वह अभेद भावकी अपेक्षा नही है और जो अभेदभावकी अपेक्षासे है वह भेदभावकी अपेक्षाका नही है। स्वचतुष्टय से है और स्वचतुष्टयसे नहीं है, ऐसा स्याद्वाद एक पदार्थमे घटित होता है।

सप्रदेशी और अप्रदेशी—भैया! प्रकृतमे यह कह रहे है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये प्रदेशवान है, क्योंकि इनमे प्रदेश वहुत है। किन्तु कालाणु एक प्रदेशी है, यहाँ अप्रदेशीका अर्थ प्रदेश नही है, ऐसा नही लेना किन्तु एक प्रदेशी लेना। अप्रदेशका अर्थ है दो आदि प्रदेश न होना। काल एक ही प्रदेश वाला है।

जीवका सस्थान अनिर्दिष्ट—जीव प्रदेशवान है, लोककाशके वरावर प्रदेश वाला है। उपाधिवश इसमे सकोच विस्तार हुआ करता है जैसे-जीव चीटीके शरीरमे गया तो चीटीके शरीरकी माप वरावर वह जीवप्रदेश हो गया और हाथीके शरीरमे गया तो हाथीके शरीरके मापके वरावर जीव प्रदेश फैल गया। तो यह फैलता और सिकुडना है। भैया वडे गजवकी चीज है कि जीवका प्रदेश, जीवका आकार जीवका माप घटा वढा हुआ रहता है। यह प्रदेशकी अपेक्षा वात है।

जीवका लक्षक लक्षण—जीवका वर्णन तो प्रधानतया ज्ञानकी अपेक्षा होता है। प्राय प्रदेशकी अपेक्षा वर्णन नही होता। जीवमे दो गुण है ज्ञान और आनन्द इन दोनोको ही यह जीव चाहता है कि मेरा ज्ञान वढे और मेरा आनन्द वढे। तो जीव हैं सभी एकही उद्देश्यको लिये हुए कि ज्ञान व आनन्द प्राप्त हो। त्याग करते हैं, समाधि- करते हैं ज्ञानोपयोगको लेते हैं उनका प्रयोजन आनन्दके लिए है और जो प्राणी ससारके विषयोमे दौड लगा रहे है उनका भी प्रयोजन आनन्द पानेके लिए है, भैया! ज्ञान गुण तो छोडा ही नही जा सकता है, क्योंकि ज्ञान और आनन्द ये दो मुख्य गुण है,सो ज्ञान गुणका जो प्रयोग होता है, ज्ञानकी अर्थक्रिया होती है वह तो अर्थग्रहणरूप है, इस कारण जितने पदार्थोंका ग्रहण हुआ, जानना हुआ, याने जितने विस्तारमे, जितने क्षेत्रमे जितने पदार्थोका विकल्प हुआ, वह ज्ञानका एक विकाश है। ज्ञानका क्षेत्र वहुत वडा है इसकी अपेक्षा कहा जाता है कि आत्मा सर्वव्यापक है। यह ज्ञान कितना वडा है? णाणं णेयपमाणं, ज्ञान कितना है? जितना कि ज्ञेय है। और, ज्ञेय कितना है? जितना कि विश्वमे चेतन अचेतन सर्व अर्थ है। तो ज्ञान कितना वडा हो गया? जितना कि सभी विश्व है इतना वडा ज्ञान हो गया। एक सिद्ध भगवानका ज्ञान लो, सर्वज्ञका ज्ञान लो। कितना वडा ज्ञान है? जितना कि त्रिकालवर्ती यह समस्त सर्व लोक व अलोक है, इतना ही वडा ज्ञान है। इस लोकसे वाहर जो अलोकाकाश है वहाँ भी ज्ञान

फैला हुआ है। इस दृष्टिसे यह आत्मा सर्वव्यापक है, यह आत्मा लोकालोकव्यापक है, पर प्रदेशकी अपेक्षासे नही, ज्ञानकी अपेक्षासे है। आत्मा ज्ञानके बराबर है। ज्ञान ज्ञेयके बराबर है और ज्ञेय लोकालोकरूप समस्त पदार्थ प्रमाण है, इतना सर्वव्यापक है आत्मा। यह वर्णन हुआ ज्ञान गुणकी अपेक्षासे।

आनन्दका आलोडन—अब आनन्द गुणकी अपेक्षा देखो। आत्मा आनन्दमय भी तो है और आनन्द कितना बडा है ? आनन्द क्या लोकालोकव्यापक है ? आनन्द गुण उतना बडा है जितनेमे जीवके प्रदेश हैं। आनन्दका अनुभव जीवप्रदेशमे होता है अर्थात् इस जीवप्रदेशमे ही आनन्द सीमित रहता है। जैसे कहते हैं कि सुख होता है तो एक फुरेरूसी आगयी, रोगटे खडे हो गये यह विशिष्ट अनुभव आत्मप्रदेशमे ही होता है प्रदेशमे ही नियमित है इसके बाहर क्या आनन्दका अनुभव होता है ? नही होता है। पर ज्ञानके समय तो आत्मप्रदेशका भी आधार समझमे नही आता। हाँ जान लिया, इतना जान लिया। यह देखो ना, चार मीलमे फैल गया जानन। किन्तु आनन्द की अनुभूति प्रदेशोमे ही होती है। तो यह जीव बहुप्रदेशी है, जितने जीवके प्रदेश हैं उतनेमे ही आनन्द गुणका परिणमन है।

जीवके निजक्षेत्रका सकोच, विस्तार—प्रदेशोकी अपेक्षा सकोच और विस्तार कैसा हो रहा है ? आज मनुष्य भवमे है तो कल अगोपागरहित शरीरमे अवस्थित है, इस तरहसे देखो इसके फैलनेकी क्षेत्रीय अपेक्षा लगी है। जीव अखडक्षेत्रीय होकर भी जीवके प्रदेशोका आकार ऐसे फैले हुए देहके मापमे हो गया। यह आत्मा हाथमे है और इन पैरोमे भी आत्मा है। देखो हाथमे प्रदेश है, पैरमे प्रदेश है, किन्तु इन दो पैरोके बीच जितना आकाश क्षेत्र छूटा है यहाँ नही है और फिर भी अखडक्षेत्रीय है अखड क्षेत्रका अर्थ है कि परिणमन जो हो वही परिणमन सब प्रदेशोमे हो, समान भी नही कि जैसा ज्ञान हाथके प्रदेशमे होता वैसा ज्ञानपरिणमन पैरोके प्रदेशमे हो, ऐसा समान भी नही किन्तु जो परिणमन एक प्रदेशमे है वही परिणमन सारे प्रदेशोमे है।

अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान—अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान यह है कि एक कोई परिणमन जितनेमे होना ही पडे, जितनेमे बाहर न हो उसे अखण्ड क्षेत्र कहते हैं। तभी तो देखो ज्ञानरूप जो परिणमन एक प्रदेशमे है वही परिणमन सारे प्रदेशोमे है। यह प्रदेश कुछ और भिन्न चीज नहीं है किन्तु जो गुण हैं, गुण परिणमन हैं उनका ही आधार समवायात्मक वह प्रदेश कहलाता है। आज मनुष्य हम हैं तो इस तरहका प्रदेश परिणमन है और मृत्यु करके वृक्ष बन गये तब ? तब तो इन वृक्षोकी सकल देखो नीचे कैसी जडें फैली हुयी है कैसी शाखाये फूटी हुई है, उनकी उपाशाखायें फैली हुई है, कितनी ही टहनियां है, उनमे पत्ते गुथे हुए हैं। पत्तोके बीचमे नसें सी है, छोटी टहनियोमे फूल पैदा होते हैं। उन फूलोके बीच मकरदका स्थान है ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म

क्षेत्रोंके रूपमे भी कैसा फैला हुआ है आत्मा। तो देखो जीवके प्रदेश उतने मापमें फैल गये। जीव कितना ही फैला हुआ हो, सर्वत्र असंख्यातप्रदेशी है। यह कर्मविपाकका निमित्त समझो। जिस-२ क्षेत्रमें जिस-जिस देहमे यह जीव पहुँचता है उस देह प्रमाण उस जीवका विस्तार है। आज इस देह प्रमाण इस जीवका विस्तार है।

आत्मपरिचयका कारण—भैया! आत्मपरिचयका कारण ज्ञानका प्रकाश है। उसीमे हम जीवकी असलियत तक पहुँचते है। उस ज्ञानके माध्यमसे हम आनन्दका अनुभव करते है। प्रदेशका ज्ञान करके आनन्दका अनुभव हो जाय सो नही किन्तु ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेसे आनन्दका अनुभव होता है। ज्ञानस्वरूप यह मैं अपनेको ज्ञानमय जानूँ इसही मे परमहित है, अन्य उद्योगोमे हित नही है, अन्य प्रयत्नोमे मुक्तिका मार्ग नही है। मैं ज्ञानी हू और ज्ञानको ही अनुभवू, ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञान करूँ, यह वृत्ति यदि हममे बन सकती है, तो हम मुक्तिके मार्गमे है, कर्म कलकको काट सकते है, परम आनन्दको पा सकते है। यह जीव प्रदेशदृष्टिकी अपेक्षा सकुचित और विस्तृत होता है फिर भी वे असख्यात प्रदेशोका परित्याग नही करते। प्रदेश वही है इसलिए जीव जो है वह असख्यातप्रदेशवान है।

पुद्गलका क्षेत्रस्वरूप—अब पुद्गलके क्षेत्रस्वरूपकी ओर चलिये। यह पुद्गल द्रव्यसे तो प्रदेशमात्र है। पुद्गल स्वय अखड जो एक वस्तु है वह एक एक प्रदेश प्रमाण है। यह स्कध तो परमाणुओका पिड हुआ। यह पुद्गल द्रव्य नही। एक-एक अणु पुद्गल द्रव्य है और वह प्रदेशमात्र है इसलिए वस्तुत पुद्गल द्रव्य अप्रदेशी है, काल द्रव्य सर्वथा अप्रदेशी है। काल द्रव्योका सघात नही होता, पर पुद्गल परमाणुओका सघात होता है। परमाणुके इस प्रकार प्रदेशवर्धोके कारण समानजातीय द्रव्यपर्याय बनती है सो इस तरह वे स्कध बहुप्रदेशी सख्यातप्रदेशी व असख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशी हो जाते है। इन पर्यायोके रूपसे उन्हे देखा जाय तो पुद्गलोके प्रदेशोमे अवधारण नही होता, नियम नही होता कि जैसे बताया गया कि जीव असख्यातप्रदेशी है, तो वे असख्यातप्रदेशी ही है। धर्मद्रव्य असख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य असख्यातप्रदेशी है, आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है, ये सब इतने प्रदेश वाले ही है। किन्तु पुद्गलके प्रदेशोका कुछ अवधारण नही होता। दो, तीन प्रदेश वाले भी है अर्थात् विविध सख्यात प्रदेश वाले भी है, असख्यात व अनन्त प्रदेश वाले भी है। परमार्थत पुद्गल एक प्रदेशवान ही है। पुद्गल स्कन्धके प्रदेश नियत नही होते।

जीवोका असख्यातप्रदेशित्व—देखो भैया, ३४३ घनराजू प्रमाण समस्तलोकमे भी असख्यात प्रदेश है और सुईकी नोकके गड्ढा भर स्थानमे भी प्रदेश असख्यात है। यह सारी दुनियाँ भी असख्यातप्रदेशी है और स्याहीका एक थोडासा बूँद गिर जाय तो वह जितनी जगह घेरता है वह जगह भी असख्यातप्रदेशी है। असख्यात

असख्यात तरहके होते हैं। कोई भी जीव हो मुक्त जीव हो या ससारी सब असख्यात प्रदेशमे ही ठहरते हैं। निगोद या लब्धयपर्याप्त जीव जिसे कहते है, जिनका अगुलोके असख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनक्षेत्र है। वे भी असख्यातप्रदेशकी अवगाहना वाले है। कोई जीव असख्यात प्रदेशसे कम प्रदेशोमे नही रहता। छोटा से छोटा जीव हो, उसका भी क्षेत्र असख्यात प्रदेशमे है, और १००० योजनका लम्बा, ५०० योजन का चौडा, और २५० योजनका मोटा महामत्स्य भी असख्यात प्रदेशमे है।

स्कन्धनिर्देशनपूर्वक उपसहार—जितने पुद्गल हमे दृष्टिगोचर होते हैं वे सब अनन्तप्रदेशी है, असख्यातप्रदेशी भी नही। अनन्त परमाणुवोका पिंड हुए विना पुद्गलस्कध दृष्टिगोचर नही होता है। पुद्गलस्कधमे कुछ नियम नही हैं कि वह सख्यातप्रदेशी है कि असख्यातप्रदेशी है कि अनन्तप्रदेशी है। होते सब प्रकारके हैं, किन्तु दृष्टिगोचर अनन्तप्रदेशी स्कध ही होता है। स्कधकी अपेक्षा पुद्गल भी अस्तिकाय है। इस वर्णनका प्रयोजन यह है कि हम सारे पदार्थोंको जानकर, विशेषरूपसे समझकर यह निर्णय वना सके कि यह मैं आत्मा समस्त पर पदार्थोंसे सर्वदा 'न्यारा हूँ।' ऐसे भेद विज्ञानकी दृढताके लिए यह समस्त विज्ञान चलता है। यहाँ यह प्रकरण चल रहा है कि द्रव्य प्रदेशवान भी हैं और अप्रदेशी भी हैं। प्रदेशवान यो हैं कि जीव द्रव्य असख्यातप्रदेशी है और पुद्गल द्रव्य परमार्थसे तो अप्रदेशी हैं, किन्तु स्कधकी अपेक्षा कोई सख्यातप्रदेशी कोई असरयातप्रदेशी और कोई अनन्तप्रदेशी हैं, नाना प्रकार है। धर्म द्रब्य असख्यातप्रदेशी है और वह समस्त लोकमे व्यापक है, प्रस्ताररूप है। प्रस्ताररूप कहनेके माने यह है कि लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर धर्म द्रव्यका एक एक प्रदेश अवस्थित है। धर्म द्रव्य एक है, असख्यातप्रदेशी है और प्रस्ताररूप है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी समस्त लोकमे व्यापक है, असख्यातप्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। यह भी लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर एक-एक प्रदेशमे अवस्थित है। ऐसे ही केवलीसमुद्घातमे लोकपूरणके समय जीवप्रदेश लोकके एक-एक प्रदेश पर अवस्थित हो जाते हैं। आकाश द्रव्य सर्वव्यापक है, अनन्त प्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। वह भी एक एक प्रदेशोमे फैला हुआ है सो ये ५ द्रव्य तो प्रदेशवान हैं, इसी कारण इन्हे अस्तिकाय कहते है पर कालाणु द्रव्य केवल प्रदेशमात्र है। कालद्रव्य स्वय पूर्ण एक प्रदेशरूपमे रचा हुआ है। कालकी जो पर्यायें है सो चूँकि पर्यायोमे परस्परमे सम्पर्क नही होता सो जो समय गया वह नही आयगा, वह दूसरे समयमे नही ठहरता है। इसका सम्पर्क ही नही, अत कालाणु अप्रदेशी है। एक काल द्रव्य तो अप्रदेशी है और वाकी के ५ द्रव्य प्रदेशवान् हैं। अब आगे यह बतलाते हैं कि इन प्रदेशवान और अप्रदेशवान समस्त द्रव्योके प्रदेश कहाँ पर अवस्थित हैं। इस वातको पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव इस १३६ वी गाथामे कहरहे हैं —

लोगालोगेसु णभो धम्मधम्मेहिं आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ १३६ ॥

लोक और अलोकमे आकाश द्रव्य रहता है। तथा यह लोक धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्यमे व्याप्त है। इसी प्रकार शेषके जीव पुद्गल भी और काल द्रव्य भी लोकाकाशमे सर्वत्र निरन्तर व्याप्त है।

आकाशकी सर्वव्यापकता—आकाश तो लोक और अलोकमे अविभाग रूपसे रहता है अर्थात् आकाशके दो भेद नही हो सकते। वह तो एक ही है। जो छह द्रव्योका समवायात्मक है वह तो लोक है और छह द्रव्योका असमवायात्मक अलोक है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य लोकमे सर्वत्र है उसका निमित्त पाकर जिनका गमन होता है और ठहरना होता है ऐसे जीव पुद्गलोका लोकके बाहर किसी भी जगह गमन नही होता, और जब गमन नही होता तो गतिपूर्वक स्थिति भी नही होती इस कारणसे धर्म और अधर्म द्रव्य लोकमे ही सर्वत्र व्यापक हैं। धर्मद्रव्यकी सिद्धि करनेमे प्रधान हेतु आचार्योने यह दिया है कि लोकके बाहर चूंकि किसीकी गति स्थिति नही हो सकती है इसलिए सिद्ध है कि उन गुणोका कारणभूत पदार्थ इसके बाहर नही है और आकाश बहुत विशाल चीज है। लोक कितना बडा है। उसके बाहर जीव पुद्गल हैं कि नही हैं? कहाँ तक यह लोक अलोक है। तो परोक्षज्ञानियोको भी यह स्पष्ट जचता है कि कुछ समूह है, समूहकी सीमा होती है। आकाशकी सीमा नही होती क्योकि आकाश सीमासे रहित वस्तु है। समूहकी जहाँ तक सीमा है उसके बाहर केवल आकाश ही है इसका कारण यही है कि समूहके चलने ठहरनेका कारण भूत कोई चीज आगे नही मिलती है। इसलिए वह चीजसमूह सीमित है, वह ३४३ घन राजू प्रमाण लोक है।

काल द्रव्यका विवरण—जीव व पुद्गलके परिणाम विद्यमान रहे इसके लिए जो पर्याय निमित्त है वह वर्तनापर्यायवाला काल है याने समय गुजरे बिना तो परिणमन नही होता है। तो समय तो कोई चीज है और समय छोटासे छोटा एक-एक समय है वह समय किसकी पर्याय है, क्या वस्तु है। समय द्रव्य है कि गुण है कि पर्याय है? तो समय चीज द्रव्य तो है नही, क्योकि वह ध्रुव नही। समय गुण नही, क्योकि ध्रुव नही है। उसे एक पर्याय कहा जा सकता है। और वह समय पर्याय है तो किसी द्रव्यकी अवश्य है सो जिस द्रव्यकी पर्याय समय है, वह द्रव्य है काल द्रव्य। वे लोकके एक एक प्रदेशमे ही रहते है। एक-एक प्रदेश ही उसका काय है। किन्तु इसको काय यो नही कहते हैं कि जो सचित हो उसका नाम काय है। काल तो सचित नही होता। काल न अपनेमे सञ्चित है न अन्य वस्तुके साथ सचित है इसलिए वह अकाय है।

लोकमे जीवादिककी व्याप्तिकी पद्धति—जीव पुद्गल भी लोकमे ही है क्योकि लोक छह द्रव्योमे समवायात्मक है। जीवमे सकोच विस्तारका धर्म है जैसे

पुद्गलमे स्निग्धत्व रूक्षत्वका धम है। जीव और पुद्गल कैसे वध जाते है ? उसका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व है। जीवका स्निग्धत्व हुआ स्नेह रूक्षत्व हुआ द्वेष पुद्गलका तो स्पष्ट है। हालाँकि पुद्गलमे रस है, गधादि है, पर पुद्गल उसके कारण वधनप्राप्त नही है। इसमे वध स्निग्ध गुण और रूक्षत्व गुणके कारण ही है। काल मे सघात भेद होता ही नही, क्योकि ये एक ही प्रदेशमे ठहरे है पुद्गलका कोई नियम नही कि सख्यातमे ठहरे कि असख्यातमे ठहरे। इसी प्रकार काल द्रव्य, जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य ये आकाशमे एक एक देशमे होते हैं। पुद्गल द्रव्य भी असख्यात प्रदेशमे ठहरना है स्कधकी अपेक्षासे और काल द्रव्य तो एक ही प्रदेशमे रहता है। अगर इस समस्त लोकको देखें तो जिस प्रकार काजलसे भरी हुई काजलकी डिबिया होती है उसी प्रकार सर्वत्र ये छह द्रव्य लोकाकाशमे काजलकी सी डिबियामे भरे हुए मालूम होते है। लोकमे कोई प्रदेश ऐसा नही है जहाँ छहमे कम द्रव्य हो। लोकमे सर्वत्र छह द्रव्य पाये जाते है।

लोकका प्रत्येक प्रदश जीव पदार्थसे व्याप्त—सब जीव अनन्तानन्त हैं। किसी भी लोकके प्रदेशको देखो तो प्रत्येक प्रदेशमे जीव प्रदेश मिलेंगे, अनन्ते जीव सर्वत्र ही मिलें और ऐसे भी सूक्ष्म निगोदिया जीव है, जो दूसरे जीवोके देहके आधार नही रहते पर उनके शरीर है वे बिना शरीरके नही है, हाँ उनका वनस्पतिका आधार नही है ऐसे निगोदिया जीव सर्वत्र भरे हुए है। अब जो कोई मानते है कि एक ज्ञानमात्र तत्त्व है वह एक सर्व व्यापक है, तो वह ज्ञानमात्र तत्त्व तो जीव ही है। और, वह जीव सर्व व्यापक है। कोई ऐसा प्रदेश, कोई ऐसी जगह नही है जहाँ जीव न हो। उदाहरणके लिए, कही अगुली उठाकर बतलाओ कि यहाँ जीव है कि नही। वहाँ भी अनन्ते जीव है। उन सब जीवोको केवल जीवस्वरूपकी दृष्टिसे देखो ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो अद्वैत भाव व्यक्त हो जायगा क्योकि वहाँ केवल ज्ञानस्वरूप ही उपयोगमे रह जाता है।

दर्शनके लक्षणोंका लक्ष्य एक—दर्शनका लक्षण कही कही कहा गया है कि सब पदार्थोंमे जो सामान्य प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। एक लक्षण कहता है कि महासत्ताका जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते है। उसी जगह कहते है कि आत्मा का जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते है। दर्शनके बारे मे तीन लक्षण हैं। मोटे रूपसे सुनने पर ऐसा लगता है कि यहाँ आचार्य महाराज क्या अलग-२ बातें कह रहे है। किसी दार्शनिकने कहा महासत्ताका प्रतिभास दर्शन है,। किसीने कहा सामान्यका प्रतिभास सो दर्शन, किसीने कहा आत्माका प्रतिभास सो दर्शन है। यह तो परस्पर विरोध हो गया मगर परस्पर उनमे विरोध नही, तीनोका मूल मुद्दा एक है, लक्ष्यबिन्दु एक है। वह क्या ? आत्मसामान्यप्रतिभास।

दर्शनके एक लक्षणमे शेष लक्षणोका अन्तर्भाव—तीनो लक्षणोमे वही लक्ष्य

पकडा जाय ऐसा सीधा लक्षण क्या है ? दर्शनका सीधा लक्षण है आत्माका प्रतिभास, आत्माका प्रतिभास विशेषरूपमे नही, विकल्परूपमे नही, अर्थग्रहणरूपमे नही। वह लक्षण तो ज्ञानमे चला जाता है, आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास सो दर्शन है। अब बाँकी जो दो लक्षण हैं उन लक्षणोका जो भाव निकले वह इन लक्षणोको पकडता हुआ निकलना चाहिए। इन तीन लक्षणोमेसे एकको अपना लो, अब दोनो लक्षणोके भाव इस लक्षणमे मिलना चाहिए। इस तरहसे उनका अर्थ देखो कैसे हुआ ? जैसे पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास सो दर्शन कहा यहा दर्शन पदार्थोंमे आकारका ग्रहण नही करता अर्थात् अर्थग्रहण नही करता, विकल्प नही बनाता और पदार्थोंमे विशेषत्व भी नही लगाया, फिर उनका जो सामान्य प्रतिभास है सो दर्शन हुआ। तो पहिले तो यही बतलाओ कि जिस समय हम यह कहेगे कि हमे चौकीका सामान्य प्रतिभास हो गया तो चौकी लगा देनेसे ही विशेष बन गया ना। अब सामान्य प्रतिभास क्या रहा ? किसी वस्तुका नाम लिया जाने पर उसमे सामान्य क्या रहा। वहाँ तो विशेपता आ गयी, क्या ? कि इसका सामान्य। सो इन सब पदार्थोंको साधारणतया प्रतिभासनेपर सामान्य प्रतिभास बनता है। यदि हम व्यक्तिगत पदार्थोंमे सामान्य ढूढकर चले तो सामान्य प्रतिभास नही रह सकता। भले ही उन विशेषोके मुकाबले तुम सामान्य व विशेष कहलो। जैसे मनुष्यको सामान्य कहे तो पडित, त्यागी धनी आदि को विशेष कहलो परवह क्या मनुष्य सामान्य तत्त्व है ? अच्छा उसकी विशेषमे ही छटनी कर लो और एक विशेषको ही सामान्य बनालो, विशेष विशेषके मुकाबलेमे सो वहा भी विशेष ओझल हो जाता है, फिर भी वह सामान्य नही है। इन सब पदार्थोको सामान्य प्रतिभास उस विधिमे होता है जिस विधिमे ये सब परपदार्थ विकल्पमे ही न रहे। अगर कुछ भी-विकल्पोमे है तो सामान्य प्रतिभास नही। सो पदार्थोंमे ज्ञान करे और फिर अपने उपयोगमे यह यत्न करें कि इन पर पदार्थोका उपयोग छूटे तथा सामान्य प्रतिभासमे स्थिति हो, वहाँ जब निर्विकल्प प्रतिभास होता है तो उसे कहते हैं पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास, इस सामान्य प्रतिभासमे स्थिति क्या होती है कि उपयोगमे आश्रय परपदार्थोंका तो रहता नही, क्योकि पर आश्रय रहे तो वही आपत्ति है कि वह विशेष प्रतिभास। बन जायगा, सो पर पदार्थका आश्रय तो रहता नही और उपयोग जिसकी परिणति है उपयोग उसको छोडकर कहाँ जावे सो उस उपयोगमे अवश हो केवल आत्मतत्त्व रह जाता है सो उस सामान्य प्रतिभासका आश्रय आत्म-प्रदेश होता है। सामान्य कहो या महासत्ता कहो दोनो एक ही बात है। सो महासत्ताके प्रतिभासमे भी यही बात है। यदि परकी महासत्ता है ऐसा उपयोग हो तो यह विरुद्ध बात हो जायगी। हमारी दृष्टिमे कोई परपदार्थ रहे और फिर महासत्ता दृष्ट हो, ऐसा नही होता। महासत्ता किसी परपदार्थको छूकर नही रहती, किसी एक भी विशिष्ट

पदार्थको छूकर नहीं रहती। वह तो उपयोगमें सर्वव्यापक है, सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है, सामान्य प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है।

दर्शनके सर्व लक्षणोंकी अविरोधकता—सो भैया फलितार्थ यह है कि आत्मप्रकाशक दर्शन और परप्रकाशक ज्ञान जैसे धवलाजीमें लिखा है वह ठीक है तथा स्व-परप्रकाशक ज्ञान और स्वपरप्रकाशक दर्शन जैसा कि नियमसारमें लिखा है वह भी ठीक है। दर्शनका जो लक्ष्य है वही सबमें है, पर उसकी प्रारम्भिक विधि कहीं कोई है कहीं कोई है। इस आत्माका जब हम ग्रहणात्मक प्रतिभास करते हैं तो यह आत्मप्रकाश भी ज्ञानरूप है और इसही आत्माका जब ग्रहणात्मक प्रतिभास नहीं करते हैं, किन्तु स्पर्शात्मक प्रतिभास करते हैं, तब उस प्रतिभासको दर्शन कहते हैं।

दर्शनज्ञानात्मक आत्मा द्वारा ज्ञेय—आत्मसामान्यप्रतिभासक दर्शन और आत्मविशेषप्रतिभासक ज्ञानसे लक्षित इस आत्मा द्वारा यह सर्व विश्व ज्ञेय होता है। ये समस्त पदार्थ छह साधारण गुणोंसे व अपने-अपने विशिष्ट गुणोंसे तन्मय हैं। इन पदार्थोंमें से कौन पदार्थ अनेक प्रदेशी है और कौन एक प्रदेशी है इसका विवरण इस गाथामें किया जारहा है :—

जध ते णभप्पदेसा तवप्पदेसा हवंति सेसाणं।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो॥ १३७॥

जैसे आकाशके प्रदेश हैं वैसे ही शेष द्रव्योंके भी प्रदेश हैं। परमाणु एकप्रदेशी है उस परमाणुको प्रदेशके उद्भवका मूल कारण कहा गया है। आगे आकाशके प्रदेशों का लक्षण पृथक् गाथामें बतायेंगे जो एक परमाणु द्वारा व्याप्य हैं व एकप्रदेशी कहलाते हैं।

प्रदेशका लक्षण अणुव्याप्यत्व—आकाशका जितना एक प्रदेश है उतनेमें जो ठहरे उसके माने परमाणु है, इस प्रकार प्रदेशसे परमाणुकी पहिचान तो ठीक नहीं बैठती, किन्तु एक परमाणु जितने आकाशक्षेत्रको व्यापे है उसे प्रदेश कहते हैं इस लक्षणसे प्रदेशकी पहिचान ठीक हो जाती है। अतः, जैसे आकाशके प्रदेशको अणुव्याप्यत्व लक्षण बताया गया उसी प्रकार सब प्रदेशोंमें भी प्रदेशोंका लक्षण प्रदेशोंका प्रकार एक ही है, अर्थात् जिस एक परमाणुकी मापसे जाना गया जितना आकाश क्षेत्र है वह एक प्रदेश है और ऐसे-ऐसे आकाशमें अनंत प्रदेश हैं, इसी तरह एक अणुसे जो व्यापा गया है उससे अगर धर्म द्रव्यमें गणना करें तो वह धर्म द्रव्यका एक अंश होता है। ऐसा धर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है और अधर्म भी इसी तरह तथा एक जीव द्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है। परमार्थसे आकाशमें और धर्म अधर्म आदिक द्रव्योंमें कुछ सम्बंध नहीं, कुछ आधार आधेय भाव नहीं इसलिए वह आकाश जैसा अनादिसे है, ऐसा ही धर्म आदि द्रव्य है। केवल निमित्तरूपसे कहा जाता है कि जहाँ आकाश है वहाँ धर्मादिक द्रव्य है जब आधार

आधेय भाव नहीं, भिन्न-२ रूप है तो जैसे आकाश अपनेमें है वैसे सब अपने-अपनेमें हैं। प्रदेशका स्वरूप ऐसा समझनेके लिए माप मूर्त परमाणु है। धर्म द्रव्यके भी असंख्यात प्रदेश हैं उसका भी माप करनेके लिए मात्र परमाणु उपाय है चाहे आकाशके एक प्रदेशसे माप करलें चाहें एक परमाणुसे माप करलें, बात एक है, किन्तु मूलमाप परमाणु है धर्म द्रव्य आदिक आकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें है। वे इससे असंख्यातप्रदेशी हैं इस तरहकी दृष्टि करके नहीं समझना है, मूल मापबीज परमाणुके मापसे समझना है कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, आकाश अनन्तप्रदेशी है आदि यह इस पद्धतिसे समझा गया कि एक अणु जितने क्षेत्रको व्यापे वह है एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे अनन्त क्षेत्रांश हैं इसलिए आकाश अनन्तप्रदेशी है। इसी तरह एक परमाणु धर्मद्रव्यमें जितनेमें माये वह हुआ धर्म द्रव्यका एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे धर्म द्रव्यके असंख्य क्षेत्रांश हैं इससे धर्म द्रव्य असंख्यातप्रदेशी है। इसी तरह अधर्म द्रव्य और जीव भी असंख्यातप्रदेशी हैं। यहाँ यद्यपि मूलमाप परमाणुसे है फिर भी परमाणुओंसे आकाशप्रदेश मापकर अन्य द्रव्योंके प्रदेशोंको आकाशप्रदेश द्वारा मापना सुगम ज्ञानोपाय है।

प्रदेशोंकी अवस्थितता व अनवस्थितता—भैया! धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये अवस्थित हैं इसलिए इनका जितना माप है वह अवस्थित है। इतना ही अनादिसे है और इतना ही अनन्त काल तक है। धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यका है प्रस्तार। सो इनका प्रदेश अवस्थित है इसी प्रकार परमाणु अपने एक प्रदेशप्रमाणमें अवस्थित है। किन्तु जैसे सूखे चमड़े और गीले चमड़ेमें संकोच विस्तार है गीला चमड़ा ज्यादा फैलता है और सूखा कम फैलता है, इसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें संकोच और विस्तार होता है। इसी रूपमे जीव असंख्यातप्रदेशी है। जीव असंख्यातप्रदेशी है, फैल जाने व सिकुड़ जानेपर भी उतना ही असंख्यातप्रदेशी है जितना लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, और रहा यह कि संकोच अवस्थामें तो माप उसका कम है तो उसका क्षेत्रीय माप भले ही कम हो, मगर प्रदेशोंमें कमी नहीं होती है। इसके लिए सूखे और गीले चमड़ेका दृष्टांत दिया गया है। आत्मा यद्यपि अमूर्त हैं तो भी उसमे संकोच और विस्तार होता है।

जीवके प्रदेशोंके संकोच विस्तारका परिचय—एक शंका यहाँ यह हो सकती है कि इन रबड़ वगैरह पदार्थोंको स्पष्ट देखते हैं कि अब यह ैल गयी, अब यह सिकुड़ गयी, तो रबड़में तो स्पष्ट समझमें आता है, पर आत्मा तो अमूर्त है। इस अमूर्त आत्मामें संकोच और विस्तार कैसे होता है? भैया! इसकी सिद्धि तो अपने आप में ही खुद देखलो, अभी दुबले हैं और शरीरसे कभी मोटे हो जावें तो आत्म प्रदेशका विस्तार हुआ कि नहीं हुआ। अर्थात् मोटे होनेपर तो आनन्दका अनुभव अधिक जगहमें हुआ और दुर्बले हो जानेपर फिर आनन्दकी अनुभूति उसके उतने ही देह प्रमाणमें रही, तो आत्मप्रदेशका संकोच हुआ कि नहीं? एक भवसे दूसरे भव का संकोच विस्तार होता

है यह तो परोक्ष बात है। इनही भवमे हम शरीरमे दुर्बल थे और इसही भवमे मोटे हुए तो यहाँ आत्माका सकोच विस्तार हुआ कि नही ? अभी और देखलो, जब पैदा हुए तब छोटे थे अब जवान हुए तो शरीर बढा हो गया अर्थात् विस्तृत हो गया। तो इसी प्रकार सकोच और विस्तार होना यह सम्वेद्य हो ही तो गया।

पुद्गलके प्रदेशित्वका विवरण— भैया ! पुद्गल द्रव्यसे एक प्रदेशमात्र है, क्योकि पुद्गल द्रव्य जितने है स्वयकी एकाकी सत्तामे है, वे एक प्रदेशी है फिर भी दो प्रदेश आदि रूप स्कध बन जाते है जिनका कारण है योग्य स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमन शक्तिका स्वभाव, इसके कारण स्कन्धरूप परिणमन हो जाता है। इन्द्रियो द्वारा अप्रदेश परमाणु ग्रहण नही किया जा सकता है, किन्तु अनन्त परमाणुओका पिंड ग्रहण किया जा सकता है, हाथमे उठा लिया जाता, वचनमे आगया, पकडनेमे आ गया, क्योकि स्कधमे कितने ही परमाणु इकट्ठे है। इस प्रकार शुद्ध परमाणु तो एकप्रदेशी होता है और पुद्गल स्कध कोई द्विप्रदेशी, कोई और अधिकप्रदेशी कोई असख्यातप्रदेशी व कोई अनन्तप्रदेशी होता है।

स्कध अवस्थामे भी प्रत्येक अणुके स्वरूपास्तित्वकी स्वतन्त्रता—सूक्ष्म दृष्टिसे देखिये प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे परिणमन कररहे है, कोई परमाणु किसीका परिणमन नही कररहा है। जैसे इस चौकीका एक खूट जलता है तो इस एक ही खूँटमे असर है दूसरमे नही है अगर यह चौकी एक चौकी होती तो जितना भी परिणमन होता सब उस एक पूरेमे ही होना पडता। एक परिणमन जितनेमे पूरेमे होना पडे और जिसके बाहर कुछ नही हो उसे एक कहते है। यह एकका लक्षण है। यह जीव एक है। मै एक हूँ तो इसमे जो भी परिणमन होता है, ज्ञान परिणमन, आनन्द परिणमन जो भी परिणमन होता है वह निज समस्त प्रदेशोमे होता है और निज प्रदेशोंसे बाहर कभी नही होता है, इसलिए यह एक कहलाता है। चौकीका एक खूँट जलने पर वह जलन सर्व चौकीमे देखी जारही है इसलिए चौकी एक चीज नही है जिस सूक्ष्म हिस्सेमे जल रहा है वह जलन दूसरे हिस्सेमे नही है। एक साथ अगर चार अगुल जल रहा है तो वहाँ भी भिन्न-भिन्न हिस्सोकी भिन्न-भिन्न जलन है, एक परिणमन नही है। चाहे सूखे लकडी एक साथ जल रही हो मगर एकका परिणमन नही है। एक द्रव्यका लक्षण यह है कि जितना भी परिणमन हो वह एक पूरेमे हो। ऐसा नही होता है कि अमुक परिणमन आधे द्रव्यमे हो जाय और आधेमे न हो मगर स्कधोमे देखा यो जारहा है कि आम आधा पीला हो गया, कुछ पीला हो गया, कुछ लाल हो गया कुछ हरा है। भाई आम एक द्रव्य नही है, वह भी अनन्त द्रव्योका पुज है। सो कोई यूनिट हरा है कोई पीला है, भिन्न-भिन्न रूपोमे वे यूनिट हो गये है। यद्यपि यह पुद्गल द्रव्य एकप्रदेशी है फिर भी अनेकप्रदेशी हो जाता है। तो पर्यायरूपमे पुद्गल द्रव्य

अनेकप्रदेशी है। इस तरह ही पुद्गलका अस्तिकायपना सम्भव है वैसे पुद्गल बहु प्रदेशी नही है, अप्रदेशी है फिर भी पुद्गल ऐसा द्रव्य है कि जिसमे समानजातीय द्रव्य-पर्याय होती हैं, वे पिंड हो जाते हैं, हाथमे उठाई वस्तुमे अनन्त परमाणु आ जाते हैं।

पूरण गलन पुद्गलमे सभव—मिलना विछुटना पुद्गलमे ही सभव है। यो परस्परमे अन्य द्रव्य मिल नही सकते। धर्म, अधर्म, आकाश व कालमे तो पूरण गलन तो है ही नही, जीव जीव भी नही मिलते हैं, निगोद जीव रहते हैं और एक देहमे मिलते हैं, उनमे अनन्त जीव रहते हैं पर उनका सूक्ष्म शरीर स्कध भी निगोदिया जीवमे अन्य अन्य है। मगर मिलकर वह एक पिंड नही बन गया है। शरीर एक पिंड बन गया है पर वे अनन्त निगोदिया जीव एक पिंडरूप नही बन गये हैं उनमे पौद्गलिकता नही है कि पूर जायें और गल जायें। जीव सब बिल्कुल स्वतत्र ही स्वतत्र है, एक जीव का दूसरे जीवके साथ रच भी सम्पर्क नही है। ये तो बाहर ही खडे खडे अपना हिसाब बना रहे हैं। ये जीव सब अपने-अपनेमे परिणाम रहे हैं।

पुद्गल द्रव्यमे अनन्त प्रदेश सम्भव हैं और असख्यात प्रदेश भी सम्भव हैं व सख्यात भी सम्भव है तथा एक प्रदेशी तो है ही। पर काल द्रव्य ध्रुव अप्रदेशी है अब इस प्रकारका निश्चय करते हैं—

समओ दु अप्पदेसो, पदेसमत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स॥ १३८॥

समय पर्यायका उपादान कारणभूत काल द्रव्य अप्रदेशी है। आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर मन्दगतिसे जानेवाले शुद्ध परमाणुकी गतिमे काल द्रव्यकी समय पर्याय व्यक्त होती है।

काल द्रव्यका सर्वथा अप्रदेशित्व—यह कालाणु स्वय अप्रदेशी है सो द्रव्यमे भी कालका प्रदेशित्व नही और पुद्गलकी तरह पर्यायमे भी उसका अनेकप्रदेशपना नहीं हो सकता अर्थात् काल द्रव्य सब मिलकर एक व्यञ्जन पर्याय हो जायें ऐसा भी नही होता। और, वे समय मिलकर इकट्ठे हो जायें ऐसा भी नही होता है। वे तो तिर्यक् रूपमे फैले हुए द्रव्य हैं उनमे कोई भी काल द्रव्य कभी पिंडरूप नही बन सकता इसी प्रकार ऊर्ध्व रूप फैला हुआ जो समय है वह भी परस्पर मिलता नही है। औरोके मिलनेकी तो कल्पना ही छोडो, प्रस्ताररूपमे जिसका विस्तार है,जो प्रदेशवान है, असख्यातप्रदेशी है, ऐसे मूर्तिमान पुद्गल द्रव्योमे भी परस्परमे उनका सम्पर्क स्वरूपत नही होता है। यह काल द्रव्य एक-एक आकाश प्रदेशको व्याप करके ठहरा हुआ है, प्रदेश मात्र है। परमाणुकी मदगतिसे एक आकाश प्रदेशके उल्लघनकी व एक कालाणुसे दूसरे कालाणु तक जानेकी जितनेमे वृत्ति होती है बस वही काल द्रव्यका शुद्ध पर्याय है, यही एक समय कहलाता है।

कालकी औपचारिकता व अनौपचारिकता—वैसे दिगम्बरसिद्धान्तमे और

श्वेताम्वरसिद्धातमे काल द्रव्यके वारेमे इतना अन्तर है कि श्वेताम्वरसिद्धान्तमे काल नामक कोई द्रव्य नही है पर व्यवहार काल माना जाता है, समय वर्ष घडी घटा वगैरह। सो वहाँ व्यवहार कालके आधारपर ही कालको स्वीकार किया गया है और दिगम्वरसिद्धान्तमे यह व्यवस्था है कि लोकाकाशमे एक-एक आकाश प्रदेश है उसपर अन्य-अन्य काल द्रव्य अवस्थित है और उस काल द्रव्यके समय नामकी पर्याय प्रति समय होती रहती है। द्रव्यके परिणमनका नाम समय नही है और द्रव्यके परिणमनसे समयका उपचार नही है। जैसे कि जीव नामका कोई द्रव्य है और उसके क्रोध आदि पर्याय होती है। इसी प्रकार काल द्रव्य नामका एक द्रव्य है उसकी एक एक समय नामकी एक-एक पर्याय होती है ऐसा माना है। घडी घटा पर्याय नही है। काल द्रव्य की एक-एक पर्याय चलती रहती है, एकाकी पर्याय है, एक पर्याय है। उन समय नामके पर्यायोका जो काल्पनिक सकलन है वह व्यवहार काल हैं।

वद्ध पदार्थमे स्वरूपचतुष्टयकी वद्धता—वद्ध द्रव्य कौन कहलाता है ? जहाँ दो का वन्धन हो। तो जो वधे हुए है उनमे दो द्रव्योका वधन दो क्षेत्रोका अवगाह और दो समयो तक पर्यायोका चलना और दो भावोका मिश्रण है याने वद्ध दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भाव हैं, किन्तु परमार्थसे एक-एक हैं, मगर जिस द्रव्यमे वद्धता देखी जारही उस द्रव्यमे दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भावोका वध है और दो को ही वधन कहते हैं और जो अवद्ध होता है, वहाँ अवद्धका यह अर्थ है कि एक द्रव्य एकक्षेत्र एक काल और एक भाव रहे उसे अवद्ध कहते है। यहाँ पर ऐसा देखा कि जीव वँधा है तथा जीव और धर्म इन दोनोमे एक क्षेत्रावगाह है तो उसमे द्रव्यका वँधन हुआ, क्षेत्रका वधन हुआ। अव उसमे जो परिणमन होगा, काल होगा, परिणति होगी वह परिणति भगवान सिद्धकी तरह निरपेक्ष एक समयकी विकारवृत्ति अनुभूतिमे आये ऐसा नही होता। यद्यपि अवस्थाके समयमे एक-एक पर्याय होती है मगर वह एक पर्याय विकाररूप अनुभूतिका कारण नहीं होती दृष्टिमे, वहाँ अन्तर्मुहूर्ततक का राग परिणमन, द्वेष परिणमन, मोहपरिणमन अनुभूत होता है। सूक्ष्मरूपसे वहाँ पर भी समय-समयका परिणमन है मगर वह पदार्थोमे वद्ध यो ही होता है कि वे विकार विकारका अनुभवना एक समयमे नही करते हैं, उसमे अनेक समयकी परम्परा चलती है। राग तो उस जीवके समय-समय पर होते हैं पर एक समयका राग अन्य समयो की रागपरिणतिकी अपेक्षा लिए विना स्वतन्त्रतया अनुभवमे आ जाय तो वह नही आता। उस उपयोगको असख्यात समय लग जाता है। सो जीव पुद्गलके परिणमनकी वृत्तिसे समय औपचारिक हो यह मान्यता दिगम्वर सिद्धान्तमे नही हैं, यह श्वेताम्वर सिद्धान्तमे है, क्योकि कालनामक द्रव्य वहाँ नही माना गया है। व्यवहार कालको ही काल माना गया है।

काल द्रव्यकी अवद्धता—प्रकृत वात यह है कि कालद्रव्य है और उसकी वृत्ति

समय-समयके रूपमे प्रकट होती है। वह निरपेक्ष परिणमन है, क्योंकि काल द्रव्य शुद्ध द्रव्य है, अवद्ध द्रव्य है। जो शुद्ध चेतन है, उसके उपयोगमे स्वत निरपेक्ष समय-समय की पर्याय ज्ञात है। जैसे यह स्कध है इसे जल।या तो एक-एक परमाणु निरपेक्ष होकर जलन परिणमन कररहा है ऐसा नही है क्योंकि यह बद्ध द्रव्य है। सूक्ष्म दृष्टिसे परमाणुमे परिणमन उसका ही निहित है मगर जो यह व्यञ्जन पर्याय है, अशुद्ध पुद्गल है, उस पर जा बात बीतती है वह अनन्त परमाणुओंकी समवेत पिंड जैसी बीतती है, नही तो पुद्गल परमाणु जलनेवाली चीज नही है।

शुद्ध जीवकी अवद्धता व प्रकृतका उपसहार—काल द्रव्य चूंकि अवद्ध द्रव्य है इस कारण काल द्रव्यका पर्याय एक समयनामक है वह अनेक समय तक नही चलता इसी प्रकार जैसे सिद्ध भगवान अवद्ध द्रव्य है, सिद्ध है इसलिए सिद्ध भगवानका ज्ञान इतना निर्मल है कि उनका ज्ञानोपयोग एक एक समयमे होता है जब कि छद्मस्थ जीवमे अन्तर्मुहूर्तका उपयोग मानते है। अन्तर्मुहूर्त तक ज्ञानोपयोग रहे बिना पदार्थ को जान नही सकते हम लोग, किन्तु सिद्ध भगवान एक ही समयके ज्ञानोपयोगसे सारे विश्वको जानता है और प्रत्येक समयमे वैसा ही वैसा जानन उनके बना रहता है। ज्ञानानुभव उस भगवानके प्रत्येक समयमे होता है। समयनामक पर्याय परमाणुकी गतिसे उपचरित हो ऐसा नही है और न उसके कारण समय उपचरित होता है। समय एक पर्याय है और काल द्रव्यकी पर्याय है ऐसा समय बतलाकर अब काल द्रव्य क्या है और काल द्रव्यकी पर्याय क्या है ? इसका प्रज्ञापन करते हैं—

वदिवददो त देस तस्सम समओ तदो परो पुव्वो।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी॥ १३६॥

कालाणुसे व्याप्त आकाशके एक प्रदेशको मदगतिसे गमन करनेवाले पुद्गल परमाणुके गमनक्षणके समान काल द्रव्यकी सूक्ष्म पर्याय समय है। वह समयनामक सूक्ष्म पर्याय तो एक समयमात्रकी स्थितिका है, किन्तु उसका मूल उपादानभूत काल पदाथ उसके पश्चात् भी है और उसके पूर्व भी है। काल द्रव्य तो अनादि अनत अहेतुक ध्रुव है और काल पर्याय वर्तमान समयमात्र है, उत्पन्न और प्रध्वस्त है।

परमार्थकाल और व्यवहार काल—इस प्रकरणमे इस प्रकार मानकर गवेषणाके क्षेत्रमे चले कि प्रदेशमात्र अर्थात् निज एक प्रदेश मात्र क्षेत्र वाला कालनामक परमार्थ सत् है और उसकी वर्तना अर्थात् समयनामक व्यवहार काल परिणमन है यह इस प्रकरणका सार घ्यानमे रख कर अब इसका विवरण सुने, जिस प्रदेशमात्र काल पदार्थके द्वारा जो आकाशप्रदेश व्याप्त हुआ है उस प्रदेशको परमाणु मन्दगतिसे उल्लघन करे सो उस अतिक्रमणके परिमाणके बराबर जो कालपदार्थकी सूक्ष्मरूप समय लगा वह समय कालनामक पदार्थकी पर्याय है। इस प्रकारकी समय समय नामक

समय पदार्थकी पर्यायें प्रतिसमय व्यक्त होती रहती हैं। उन समय नामकी पर्यायोमे अर्थात् पूर्व उत्तर वृत्तियोंमे जो एक स्वरूप है, नित्य है ऐसा अर्थ कालनामक द्रव्य है।

द्रव्यसमय व पर्यायसमय—समयनामक या कालनामक द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न प्रलीन होता है, उसीको द्रव्यसमय कहते हैं। तथा इस द्रव्यसमयकी जो वृत्तियाँ हैं जो कि उत्पन्न होती है व प्रलीन होती है वे समयनामक परिणतिया है, पर्याय-समय हैं। यह पर्यायसमय अनश है, अश रहित है। अन्यथा आकाशप्रदेश भी अनश न रह सकेगा। मदगतिमे परमाणु जितने समयमे आकाशके एक अशको उल्लघन करता उतने समयको एक समय कहते हैं।

तीव्रगतिमान परमाणुके उदाहरणमे भी समयके अशकी असिद्धि—कोई परमाणु तीव्रगतिसे एक समयमे ही १४ राजू पर्यन्त गमन कर लेता है इससे आकाश प्रदेशकी सिद्धिकी युक्तिमे बाधा नही समझना, क्योंकि यह तो विशिष्टगति परिणाम की बात है। जैसे कि परमाणु एकप्रदेशी होता है, यदि कोई अनन्त परमाणुवोका स्कन्ध एक परमाणुप्रमाण एक प्रदेशमें रह जाय तो यह परमाणुवोके विशिष्ट अवगाह रूप परिणमनकी बात हुई। इससे कही उस स्कन्धमे एक परमाणुका परिमाण लानेके लिये उस प्रदेशके अनन्त अश नही बनाये जा सकते। इसी प्रकार कोई परमाणु लोक मे नीचेके अन्तमे स्थित कालाणुमे व्याप्त आकाशप्रदेशसे तीव्रगतिसे चल कर लोकमे ऊपरके अन्तमे स्थित कालाणुमे व्याप्त आकाशप्रदेश पर एक समयमे ही पहुँच जाता है तो इससे उस समयनामक पर्यायके कही असख्यात अश न कर दिये जायगे। वह तो परमाणुका एक विशिष्ट गतिपरिणाम है।

निश्चयकाल और व्यवहारकाल—यहाँ निश्चयकालका भाव निश्चयकाल द्रव्य व निश्चयकालपर्याय इन दोनोको सकेतित कर सकता है। निश्चयकालद्रव्य तो लोका-काशके एक एक प्रदेशपर अवस्थित कालाणु द्रव्य है। और, उस कालनामक पदार्थ की जो प्रतिसमय समयकी वर्तना है वह निश्चयकाल पर्याय है। फिर उन समय समूहोंके जो नाम व्यवहारमे रखे गये हैं वे सब व्यवहार काल हैं-जैसे आवली, उच्छ्वास प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु अयन, वर्ष, पूर्वांग, पूर्व आदि ये सब व्यवहारकाल हैं। इनके अलावा उपमाप्रमाणसे व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, सागर उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कल्पकाल, पुदगलपरिवतन आदि भी व्यवहार काल हैं।

कालविवरणसे उपादेय शिक्षा—भैया, हम आप सबका अबतक इस लोकमे भ्रमते भ्रमते अनन्त परिवतन काल व्यतीत हो चुका है, इतने अनन्तकाल ससारसागर मे गोते खाते रहनेका, जन्म मरण आदि चक्रमे पीडित होते रहनेका कारण निज परमात्मतत्त्वकी पराड्मुखता ही है। हमे प्राप्त समागममे रच मोह न करके सर्व प्रयत्नोसे इस चैतन्यस्वभावमात्र पावन निज परमात्मतत्त्वकी श्रद्धा करना चाहिये और

स्वसंवेदनज्ञानरूपसे साक्षात् स्पष्ट जानना चाहिये तथा सब रागादिविभावोंको उपयोगसे हटाकर स्वरूपाचरण चारित्रकी वृद्धि करके इस निज परमात्मतत्त्वके ध्यानकी स्थिरता करना चाहिये। इस उपायसे ही हम भावी अनन्तकाल तक निज शुद्ध ज्ञानानन्द परिणमनमे विश्राम पावेंगे। अब आकाशके प्रदेशका लक्षण सूचित किया जा रहा है—

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवगासं ॥१४०॥

एक परमाणुसे घिरा हुआ जो आकाशका अंश है वह आकाशके प्रदेशके नामसे कहा गया है। वह आकाशका एक प्रदेश सब द्रव्योंको और परमाणुवोंको स्थान देनेमे समर्थ है। आकाशका जितना अंश एक अणुसे घिरा हुआ होता है वह आकाशका एक प्रदेश है। एक परमाणु आकाशके दो प्रदेशोंमे स्थित नहीं हो सकता है। क्योंकि परमाणु अविभागी होता है। वह आकाशका एक प्रदेश भी शेष पाच द्रव्योंके प्रदेशोको और परम सूक्ष्मरूपसे परिणत अनन्त परमाणुवोंके स्कन्धोंको अवगाहन देनेमे समर्थ है। यह आकाश द्रव्य एक है, अविभागी है, असीम है फिर भी उस आकाशके अंशोंकी कल्पना न्याय्य ही है। यदि अंशकल्पना न हो, आकाशके प्रदेश न हो तो सर्व अणुवोंको अपने अविभागी अंशमे अवगाह देनेकी या अपनेमे अवगाह देनेकी बात नही बन सकती है। अब इस सम्बन्धमे दूसरी दृष्टि कीजिये कि यदि आकाशके अंश नही हैं ऐसी तुम्हारी बुद्धि हो तो दो अंगुलियोंको आकाशमे फैलाकर जरा निरूपण तो कीजिये कि इन दोनोके रहनेका क्षेत्र एक है कि अनेक है? यदि एक बताओगे तो यह भी बताओ कि अभिन्न अंशमे विभागरहितरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यके रूपमे वह क्षेत्र है या भिन्न-भिन्न अंशोंमे अविभाग रूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र है? यदि अभिन्न अंशके अविभागरूप एक द्रव्यरूप क्षेत्रको मानोगे तो जिस अंशके द्वारा एक अंगुलिका क्षेत्र है और उसी अंशमे हो गया वह दूसरी अंगुलिका क्षेत्र, सो अन्य अंशका तो अभाव हो गया फिर तो दो आदि अंशोंका अभाव होनेसे आकाश परमाणुकी तरह एकप्रदेशमात्र हो जायगा। यदि भिन्न भिन्न अंशोंमे अविभागरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र मानो तो अविभागी एक द्रव्यमे अंशकल्पनाकी बात आगई है। यदि उन दो अंगुलियोंका अनेक क्षेत्र मानोगे तो बतावो कि वह विभागसहित एक एक करके अनेक द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र अनेक है या अविभागी एक द्रव्यका वह अनेक क्षेत्र है? प्रथम पक्षमे तो आकाश ही स्वतन्त्र अनन्त हो पड़ेंगे। द्वितीय पक्ष स्वीकार करो तो वही सिद्धान्त आगया कि अविभागी एक द्रव्यमे अंशकी कल्पना की गई है। यही अविभागी प्रदेश कहलाता है।

इति प्रवचनसार प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त

दी पॉपूलर प्रेस, मोतीकटरा, आगरा।

धर्म प्रेमी बन्धुओ । यदि आप सरल उपायोंसे आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान व शान्ति चाहते हैं तो अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य १०५ क्षु० मनोहरजी वर्णी सहजानन्द जी महाराजके रचित ग्रन्थ व प्रवचन ग्रन्थका स्वाध्याय अवश्य कीजिये ।

इन समस्त ग्रन्थोका नाम वर्णी सेट है, जो अध्यात्म ग्रन्थ सेट, अध्यात्म प्रवचन सेट, विज्ञान सेट व ट्रैक्टसेट, इन चार सेटो मे विभक्त हैं । ये ग्रन्थ जिसके पास न हो तो स्वाध्याय के अर्थ अवश्य मगावें ।

वर्णी सेट (समस्त ग्रन्थ अर्थात् चारो सेट) मँगाने पर २०) प्रतिशत कमीशन होगा । विभक्त सेटोमे से एक दो या तीन सेट मँगाने पर १५) प्रतिशत कमीशन होगा ।

अध्यात्म ग्रन्थ सेट —

	रु०न०पै०
आत्मसम्बोधन सपरिशिष्ट	१-५०
सहजानन्द गीता	१-००
सहजानन्द गीता सतात्मर्य	२-००
तत्व रहस्य प्रथम भाग	१-००
अध्यात्म चर्चा	०-७५
अध्यात्म सहस्त्री	१-००
समयसार भाष्य पीठिका	०-३१
समयसार भाष्य पीठिका सार्थ	०-७५
सहजानद डायरी सन् १९५६	१-७५
सहजानद डायरी सन् १९५७	१-७५
सहजानद डायरी सन् १९५८	१-७५
सहजानद डायरी सन् १९५९	०-५०
सहजानद डायरी सन् १९६०	०-५०
भागवत धर्म	२-००
समयसार दृष्टान्त मर्म	०-३७
अध्यात्म वृत्तावलि	०-२५
मनोहर पद्यावलि	०-३७
दृष्टि	०-२५
सुबोधपत्रावलि	०-६२
स्तोत्र पाठपुन्ज	०-३७

	रु०न०पै०
अध्यात्म रत्नत्रयीसमूल	०-७५
Samayasar exposition (Purvarang)	०-३१
Samayasar exposition (Kartri karmadhikar)	०-३१
द्रव्यसग्रह प्रश्नोत्तरी टीका	३-००
समाधिशतक सभावार्थ	०-३७

अध्यात्म प्रवचन सेट —

धर्म प्रवचन	०-७५
सुख कहाँ	०-५०
अध्यात्म सूत्र प्रवचन उत्तरार्ध	२-५०
प्रवचनसार प्रवचन प्रथम भाग	२-२५
,, ,, ,, द्वितीय भाग	२-७५
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-२५
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	२-००
,, ,, ,, पञ्चम भाग	१-७५
,, ,, ,, षष्ठ भाग	१-७५
,, ,, ,, सप्तम भाग	१-५०
,, ,, ,, अष्टम भाग	१ ५०
,, ,, ,, नवम भाग	१-५०
,, ,, ,, दशम भाग	१-२५

	रु०न०पै०
,, ,, ,, एकादश भाग	१-२५
देवपूजा प्रवचग	२-५०
श्रावक षट्कर्मप्रवचन	१-२५
समयसार प्रवचन प्रथम पुस्तक	२-५०
,, ,, द्वितीय पुस्तक	२-००
,, ,, तृतीय पुस्तक	१-७५
,, ,, चतुर्थ पुस्तक	१-७५
,, ,, पञ्चम पुस्तक	१-७५
,, ,, षष्ठ पुस्तक	१-७५
परमात्म प्रकाश प्रवचन प्रथम भाग	१-५०
,, ,, ,, द्वितीय भाग	१-५०
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-५०
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
सहजानन्द गीता प्रवचन प्रथम भाग	२-००
,, ,, ,, द्वितीय भाग	२-००
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-७५
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
तत्वार्थ प्रथम सूत्र प्रवचन	०-७५
भक्तामरस्त्रोत प्रवचन	०-४४

विज्ञान सेट —

धर्म वोध पूर्वार्द्ध	०-२५
धर्मवोध उत्तरार्द्ध	०-५०
जीव स्थान चर्चा	१-७५
लघु जीवस्थान चर्चा	०-८८
गुणस्थान दर्पण	०-८८
समस्थान सूत्र प्रथम स्कन्ध	२-००
समस्थान सूत्र द्वितीय स्कन्ध	१-५०
समस्थान सूत्र तृतीय स्कन्ध	१-७५
,, ,, चतुर्थ स्कन्ध	१-७५
,, ,, पञ्चम स्कन्ध	१-५०
,, ,, षष्ठ स्वन्व	१-७५
,, ,, सप्तम स्कन्ध	१-७५
द्रव्यदृष्टिप्रकाश	०-२५
सिद्धान्त शब्दार्णवसूची	०-३१
जीव सदर्शन	०-१९

ट्रैक्ट सेट :—

आत्म कीर्तन	०-०६
वास्तविकता	०-०६
अपनी वात	०-०६
मामायिक पाठ	०-०६
अध्यात्म सूत्र सार्थ	०-१९
एकीभाव स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
कल्याण मंदिर स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
विषपहार स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
स्वानुभव	०-१०
धर्म	०-१२
मेरा धर्म	०-०६
ब्रह्म विद्या	०-१९
आत्म उपासना	०-२५
समयसार महिमा	०-२५
सूत्र गीता पाठ	०-२५
अध्यात्म रत्नात्रयी गुटका	०-२५

पुस्तकें मँगाने का पता—

मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ०प्र०)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

की

प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य

आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञानके सरल साधनोंसे अवश्य लाभ लीजिये

धर्मप्रेमी बन्धुओ ! यदि आप सरल उपायो से आध्यात्मिक ज्ञान औ विज्ञान चाहते है तो अध्यात्मयोगी पूज्य वर्णी सहजानन्दजी महाराज प्रवचन और निबन्धोको अवश्य पढिये । आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वा है कि इनके पढनेसे आप ज्ञान और शान्तिकी वृद्धिका अनुभव करेंगे ।

पुस्तकें मँगाने का पता—

मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ०प्र०)